बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

Bachelor of Arts (Sanskrit)

ABILITY ENHANCEMENT COURSE

(AECC-S-102)

संस्कृत व्याकरण : पत्रलेखन एवं निबन्ध

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **AECC-S- 102**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकायाध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया
इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादन

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ0 नीरज कुमार जोशी असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 1** **खण्ड 2** **खण्ड 3**	(इकाई 1 से 3) (इकाई 1 से 3) (इकाई 1,2, 4)
श्री राहुल पन्त असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 3**	(इकाई 3)

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- संस्कृत व्याकरण : पत्रलेखन एवं निबन्ध
प्रकाशन वर्ष : 2024
ISBN No.
मुद्रक:

नोट:- यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है । संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा । इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता ।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) संज्ञा-सन्धि एवं कारक परिचय	**पृष्ठ संख्या 1 - 4**
इकाई-1 संज्ञा प्रकरण	5-21
इकाई-2 सन्धि प्रकरण	22-37
इकाई-3 कारक एवं वाच्य परिचय	38-54
खण्ड- दो (Section-B) शब्दरूप-धातुरूप एवं अनुवाद	**पृष्ठ संख्या 55**
इकाई-1 शब्दरूप परिचय : सामान्य नियम	56-77
इकाई-2 धातुरूप परिचय : सामान्य नियम	78-97
इकाई-3 लघु गद्यांशों का भाषानुवाद	98-113
खण्ड- तीन (Section-C) पत्र लेखन एवं निबन्ध	**पृष्ठ संख्या 114**
इकाई-1 पत्र लेखन विधि एवं प्रकार	115-129
इकाई-2 निबन्ध लेखन विधि एवं प्रकार	130-141
इकाई-3 संस्कृत लघु निबन्ध	142-161
इकाई-4 आधुनिक विषयक निबन्ध	162-180
इकाई-4 अन्य आधुनिक विषयक निबन्ध	181-198

खण्ड- एक (Section-A)
संज्ञा-सन्धि एवं कारक परिचय

इकाई 1. संज्ञा प्रकरण

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संज्ञा प्रकरण : अर्थ एवं महत्त्व
1.4 संज्ञा प्रकरण का प्रतिपाद्य विषय
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

संस्कृत व्याकरण:पत्रलेखन एवं निबन्ध नामक पाठ्यक्रम के खण्ड प्रथम योग्यता सम्वर्धन अनिवार्य पाठ्यक्रम (AECC-S-102) से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इस खण्ड में संज्ञा शब्द का अर्थ एवं महत्त्व का वर्णन किया गया हैं। प्रस्तुत खण्ड में संज्ञा का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय प्रस्तुत किया जा रहा है।

संस्कृत व्याकरण का सामान्य परिचय जानने के बाद आप इसके प्रथम अध्याय संज्ञा प्रकरण का विधिवत् अध्ययन कर पाएंगे, जिसमें मुख्य रूप से चौदह माहेश्वर सूत्र प्रत्याहार एवं उसे बनाने की प्रक्रिया, वर्णों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न तथा कुछ संज्ञाओं का सुव्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप संज्ञा के मुख्य विषयों से समझा सकेंगे तथा आधुनिक भाषा विज्ञान के ध्वनि संबंधी चिन्तनों का सम्यक विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- स्वर एवं व्यञ्जन वर्णों का भलीभॉति ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- भाषा के आधारभूत तत्त्वों को समझ सकेंगे।
- दैनिक जीवन में प्रयोग करने वाले वर्णों का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के विषय में जान सकेंगे।
- आधुनिक भाषा विज्ञान के ध्वनियों का ठीक प्रकार से विश्लेषण कर सकेंगे।
- संस्कृत ध्वनियों के ज्ञान से अन्य भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का सहजता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अन्य भाषा में प्रयुक्त होने वाले ध्वनियों में आये विकृतियों को भलीभॉति जान सकेंगे।
- संस्कृत व्याकरण के आधारभूत चौदह माहेश्वर सूत्रों को का परिचय पाप्त करेंगे।
- प्रत्याहारों की वैज्ञानिकता एवं वर्णों का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रयोग कर सकेंगे।

1.3 संज्ञा प्रकरण अर्थ एवं महत्त्व

संज्ञा का अर्थ अभिधान या नाम है। जीवन का व्यवहार हो या अध्ययन का विषय, संज्ञा के बिना बात आगे नहीं बढती। जिस प्रकार जन्म लेते ही संतान की संज्ञा निर्धारित हो जाती है, क्योंकि दैनिक जीवन में इसी नाम के आधार पर सभी प्रकार के क्रिया-कलाप निश्चित किये जाते हैं उसी प्रकार किसी शास्त्र के अध्ययन के लिये सर्वप्रथम इसके कुछ अंगभूत तत्त्वों की संज्ञा निर्धारित हो जाती है जिसके आधार पर अन्य अंग सुनियोजित रूप से अपने कार्यो में प्रवृत्त होते हैं। संस्कृत व्याकरण को पाणिनि ने सूत्रों में प्रस्तुत किया है। इस तथ्य को आप इसके पहले की इकाई में ठीक प्रकार से जान चुके हैं। सूत्र का लक्षण संज्ञा प्रकरण के अन्त में बताया जाएगा। किन्तु सूत्र के छः प्रकारों-संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश और अधिकार- में संज्ञा प्रथम प्रकार है। संस्कृत व्याकरण में प्रयुक्त होने वाले तकनीकी शब्दों (सवर्ण संज्ञा, संहिता संज्ञा, संयोग संज्ञा आदि) का नामकरण संज्ञा प्रकरण का मुख्य विषय है। इसके

अतिरिक्त यहाँ उपयोगिता के अनुरूप चौदह माहेश्वर सूत्र, प्रत्याहार बनाने की विधि एवं प्रत्याहारों की संख्या, वर्णो का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न आदि का भी सम्यक् विवेचन प्रस्तुत है।

1.4 संज्ञा प्रकरण का प्रतिपाद्य विषय

।। मंगलाचरण ।।

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्।
पाणिनीय प्रवेशाय लघुसिद्धान्त कौमुदीम् ।।

अर्थ- मैं वरदराजाचार्य शुद्ध और उत्तम गुणवाली सरस्वती देवी को प्रणाम करके पाणिनी मुनि के द्वारा बनाये हुए व्याकरणशास्त्र में (व्याकरण जिज्ञासु छात्रों के) प्रवेश के लिये लघुसिद्धान्तकौमुदी को बनाता हूँ।

चतुर्दश माहेश्वर सूत्र—

अइउण्।
ऋलृक्।
एओङ्।
ऐऔच्।
हयवरट्।
लण्।
ञमङ़णनम्।
झभञ्।
घढधष्।
जबगडदश्।
खफछठथचटतव्।
कपय्।
शषसर्।
हल्।।

इति माहेश्वराणि सूत्राणि अणादि संज्ञा अर्थानि। ये महेश्वर की कृपा से प्राप्त सूत्र अण् आदि संज्ञाओं की सिद्धि के लिये हैं।

एषामन्त्या इत:- इन चौदह सूत्रों के अन्त के वर्ण - ण् क् ङ्, च्,ट् ण्, म्, ञ्, ष्, श्, व्, य्, र्, एवं ल् – ये चौदह इत संज्ञा वाले हैं।

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थ: - हकार आदि में जो अकार है वह उच्चारण के लिये है।

लण् मध्ये त्वित्संज्ञक:- लण् सूत्र में लकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है।

ये चौदह सूत्र पाणिनि को महेश्वर (शिव) से प्राप्त हुए। अतः इनका नाम माहेश्वर सूत्र है। महेश्वरदागतानि प्रोक्तानि' इस विग्रह के अनुसार महेश्वर (शिव) से प्राप्त होने के कारण ये माहेश्वर सूत्र या शिव सूत्र हैं। इसी बात को नन्दिकेश्वर काशिका में निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया गया है-

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंच वारम्।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ।।1।।

अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन ,सनत्कुमार, पाणिनि आदि सिद्धजनो को, उद्धार करने की कामना वाले नटराज (महेश्वर) ने विचार-विमर्श कर कल्याणरूप सूत्र समूह की अभिव्यक्ति के लिए नृत्य के अन्त में डमरू बजाने के माध्यम से, उपदेश किया। पाणिनिशिक्षा में भी कहा गया है—

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ।।

अर्थात् जिसने महेश्वर से अक्षर समाम्नाय प्राप्त कर सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया, उस पाणिनि को नमस्कार है।

अइउण् आदि चौदह सूत्रों का समाम्नाय कहते हैं। अक्षर समाम्नाय को वर्णसमाम्नाय के नाम से भी जाना जाता है। महेश्वर से प्राप्त उपर्युक्त चौदह सूत्रों के आधार पर ही पाणिनि ने 3978 सूत्रों का निर्माण किया एवं इन्ही के माध्यम से सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र को सुव्यवस्थित रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया।

वर्णों के अध्ययन से हमें पता चलता है कि पाणिनि से पहले वर्णमाला विद्यमान थी। पाणिनि ने परम्परा से प्राप्त वर्णमाला का यथावत् प्रयोग न कर उसे अन्य प्रकार से प्रस्तुत किया क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य था प्रत्याहार की सिद्धि। प्रत्याहार की सिद्धि के लिये वर्णमाला में दो परिवर्तन आवश्यक थे। पहला अनुबन्धों को जोड़ना तथा दूसरा वर्णों के प्रचलित क्रम में परिवर्तन लाना। अनुबन्ध इत्संज्ञा या इत्संज्ञा योग्य वर्णों को कहते हैं। इत्संज्ञा वाला वह व्यंजन वर्ण है जो प्रत्येक माहेश्वर सूत्र के अन्त में उपस्थित होता है। उपस्थित होते हुए भी उसकी अन्य वर्णो के साथ गणना नहीं होती, किन्तु अन्य वर्णो की गणना के लिये उसकी उपस्थिति अनिवार्य होती है।

यथा -'अइउण् इस माहेश्वर सूत्र में 'ण्' अनुबन्ध है। यहॉ अ इ तथा उ वर्णों की गिनती में ण् का स्थान नहीं है किन्तु इन वर्णो की गिनती के लिए 'ण्' का सूत्र के अन्त में रहना आवश्यक है। दूसरी बात है कि पाणिनि ने पहले से विद्यमान वर्णमाला में वर्णों के क्रम को परिवर्तित कर उसे प्रस्तुत किया है। यथा ऐऔच्' के बाद 'हयवरट्' में य, व, र इत्यादि के द्वारा व्यंजनों की गणना शुरू की है। क,ख,ग इत्यादि से नहीं, जबकि परम्परा में क,ख,ग इत्यादि से व्यंजनों की गणना शुरू होती है। इसका मुख्य प्रयोजन है , जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रत्याहारों की सिद्धि। प्रत्याहारों की सिद्धि से ही व्याकरण की रचना एवं पाठकों को उसका ज्ञान सम्भव है।

उपर्युक्त दोनों बातों के आधार पर ही वर्णों का उपदेश सम्भव था। अतः पाणिनि ने परम्परा से प्राप्त वर्णमाला के रहते हुए भी पृथक् रूप से माहेश्वर सूत्र अण् आदि प्रत्याहार की सिद्धि के लिये है। प्रत्येक सूत्र के अन्त में अनुबन्ध या इत् संज्ञक वर्ण है। क्योंकि सूत्रों की संख्या चौदह है, अतः अनुबन्धों की संख्या भी चौदह ही है। चौदह माहेश्वर सूत्रों में चौदह अनुबन्ध क्रमशः इस प्रकार हैं -ण् क् ङ्, च्,ट् ण्, म्, ञ्, ष्, श्, व्, य्, र्, एवं ल्। जैसा कि पहले संकेत किया गया है अनुबन्ध इत्संज्ञक होते है। व्याकरण की दृष्टि से उपदेश की स्थिति में जो अन्तिम हल् (व्यंजन) होता है इसकी इत् संज्ञा होती है।

'हलन्त्यम्' 1/3/3

उपदेशऽन्त्यं हलित्स्यात् । यथा- 'अ इ उ ण्- यह उपदेश है । इसमें आनेवाले अन्तिम वर्ण 'ण्' की इत्संज्ञा होती है । इसी प्रकार अन्य इत्संज्ञक वर्णों को भी जानना चाहिए ।'उपदेश' शब्द का स्पष्टीकरण आवश्यक है । व्याकरण की परम्परा में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि- इन तीन मनीषियों के मुख से उच्चरित वर्ण समूह उपदेश कहलाता है- 'उपदेश आद्योच्चारणम्'। उपलब्ध उपदेशों को निम्नलिखित पद्य के माध्यम से बताया गया है-

धातु-सूत्र गणोणादि-वाक्य-लिङानुशासनम् ।आगम-प्रत्ययादेशा उपदेशा-प्रकीर्तिताः।।

अर्थात् धातु, सूत्र गण, उणादि और लिंगानुशासन तथा इनके साथ आगम, प्रत्यय और आदेश ये सभी उपदेश कहलाते हैं । इन सभी का उच्चरण अर्थात् व्यावस्थापन पाणिनि ने किया । धातुपाठ, सूत्रपाठ (अष्टाध्यायी), गणपाठ, उणादि पाठ और लिंगानुशासन ये पॉच मिलकर व्याकरण कहे जाते हैं । ये सभी पाणिनि के द्वारा रचित है । आगम, प्रत्यय तथा आदेश का परिचय बाद में दिया जाएगा ।

सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र- सूत्रों में जो पद न दिखायी दे उसे दूसरे सूत्रों से ले आना चाहिये, सभी सूत्रों में ।

प्रस्तुत प्रसंग में 'अ इ उ ण् ' आदि चौदह सूत्र सर्वप्रथम पाणिनि के द्वारा प्रस्तुत किये गये । अतः इनके अन्त में आनेवाले वर्ण अनुबन्ध कहलाते हैं । हम पहले पढ़ आये हैं कि माहेश्वर सूत्रों के अन्त में आने वाले वर्णों की गिनती नहीं होती है । यह केवल प्रत्याहार की सिद्धि के लिये है । व्याकरण की शब्दावली में उसे लोप संज्ञा कहा जाता है । जैसे-'अ इ उ ण्' के अन्त में आनेवाला अनुबन्ध 'ण्' की गिनती नहीं होती है । यह उपस्थित है किन्तु नहीं के बराबर है । दूसरे शब्दों में जिसका श्रवण प्राप्त है, फिर भी यदि उसका श्रवण नहीं होता तो उसे लोप संज्ञा कहते हैं -

अदर्शनं लोपः 1/1/6 प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् । प्रसक्त अर्थात् विद्यमान का अदर्शन होना लोप कहलाता है ।

सूत्र - तस्य लोपः 1/1/9

तस्येतो लोपः स्यात् । यहॉ 'ण्' की लोप संज्ञा हैं । सार रूप में यह समझें कि सूत्र के अन्त में आने वाला हल् वर्ण अनुबन्ध एवं इत्संज्ञक है और इत्संज्ञक वर्ण का लोप होता है अर्थात् उपस्थित होने पर भी अन्य वर्णो के साथ उसकी गणना नहीं होती हैं । 'सूत्र' शब्द की व्याख्या बाद में की जाएगी ।

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः - हकार आदि में जो अकार है वह उच्चारण के लिये है । माहेश्वर सूत्र के विषय में यह भी जान लेना आवश्यक है कि पॉचवे सूत्र 'हयवरट्' के 'ह' से लेकर आगे के सभी वर्णो में 'अ' भी जुड़ा हुआ है । उसका प्रयोजन केवल इतना है कि 'ह्' आदि व्यंजनों का उच्चारण हो सके । क्योंकि व्यंजनों का उच्चारण बिना स्वर की सहायता के नहीं हो सकता। पतंजलि अपने भाष्य में इसका स्पष्ट उल्लेख करते हैं-**'न पुनरन्तरेणाचं व्यन्जनस्योच्चारणमपि सम्भवति' इति ।** अतः 'ह' आदि के उच्चारण के लिये स्वर का संयोग आवश्यक था । स्वरों में प्रथम होने के कारण 'अ' को ही सभी व्यंजनों के साथ जोड़ दिया गया है । इस प्रकार 'हयवरट्' से लेकर 'हल्' तक सभी सूत्रों में आने वाले व्यंजनों से संयुक्त स्वर 'अ' केवल उन-उन वर्णों के उच्चारण के लिये है। उसकी कोई अन्य उपयोगिता वहॉ नहीं है ।

लण् मध्ये त्वित्संज्ञकः- लण् सूत्र में लकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है ।

यहाँ एक अपवाद भी है। छठे सूत्र 'लण्' में 'ल् अ एवं ण्' ये तीन वर्ण हैं। 'ण्' इत्संज्ञक है। अतः उसकी गिनती नहीं होती है। अब शेष है 'ल्' के साथ संयुक्त 'अ'। यहाँ यह ध्यातव्य है कि 'ल' के साथ संयुक्त 'अ' केवल 'ल्' के उच्चारण के लिये ही नही है, अपितु उसका एक अन्य प्रयोजन भी है। वह है स्वयं इत्संज्ञक बनकर 'र' प्रत्याहार को सिद्धि करना। 'र' प्रत्याहार की सिद्धि एवं प्रयोजन के विषय में आगे बताया जाएगा। किन्तु ज्ञातव्य यह है कि 'लण्' में आनेवाला 'अ' केवल 'ल्' के उच्चारण के लिये ही नहीं, अपितु विशेष प्रयोजन से भी उपस्थित है। इसके आगे हम प्रत्याहार बनाने की विधि सीखेंगे।

प्रत्याहार—

व्याकरण ज्ञान के लिये प्रत्याहार का ज्ञान अत्यावश्यक है। पाणिनि ने प्रत्याहार के माध्यम से सम्पूर्ण व्याकरण का ज्ञान सरलता पूर्वक प्रस्तुत कर दिया है। जैसा कि आप पहले पढ़ आये हैं कि इत्संज्ञा का फल उसका लोप होता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह निरर्थक है। यह पूर्णतः सार्थक है, क्योंकि इसके द्वारा प्रत्याहार की सिद्धि होती है। ' प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णा : यत्र स प्रत्याहारः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें संक्षेप किया जाय उसे प्रत्याहार कहते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्याहार के माध्यम से हम बहुत सारे वर्णों को संक्षेप रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। यह एक ऐसी विधि है जो भाषा की दृष्टि से पूरी दुनियॉ में अनोखी है एवं आधुनिक भाषा चिन्तन को संस्कृत की देन है। प्रत्याहार बनाने की विधि के माध्यम से उसकी उपयोगिता को हम ठीक प्रकार से समझ सकते हैं। पाणिनि ने इसके लिये जिस सूत्र का विधान किया है वह इस प्रकार है-

सूत्र - आदिरन्त्येन सहेता 1/1/71 इस सूत्र का अर्थ वृत्ति के साथ इस प्रकार है-

अन्त्येने ता सहित आदिर्मध्यड्गानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथा 'अण्' इति अ इ उ वर्णानां संज्ञा। एवम् अच् अल्, हलित्यादयः।

अर्थात् अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण से युक्त आदि वर्ण, बीच के वर्णों की और अपनी भी संज्ञा का बोधक होता है। जैसे 'अण्' - यह 'अ इ उ' इन वर्णों की संज्ञा का बोधक है। इसी प्रकार अच्, अल्, हल् इत्यादि संज्ञायें भी समझनी चाहिए। उपर्युक्त सूत्र 'आदिरन्त्येन सहेता' प्रत्याहार विधायक है। इसे हम उदाहरण के माध्यम से ठीक प्रकार से समझ सकते हैं।

यथा- 'अण्' प्रत्याहार। 'अण्' इसलिए प्रत्याहार है क्योंकि इसमें हम अनेक वर्णों को संक्षेप रूप से प्रस्तुत कर देते हैं। सूत्र के अर्थ के अनुसार 'अण्' प्रत्याहार की सिद्धि के लिए आवश्यकता है, किन्तु 'अण्' प्रत्याहार में आने वाले वर्णों के साथ इसकी गिनती सम्भव नहीं है। इस प्रत्याहार की दृष्टि से हमने 'अ इ उ ण्' इस माहेश्वर सूत्र के प्रथम वर्ण 'अ' को लिया तथा अन्तिम वर्ण 'ण' को लेकर 'अण' बना दिया। सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'ण्' के साथ आदि वर्ण 'अ' मध्य में आने वाले वर्ण 'इ उ' तथा अपनी अर्थात् स्वयं 'अ' की भी संज्ञा का बोधक है। इसे एक बार फिर समझें। 'अण्' प्रत्याहार में अन्त्य इत् 'ण' के सहित आदि वर्ण हुआ 'अ'- इन दो अर्थात् 'अ' और 'ण्' के बीच में दो वर्ण 'इ, उ' आते हैं। इन दो अर्थात् 'इ, उ' और अपनी भी अर्थात् स्वयं 'अ' की भी संज्ञा 'अण्' हुई। तात्पर्य यह है कि 'अण्' से 'अ इ उ' इन तीन वर्णों का बोध होता है। यहॉ 'ण्' 'अण्' प्रत्याहार बनाने के लिये है, उसकी गणना 'अ इ उ' के साथ नहीं हुई। इसीलिए 'ण्' की लोप संज्ञा हुई अर्थात् उसकी उपस्थिति है, फिर भी वह नहीं है। यही लोप का फल है।

हम इसको दूसरे उदाहरण 'अच्' प्रत्याहार से भी जान सकते हैं। 'अच्' प्रत्याहार में प्रथम सूत्र 'अ इ उ ण्' का 'अ' एवं चतुर्थ सूत्र 'ऐ औ च्' का 'च्' है। आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'च' के सहित आदि वर्ण 'अ' बीच के आठ वर्ण 'इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ' के अनुसार अन्तिम वर्ण 'च्' के साथ अपना अर्थात् 'अ' का बोध कराता है। इस प्रकार 'अच्' प्रत्याहार में कुल नौ (9) वर्णों की 'अच्' संज्ञा हुई। यहॉ ध्यान रहे कि अन्तिम वर्ण 'च' अच् प्रत्याहार की सिद्धि के लिये आवश्यक हैं किन्तु अन्य वर्णों के साथ उसकी गिनती नही होती। अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी स्वरों का बोध हो जाता है ।

हम इसको तीसरे उदाहरण 'हल्' प्रत्याहार से भी जान सकते हैं। यहॉ हम पॉचवें माहेश्वर सूत्र 'हयवरट्' से 'ह' लेते हैं तथा चौदहवें माहेश्वर सूत्र 'हल्' से 'ल्' लेकर 'हल्' प्रत्याहार बनाते हैं। 'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'ल्' के सहित आदि वर्ण 'ह' बीच के 33 वर्णो 'ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ष स ह' के साथ अपना अर्थात् 'ह' का बोध कराता है। इस प्रकार 'हल्' प्रत्याहार में 34 ('ह' का प्रयोग दोबार है।) वर्ण होते हैं। यहॉ यह ध्यातव्य है कि 'हयवरट्' से लेकर 'हल्' तक के सूत्रों में आये अन्तिम वर्णो (अनुबन्ध या इत्संज्ञक वर्ण) को छोड़ कर ही अन्य वर्णों की संख्या निर्धारित करेंगे। यहॉ इत्संज्ञक वर्ण हैं- 'हयवरट्' में 'ट्' लण् में 'ण्' 'ञमड़णनम्' में 'म्' 'झभञ्' में 'ञ्', 'घढ़धष्' में 'ष्', 'जबगडदश्' में 'श्' 'खफछठथचटतव्' में 'व्' 'कपय्' में 'य्' 'शषसर्' में 'र्' एवं 'हल्'। इस प्रकार कुल इत्संज्ञक जिनकी गिनती नहीं की जानी है, की संख्या है दस (ट् ण् म् ञ् ष् श् व् र् एवं ल्) । यहॉ 'प्रत्याहार' शब्द का अर्थ 'संक्षेपीकरण' चरितार्थ होता है। हम 'हल्' प्रत्याहार के उच्चारण मात्र से उसके द्वारा तैंतीस वर्णों को जान लेते हैं। यदि प्रत्याहार विधि नहीं विकसित की जाती तो हमें तैंतीस वर्णों का अलग-अलग उच्चारण करना पड़ता। व्यञ्जन के सभी वर्ण 'हल्' प्रत्याहार के अन्दर समाविष्ट हैं।

इसी प्रकार 'अल्' प्रत्याहार भी बनाया जा सकता है। 'अल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत स्वर एवं व्यंजन सभी वर्ण समाहित हो जाते हैं। 'अल्' प्रत्याहार को इस प्रकार बनाया जा सकता है। इसमें प्रथम सूत्र से 'अ' तथा अन्तिम सूत्र से 'ल्' लेकर 'अल्' प्रत्याहार बनाते हैं। प्रत्येक सूत्र के अन्तिम वर्ण को छोड़ते हुए अन्य सभी वर्णों की गिनती करने पर इसके अन्तर्गत स्वर एवं व्यंजन दोनों प्रकार के वर्णों का बोध हो जाता है।

उपर्युक्त उदाहरणों को देखने एवं समझने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक गण प्रत्याहार बनाना अवश्य सीख गये होंगे। चौदह सूत्रों के आधार पर बयालीस प्रत्याहार बनते हैं जिनका उपयोग पाणिनि ने अपने व्याकरण शास्त्र में किया है। इन प्रत्याहारों को वर्ण गणना के साथ निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

प्रत्याहारों का निरूपण—

1. अण् - अ इ उ।
2. अक् - अ इ उ ऋ लृ।
3. अच् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।
4. अट् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य वर।
5. अण् - अ इउ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
6. अम् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।

7. अश् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।
8. अल् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
9. इक् - इ उ ऋ लृ।
10. अच् - इ उ ऋ ऌ ए ओ ए औ।
11. इण् - इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
12. उक् - उ ऋ लृ।
13. एङ् - ए ओ।
14. एच् - ए ओ ऐ औ।
15. ऐच् - ऐ औ।
16. हश् - ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
17. हल् - हश्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
18. यण् - य व र ल।
19. यम् - य व र ल ञ म ङ ण न।
20-यञ् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।
21. यय् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
22. यर् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग उ द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
23. वश् - व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
24. वल् - व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
25. रल् - र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
26. मय् - म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
27. ङम् - ङ ण न।
28. झष् - झ भ घ ढ ध।
29. झश् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
30. झय् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
31. झर् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
32. झल् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
33. भष् - भ घ ढ ध।
34. जश् - ज ब ग ड द।
35. बश् - ब ग ड द।
36. खय् - ख फ छ ठ थ च ट त क प।
37. खर् - ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
38. छव् - छ ठ थ च ट त।
39. चय् - च ट त क प।
40. चर् - च ट त क प श ष स।
41. शर् - श ष स।

42. शल् - श ष स ह।

उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न—

अभी तक आपने माहेश्वर सूत्र के माध्यम से वर्णों एवं प्रत्याहारों का ज्ञान प्राप्त किया है। माहेश्वर सूत्र में अनुबन्धों या इत्संज्ञकों को छोड़कर कुल बयालीस वर्णों की गणना हुई है। इनमें नौ स्वर हैं तथा तैतीस व्यंजन हैं। नौ स्वरों में प्रथम पॉच (अ इ उ ऋ लृ) वे हैं जिनकी चर्चा अपेक्षित है, क्योंकि अन्य चार (ए ओ ऐ औ) केवल दीर्घ एवं प्लुत हैं। प्रथम पॉच स्वरों में 'लृ' को छोड़कर शेष चार 'अ, इ, उ, ऋ की ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत संज्ञा होती है। यथा-'अ' जब एक मात्रा वाला होता है तो ह्रस्व कहलाता है, द्वि मात्रा से युक्त होने पर दीर्घ (आ) कहलाता है तथा तीन मात्रा से युक्त हो जाने पर प्लुत (अ३) कहलाने लगता है। व्यंजन की आधी मात्रा होती है-

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चार्धमात्रिकम्॥

इस प्रकार ह्रस्व रूप से 'अ', दीर्घ रूप से 'आ' तथा प्लुत रूप से 'आ३' -ये 'अ' के तीन भेद हो जाते हैं। इसी प्रकार 'इ, उ एवं ऋ' के भी तीन-तीन भेद होते हैं। संस्कृत भाषा में 'लृ' स्वर का दीर्घ नहीं होता। अतः 'लृ' के दो भेद ही सम्भव हैं- ह्रस्व एवं प्लुत। पाणिनि ने इस बात को निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा हैं-

सूत्र - 'ऊकालो ह्रस्व दीर्घ प्लुतः' 1/2/27

उश्च ऊश्च उ३श्च वः। वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्।

अर्थात् एकमात्र, द्विमात्र और त्रिमात्र इन तीनों ऊकारों के उच्चारण काल के समान उच्चारण काल है जिसका वह स्वर क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञावाला है। दूसरे शब्दों में एक मात्रा वाले स्वर की ह्रस्व, दो मात्रा वाले स्वर की दीर्घ तीन मात्रा वाले स्वर की प्लुत संज्ञा होती है। यहॉ सूत्र में केवल ' उ ' को लेकर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के स्वरूप् को प्रस्तुत किया गया है। आप सभी इसी के आधार पर अन्य स्वरों के भेद को समझने का प्रयास करें।

सूत्र - उच्चैरुदात्त:1- 1- 29॥

तालु आदि के सखण्ड स्थानों के उपरि भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको उदात्त कहते हैं।

सूत्र - नीच्चैरनुदात्त: 1- 1- 30॥

कण्ठ तालु आदि के सखण्ड स्थानों के नीच के भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको अनुदात्त कहते हैं।

सूत्र - समाहार: स्वरित: 1- 1- 30॥

कण्ठ तालु आदि के स्थानों के मध्य भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको स्वरित कहते हैं। उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष है कि ' अ, इ, उ तथा ऋ '- ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत होते हैं ; ' लृ ' केवल ह्रस्व और प्लुत होता है तथा 'ए , ओ, ऐ एवं औ केवल दीर्घ और प्लुत होते हैं। **स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकानुनसिकत्वाभ्यां द्विधा।** जो ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत वह अनुनासिक अननुनासिक भेद से दो दो प्रकार के होते हैं इससे पहले हमने स्वर के भेदों को समझा है। अब अनुनासिक वर्ण कौन हैं सूत्र के माध्यम से जानेगें -

सूत्र - मुखनासिकावचनोऽनुनासिक:1-1- 8॥

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञ: स्यात्।

जिस वर्ण का उच्चारण नासिका से होता है उसे अनुनासिक कहते हैं।

तदित्थम् - अ इ उ ऋ एषां वर्णनां प्रत्येकमष्टादश भेदा: अ इ उ ऋ इन प्रत्येक वर्णो के अट्ठारह भेद होते हैं। **लृवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात्।** लृ वर्ण के बारह भेद होते हैं क्योंकि उसमें दीर्घ का अभाव होता है। **एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात्।** एच्- ए ओ ऐ औ – के प्रत्येक के बारह भेद होते हैं क्योंकि इसमें ह्रस्व का अभाव होता है।

सूत्र - तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णं 1-1- 9 ॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथ: सवर्णसंज्ञं स्यात्।

तालु आदि स्थान आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस वर्ण के समान हों उसकी आपस में सवर्ण संज्ञा होती है **ऋलृवर्णयोर्मिथ: सावर्ण्यं वाच्यम्**। ऋ और लृ वर्ण की आपस में सवर्ण संज्ञा होती है इसका प्रयोजन आगे बताया गया है - इसका मुख्य प्रयोजन है वर्णों के उच्चारण स्थानों एवं प्रयत्नों के अध्ययन के समय इसका समुचित प्रयोग। यथा-जब हम 'अ' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न की चर्चा करते हैं तो इस ह्रस्व 'अ' के साथ इसके दीर्घ रूप "आ" तथा प्लुत रूप 'आ३' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न का भी बोध हो जाता है। यदि 'अ' का उच्चारण स्थान कण्ठ है तो दीर्घ 'आ' एवं प्लुत 'आ३' का उच्चारण स्थान भी कण्ठ ही होगा। इसी प्रकार अन्य स्वरों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के विषय में समझना चाहिये। उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न संस्कृत व्याकरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। हम जिस भी वर्ण का उच्चारण करते हैं उसका कोई निश्चित स्थान होता है एवं वह किसी निश्चित प्रयत्न से ही हमारे मुख से बाहर आता है।

उच्चारण स्थानों का परिचय—

उच्चारण स्थान ग्यारह हैं -1. कण्ठ, 2. तालु 3. मूर्धा 4. दन्त, 5. ओष्ठ, 6. उपर्युक्त स्थानों के साथ नासिका, 7.कण्ठ एवं तालु, 8. कण्ठ एवं ओष्ठ, 9. दन्त एवं ओष्ठ 10. जिह्वामूल और 11. नासिका। इनमें कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त ओष्ठ, जिह्वामूल एवं नासिका स्वतन्त्र रूप से वर्णो के उच्चारण स्थान हैं, परन्तु मुखनासिका,कण्ठ तालु कण्ठ ओष्ठ एवं दन्त ओष्ठ मिश्रित रूप से ही वर्णों के उच्चारण में अपना योगदान देते हैं।अब हम अधोलिखित पंक्तियों के माध्यम से उच्चारण स्थान एवं उनसे उच्चरित होने वाले वर्णों को जानेंगे-

1. कण्ठ - 'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ:'

यहॉ ध्यातव्य है कि 'कु' से कवर्ग, 'चु' से चवर्ग, 'टु' से टवर्ग 'तु'तवर्ग एवं 'पु' से पवर्ग का बोध होता है। अकार (दीर्घ 'आ' एवं प्लुत 'आ३' के साथ), कवर्ग (क, ख, ग, घ, ड़,) हकार और विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है।

2. तालु-इकार-'इचुयशानां तालु'

(दीर्घ 'ई' एवं प्लुत 'ई३' के साथ), चवर्ग (च, छ, ज, झ ञ), य और श का उच्चारण स्थान तालु है।

3. मूर्धा- 'ऋटुरषाणां मूर्धा'

ऋ (दीर्घ 'ऋ' एंव प्लुत 'ऋ३' के साथ), टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ,ण), (रेफ) और ष का उच्चारण स्थान मूर्धा हैं।

4. दन्त- 'लृतुलसानां दन्ता:'

लृ (प्लुत 'लृ३' के साथ), तवर्ग (त, थ, द, ध, न), ल और स का उच्चारण स्थान दन्त है। जैसा कि हमने पहले जाना है कि लृ का दीर्घ नहीं होता, केवल ह्रस्व और प्लुत होता है।

5. ओष्ठ – **'उपूपध्मानीयानामोष्ठौ'** उ (दीर्घ 'ऊ' एव के साथ), पवर्ग (प, फ, ब, भ, म), और उपध्मानीय का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। प, फ से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। यथा- दन प दन फ'।

6. उपर्युक्त स्थानों के साथ नासिका -'ञमङणनानां नासिका च'।

ञ, म, ङ, ण और न का उच्चारण स्थान नासिका भी है। तात्पर्य यह है कि 'ञ' का उच्चारण स्थान तालु हैं। किन्तु इसके साथ ही 'ञ' का उच्चारण स्थान नासिक भी है। निष्कर्ष यह है कि 'ञ' का उच्चारण स्थान ओष्ठ एवं नासिका, 'ङ' का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं नासिका, 'ण' उच्चारण स्थान मूर्धा एवं नासिक तथा न का उच्चारण स्थान दन्त एवं नासिका समझना चाहिये।

7. कण्ठ एवं तालु - 'एदैतोः कण्ठतालु'

ए और ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं तालु है।

8. कण्ठ एवं ओष्ठ-'ओदौतोः कण्ठोष्ठम्'।

ओ औ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं ओष्ठ है।

9. **'वकारस्य दन्तोष्ठम्'।**

व का उच्चारण स्थान दन्त एवं ओष्ठ है।

10. **जिह्वामूल-'जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्'**

जिह्वामूलीय का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है। 'दन क दन ख' इस प्रकार 'क' 'ख' से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। जिह्वामूल का अर्थ है जिह्वा का उद्गम स्थान अर्थात् जहॉ से जिह्वा आरम्भ होती है।

11. **नासिका-'नासिकानुस्वारस्य'**

अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है। यहॉ तक हमने वर्णों के उच्चारण स्थान के विषय में जाना। आगे हम वर्णों के उच्चारण में लगने वाले प्रयत्न के विषय में जानेंगे।

प्रयत्न परिचय—

वर्णों के उच्चारण में जो चेष्टा करनी पड़ती है उसे प्रयत्न कहने हैं। **'प्रकृष्टो यत्रः प्रयत्नः'** अर्थात् वर्णों के उच्चारण से पहले सुनियोजित एवं सुविचारित रूप से जो चेष्टा होती है वह प्रयत्न कहलाता है। यह प्रयत्न दो प्रकार का है **'यत्नो द्विधा'- आभ्यन्तरो बाह्यश्च।** वर्णों के मुख के बाहर आने से पहले मुख के अन्दर जो प्रयत्न होता है उसे आभ्यन्तर कहते हैं। यह प्रयत्न पहले होता है तथा इसके विना बाह्य प्रयत्न निष्फल है। बाह्य प्रयत्न वह है जो वर्णों के मुख से बाहर निकलते समय किया जाता है। उसका अनुभव सुननेवाला भी कर सकता है। प्रयत्नों को निम्नलिखित प्रकार से जान सकते हैं।-

आभ्यन्तर प्रयत्न - यह पॉच प्रकार का होता है।

'आद्यः पंचधा - स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतसंवृतभेदात्' 1. स्पृष्ट, 2. ईषत्स्पृष्ट, 3. ईषद्विवृत, 4. विवृत और 5. संवृत।

1.**स्पृष्ट** - स्पृष्ट प्रयत्न से तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय जिह्वा के द्वारा **तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्'**। 'क' से लेकर 'म' तक अर्थात् कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के अन्तर्गत

आनेवाले पच्चीस वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। इन पच्चीस वर्णो के उच्चारण में जो प्रयत्न लगता है वह स्पृष्ट है।

2. **ईषत्स्पृष्ट** - इसका तात्पर्य है जिह्वा के द्वारा उच्चारण स्थानों के कुछ स्पर्श से। ईषत्स्पृष्ट अन्तःस्थों का होता है-**'ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्'।**'यण्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आनेवाले वर्ण यथा-य व र ल अन्तःस्थ कहलाते हैं। अन्तःस्थ का अर्थ है बीच में रहनेवाला। य, व, र, ल ये चार वर्ण स्वर और व्यंजन के बीच में स्थित है इसीलिए अन्तःस्थ कहलाते हैं। माहेश्वर सूत्रों के अन्तर्गत भी पाणिनि ने स्वरों के पश्चात एवं व्यन्जनों से पहले अर्थात् दोनों के बीच में अन्तःस्थों य,व,र,ल को स्थान दिया है। इस प्रकार य, व, र, ल स्वर एवं व्यंजन दोनों हैं, इन अन्तःस्थों का प्रयोग सन्धि प्रकरण में जान पाएंगे।इनके उच्चारण में जो प्रयत्न लगता है उसे ईषत्स्पृष्ट कहते हैं।

3. **ईषद्विवृत** - इसका तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय कण्ठ का थोड़ा खुलना। ईषद्विवृत उष्म वर्णों का होता है-**'ईषद्विवृतमुष्मणाम्'।** 'शल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आनेवाले श, ष, स, ह वर्ण ऊष्म कहलाते हैं-**'शल् उष्माणः।** इनके उच्चारण के लिये लगने वाले प्रयत्न को ईषद्विवृत कहते हैं।

4**. विवृत** - इस प्रयत्न से तात्पर्य है वर्णों के उच्चारण के समय कण्ठ का पूर्ण रूप से खुला रहना विवृत स्वरों अर्थात् अ, इ,उ,ऋ,लृ, ए, ओ, ऐ तथा औ वर्णों का होता है-**' विवृतं स्वराणाम् '।** इन वर्णों के उच्चारण में लगने वाला प्रयत्न ही विवृत कहलाता है।

5**.संवृत** - जब ह्रस्व 'अकार' का सिद्ध रूप में प्रयोग होता है तब वहॉ संवृत प्रयत्न होता हैं, किन्तु प्रक्रिया की अवस्था में उसमें विवृत प्रयत्न होता है-'प्रक्रिया दशायां तु विवृतमेव'। यथा - 'दण्ड आढकम्' यहॉ 'दण्ड' में 'ड्' के साथ आने वाला 'अ' का संवृत प्रयत्न है तथा 'आढकम्' का आदि वर्ण 'आ' का विवृत। लेकिन यहॉ समस्या यह है कि संवृत 'अ' तथा 'आ' की सवर्ण संज्ञा नहीं होने से अर्थात् दोनो के प्रयत्न समान नही होने से 'अकः सवर्णे दीर्घः; सूत्र से दीर्घ नही हो सकता, क्योंकि सवर्ण स्वर परे रहने पर ही दीर्घ संभव है। इसीलिये संधि काल में 'अ' अपने सिद्ध स्वरूप को त्यागकर साधन अवस्था में आ जाता है। साधन अवस्था ही प्रक्रिया की अवस्था है। इस प्रकार प्रक्रिया अवस्था में आने से दोनों में सवर्ण संज्ञा होती है जिसके कारण 'दण्डआढकम् में 'दण्डआढकम्' में 'दण्ड' का 'ड' के साथ रहने वाले 'अ' एवं 'आढकम् के आदि वर्ण 'आ' का दीर्घ होकर 'दण्डाढकम्' यह रूप सिद्ध होता है।

बोध प्रश्न—

बहुविकल्पात्मक प्रश्न—

1. हलन्त्यम् सूत्र से होती है-

(अ) इत्संज्ञा (ब) टि संज्ञा (स) पदसंज्ञा (द) लोपसंज्ञा

2. प्रत्याहार होते हैं -

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) बयालीस

3. प्रयत्न होते हैं

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) दो

4. आभ्यन्तर प्रयत्न होता है

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द)पाच

5. बाह्य प्रयत्न होते हैं-

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) ग्यारह

लघुउत्तरीय प्रश्न—

1. अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले वर्णों को बतायें।
2. माहेश्वर सूत्र के अन्तर्गत व्यंजन वर्णों की संख्या बताये।
3. त्रिमुनि से आप क्या समझते हैं?
4. इत्संज्ञा से क्या तात्पर्य है?
5. प्रत्याहार विधायक सूत्र का नाम लिखें।

6. निम्नलिखित रिक्तस्थानों की पूर्ति करें-

क. ह का उच्चारण स्थान.....है।

ख. तालु.....वर्णो का उच्चारण स्थान है।

ग. अनुस्वार का उच्चारण स्थान.....है।

घ. पवर्ग के अन्तर्गत .....वर्ण आते हैं।

ड़. प्रयत्न के भेद..... हैं।

7. निम्नलिखित विकल्पों में से सही उत्तर चुने-

1. 'ष' का उच्चारण स्थान है-

(क) दन्त (ख) मूर्धा

(ग) तालु (घ) ओष्ठ

2. सवर्ण संज्ञा के लिये आवश्यक है-

(क) उच्चारण स्थान एवं आभ्यन्तर प्रयत्न

(ख) प्रत्याहार एवं उपदेश

(ग) बाह्यप्रयत्न एवं उच्चारण स्थान

(घ) संयोग एवं उदात्त

8. सुबन्त और तिङन्त की कौन संज्ञा होती है।

9. एक मात्रा वाले वर्ण किस नाम से जाने जाते है।

10. ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत में से लृ का कौन सा भेद प्राप्त नहीं होता?

11. सत्य / असत्य बताइये-

(क) ए का उच्चारण स्थान कण्ठ तालु/कण्ठ ओष्ठ है।

(ख) माहेश्वर सूत्रों की संख्या चौदह/पन्द्रह है।

(ग) स्वर सन्धि में संहिता / संयोग संज्ञा की आवश्यकता होती है।

आभ्यन्तर प्रयत्न तालिका—

क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म - **क से लेकर म तक वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न होता है।** य व र ल **इन वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है।** श, ष, स, ह **इन वर्णों का ईषद्विवृत, प्रयत्न होता है।** अ, इ, उ, ऋ, लृ, ऐ, ओ, ऐ, औ **इन वर्णों का विवृत, प्रयत्न होता है।**

वाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा – विवार: संवार: श्वासो नादो घोषो अघोषो अल्पप्राणो महाप्राणो उदात्तोऽनुदात्त: स्वरितश्चेति।

वाह्य प्रयत्न- वाह्य प्रयत्न के ग्यारह भेद होते हैं - 1. विवार 2.संवार 3. श्वास 4.नाद 5.घोष 6. अघोष, 7. अल्पप्राण, 8. महाप्राण, 9.उदात्त, 10 अनुदात और 11. स्वरित।

खरो विवार: श्वासा अघोषाश्च –खर् (ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह) प्रत्याहार में आने वाले वर्णो का विवार श्वास अघोष प्रयत्नहोता है।

हश: संवारा: नादा घोषाश्च – हश् (ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) प्रत्याहार में आने वाले वर्णों का संवार नाद और घोष प्रयत्न होता है।

हश् (ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) प्रत्याहार में आने वाले वर्णों का संवार नाद और घोष प्रयत्न होता है।

अच् प्रत्याहार—

(अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ) के वर्णों का .उदात्त, अनुदात्त और स्वरित प्रयत्न होता है।

वर्गाणां प्रथम- तृतीय पंचमा यणश्चाल्पप्राणा: वर्गों के प्रथम - तृतीय पंचम (यथा कवर्ग में प्रथम वर्ण क, तृतीय वर्ण ग, पंचम वर्ण ङ, यण्- य, व, र, ल) वर्णों तथा यण् प्रत्याहार के वर्णों का अल्पप्राण होता है।

वर्गाणां द्वितीय- चतुर्थौ शलश्च महाप्राणा: वर्गों के द्वितीय- चतुर्थ (यथा कवर्ग में द्वितीय वर्ण ख, चतुर्थ वर्ण घ, शल्- श, ष, स, ह) वर्णों तथा शल् प्रत्याहार के वर्णो का महाप्राण होता है।

1. **विवार** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय मुख खुलता है उन वर्णों का प्रयत्न होता है।
2. **संवार** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय मुख संकुचित रहता है उन वर्णों का संवार प्रयत्न होता है।
3. **श्वास** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय भीतर की वायु स्वरतन्त्री को बिना झंकृत करती हुई बाहर आ जाती है, उन वर्णों के लिए यह श्वास प्रयत्न होता है।
4. **नाद** - जिन वर्णो के उच्चारण करते समय भीतर की वायु स्वरतन्त्री को झंकृत करती हुई बाहर आ जाती है उन वर्णो के लिए यह नाद प्रयत्न होता है।
5. **घोष**:- जिन वर्णो के उच्चारण में गॅूज होती है वह घोष -प्रयत्न होता है।
6. **अघोष** - जिन वर्णों के उच्चारण में गूज नहीं होती है वह अघोष प्रयत्न होता है।
7. **अल्पप्राण**-वर्णो के उच्चारण में प्राणवायु का अल्प प्रयोग अल्पप्राण प्रयत्न है।
8. **महाप्राण**- वर्णों के उच्चारण में प्राणवायु का अधिक उपयोग महाप्राण प्रयत्न कहलाता है।
9. **उदात्त** - तालु आदि स्थानों के ऊपरी भाग से उच्चारण किया जाना उदात्त प्रयत्न कहलाता है
10. **अनुदात्त** - तालु अदि स्थानों के निम्न भाग से उच्चारण किया जाना अनुदात्त प्रयत्न कहलाता है।
11. **स्वरित**- तालु आदि स्थानों के मध्य भाग से उच्चारण किया जाना स्वरित प्रयत्न कहलाता है। यहॉ यह जानना आवश्यक है कि मुख के भीतर कण्ठ, तालु आदि स्थान हैं। उन पर जब भीतर से प्रेरित वायु का आघात होता है तब वर्णों की उत्पत्ति होती है। उन सभी स्थानों के तीन भाग है - ऊपर, नीचे तथा मध्य। इसी दृष्टि से उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित प्रयत्नों को जानना चाहिये।

अनुस्वार और विसर्गः ये दो हमेशा स्वर के ही आगे आते हैं, व्यंजनों के नहीं - **अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ ।** उपरिवर्णित उच्चारण स्थानों एवं आभ्यन्तर प्रयत्नों का मुख्य प्रयोजन

सवर्ण संज्ञा की सिद्धि है। बाह्य प्रयत्नों का सवर्ण संज्ञा में कोई उपयोग नहीं है। सवर्ण संज्ञा किस प्रकार होती है- इस विषय में पाणिनि का कथन है कि तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस-जिस वर्णों के समान हों वे वर्ण परस्पर सवर्ण संज्ञा वाले होते हैं। यहॉ 'दैत्य अरिः' इस स्थिति में 'य' के बाद आनेवाले ' अ ' के परे 'अरि' का आदि वर्ण 'अ' है, यहॉ पहले 'अ' और बाद आनेवाले दूसरे ' अ ' परस्पर सवर्ण हैं, क्योंकि दूसरे 'अ' का उच्चारण स्थान और प्रयत्न वही है जो पहले 'अ' का है। इस प्रकार दोनों 'अ' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के समान होने से दोनों सवर्ण संज्ञक हुए एवं परिणामस्वरूप दोनों में दीर्घ सन्धि सम्भव हुई। यहॉ एक अपवाद है। 'ऋ' और ' लृ ' वर्णो के उच्चारण स्थान भिन्न होते हैं, फिर भी इनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है- **'ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्'** सवर्ण संज्ञा का प्रयोग संधि प्रकरण में विशेष रूप से दिखाया जाएगा।

अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः 1-1- 69 ।। प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः। जो प्रतीत होता हो , जिसका विधान किया जाता हो वह प्रत्यय है।

अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। जिस का विधान न किया गया हो ऐसा अण् और उदित् सवर्ण संज्ञा का वोधक होता है। **अत्रैवाण परेण णकारेण -** केवल इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार णकार तक समझना चाहिये।

कु चु टु तु पु एते उदितः कु चु टु तु पु ये उदित् कहे गये हैं। **तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा-** इस कारण अ अट्ठारह प्रकार का बोधक होता है। **तथेकारोकरौ** - इस कारण इकार उकार भी अट्ठारह प्रकार के बोधक होते हैं। **ऋकारस्त्रिंशतः एव लृकारोऽपि-** ऋकार 30 का बोधक होता है इसी प्रकार लृकार भी। **एचो द्वादशानाम्** - एच् (ए ओ ऐ औ) बारह प्रकार के होते हैं। **अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा-** अनुनासिक और अननुनासिकभेद से य व ल दो दो प्रकार के होते हैं। **तेनाननुसिकास्ते द्वयोद्वयो संज्ञा-** इसी लिये अनुनासिक भेद से य व ल की दो दो संज्ञाये होती हैं।

संहिता संज्ञा—

परः सन्निकर्षः संहिता 1- 4 -109 ।। वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

वर्णो की अत्यन्त समीपता की संहिता संज्ञा होती है संहिता का उदाहरण सन्धि प्रकरण में दिया गया है।

संयोग संज्ञा—

'हलोऽनन्तराः संयोगः।1/1/7 अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञा स्युः'

स्वर वर्णों (अचों) के व्यवधान से रहित व्यंजनों (हलों) की संयोग संज्ञा होती है। दूसरे शब्दों में जिन दो व्यन्जनों के बीच में स्वर न हो, उन दोनों व्यंजनों की मिलाकर संयोग संज्ञा होती है। यथा- 'सुधय् उपास्यः'। यहॉ 'ध् य्' ये दो व्यन्जन स्वर के व्यवधान से रहित है अर्थात् इन दोनों व्यन्जनों के बीच में कोई स्वर नहीं है। अतः उनकी संयोग संज्ञा हो जाती है। संयोग का मुख्य प्रयोजन व्यंजन सन्धि का सम्पादन है।

पद संज्ञा—

सुप्तिङन्तं पदम् 1-1–14 ।।

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

सुप् प्रत्यय जिसके अन्त में हो उसे सुबन्त तथा तिङ् प्रत्यय जिसके अन्त में हो उसे तिङन्त कहा जात है। 'सुप्' एवं तिङ्' ये दो प्रत्याहार हैं। सुप् के अन्तर्गत इक्कीस प्रत्यय आते हैं जिनका प्रयोग 'रामः' इत्यादि की सिद्धि के लिये सुबन्त प्रकरण में किया जाता है। तिङ् के अन्तर्गत अठारह प्रत्यय हैं जिनका प्रयोग 'भवति' इत्यादि की सिद्धि के लिये तिङन्त प्रकरण में किया जाता है। पद संज्ञा के प्रयोग के विषय में पाठक उन्हीं अध्यायों में विस्तार पूर्वक जान पाएंगे। प्रत्येक संज्ञा के लिए विधायक सूत्र और संज्ञा सूत्र अलग प्रयुक्त है।

1.5 सारांश

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि व्याकरण शास्त्र का आधार माहेश्वर सूत्र हैं। माहेश्वर सूत्रों के आधार पर वयालीस प्रत्याहार बनाये जा सकते हैं। प्रत्याहारों के माध्यम से अनेक वर्णों को संक्षिप्त एवं वैज्ञानिक विधि से अल्प प्रयास से जाना जा सकता है।

1.6 शब्दावली

1. सूत्रः अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोसुखम्।
असतोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।

अर्थात् कम वर्ण वाले, संदेह रहित, सार की तरह, अनेक मुख वाले, निरन्तरता से युक्त तथा शुद्ध पद या पद समूह को विद्वान लोग सूत्र कहते हैं। यथा-चौदह माहेश्वर सूत्र, हलन्त्यम् इत्यादि।

2. प्रत्ययः धातु एवं शब्द के आगे जुड़ने वाले सुप्, तिङ् आदि प्रत्यय कहलाते हैं।

3. समय के अंश विशेष को मात्रा कहते हैं। सामान्यतः पलक गिरने अथवा चुटकी बजाने में लगने वाले समय से एक मात्रा का बोध होता है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पात्मक

1. (अ) 2. (द) 3. (द) 4. (द) 5. (द)

उत्तर

1. अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ तथा औ।
2. 33 ('ह' का दो बार प्रयोग हुआ है)।
3. पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि।
4. उपदेश, अवस्था में अन्तिम व्यंजन की इत्संज्ञा होती है।
5. आदिरन्त्येन सहेता।
6. (क) कण्ठ

(ख) इ, च, छ, ज, झ, ञ, य तथा श।

(ग) नासिका

(घ) प, फ ब, भ तथा म।

(ड़) आभ्यन्तर एवं बाह्य।

7. (क) मूर्धा

(ख) उच्चारण स्थान एवं आभ्यन्तर प्रयत्न।

8. पद संज्ञा

9. ह्रस्व

10. दीर्घ

11. (क) कण्ठ तालु (ख) चौदह (ग) संहिता

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक श्री धरानन्द शास्त्री (2000)मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार-महेशसिंह कुशवाहा, (1994) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

1.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र कमलाकान्त, व्याकरण सौरभम्, (2002) एन. सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।

2. शास्त्री, चक्रधर नौटियाल 'हंस', बृहद् अनुवादचन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032)ज्ञानदा प्रकाशन, पटना

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चौदह माहेश्वर सूत्रों का परिचय दीजिए।

2. अल् प्रत्याहार की निर्माण विधि को समझाते हुए उसके अन्तर्गत आने वाले वर्णों परिचय दीजिए।

3. सवर्ण संज्ञा से आप क्या समझते है।

4. आभ्यन्तर प्रयत्न पर टिप्पणी लिखें।

5. बाह्य प्रयत्न की भेद सहित प्रस्तुति करें।

6. व्याख्या करें।

(क) संहिता संज्ञा

(ख) संयोग संज्ञा

(ग) पद संज्ञा

7. संज्ञा प्रकरण पर एक निबन्ध लिखें।

इकाई .2 सन्धि प्रकरण : स्वर सन्धि

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 स्वर सन्धि: अर्थ एवं महत्त्व
2.4 स्वर सन्धि के प्रमुख भेद
    2.4.1 यण् सन्धि
    2.4.2 अयादि सन्धि
    2.4.3 गुण सन्धि
    2.4.4 दीर्घ सन्धि
    2.4.5 वृद्धि सन्धि
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों कें उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची
2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

संस्कृत व्याकरण-पत्रलेखन एवं निबन्ध नामक पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड (AECC-S-102) सन्धि के अर्थ और प्रक्रियात्मक ज्ञान से सम्बन्धित यह द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि चौदह माहेश्वर सूत्र क्या हैं प्रत्याहार का निर्माण किस प्रकार किया जाता है वर्णों के उच्चारण के स्थान एवं प्रयत्न क्या हैं एवं इनकी संख्या कितनी है, संहिता आदि संज्ञा किसे कहते हैं ? संज्ञा प्रकरण का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् आप स्वर सन्धि का विधिवत अध्ययन कर रहे हैं।

इस इकाई में मुख्य रूप से यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या साथ उनके उदाहरणों को प्रक्रिया के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सम्बन्धी विधायक सूत्रों को उदाहरण के साथ समझा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों को बता सकेंगे।
- यण्, अयादि, गुण आदि सन्धि के विधायक सूत्रों को व्याख्या सहित समझा सकेंगे।
- यण् आदि सन्धि की प्रक्रिया को जानकर अपनी भाषा एवं लेखन में उसका ठीक प्रकार से प्रयोग कर पायेंगे।
- स्वर सन्धि के उपर्युक्त भेदों का संस्कृत व्याकरण के अन्य प्रकरणों में उपयोग भी बता सकेंगे।
- स्वर-सन्धि सम्बन्धी समस्याओं को सुलझा पायेंगे।
- किसी भी भाषा में स्वर-सन्धि के समान संरचना को स्थापित करने की विधि का विकास करेंगे।
- संस्कृत भाषा के अर्थनिर्धारण आदि में इसका उपयोग कर पायेंगे।

2.3 स्वर सन्धि : अर्थ एवं महत्त्व

संस्कृत के प्रत्येक शब्द के अन्त में कोई स्वर, व्यंजन, अनुस्वार अथवा विसर्ग अवश्य रहता है तथा उस शब्द के आगे जब किसी दूसरे शब्द के होने से उनका मेल होता है तब पूर्व शब्द के अन्त वाले स्वर, व्यंजन आदि में कुछ परिवर्तन हो जाता है। उस प्रकार के मेल हो जाने से जो परिवर्तन होता है, उसे सन्धि कहते हैं। 'सन्धि' का अर्थ है 'मेल'। उस परिवर्तन से कहीं पर दो अक्षरों के स्थान पर एक नया अक्षर हो जाता है, जैसे – गंगा+ईश: गंगेश:, कहीं पर एक अक्षर का लोप हो जाता है, जैसे – छात्रा: गच्छन्ति छात्रा गच्छन्ति, और कहीं पर दो अक्षरों के बीच में एक नया अक्षर आ जाता है, जैसे – धावन् अश्व: धावन्नश्व: । पहले उदाहरण में 'आ"ई- 'ए', दूसरे उदाहरण में विसर्ग का लोप तथा तीसरे उदाहरण में एक अतिरिक्त 'न्' उपस्थित हो गया। इस प्रकार वर्णों के मेल होने को ही सन्धि कहते हैं।

सन्धियाँ मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं :- 1. स्वर (अच्) सन्धि, 2. व्यंजन (हल) सन्धि और 3. विसर्ग सन्धि।

एक स्वर के साथ दूसरे स्वर के मेल होने से जो परिवर्तन होता है, उसे स्वर सन्धि कहते हैं। संज्ञा प्रकरण के अध्ययन से आप संहिता के विषय में अवश्य जान गये होंगे। जहॉ पर "पर: सन्निकर्ष: संहिता" इस सूत्र में बताया गया है कि – **वर्णानामतिशयित: सन्निधि: संहिता संज्ञ: स्यात्** अर्थात् वर्णों के अतिशयित (अत्यधिक समीपता) सामीप्य को संहिता कहते हैं। स्वर सन्धि के लिए संहिता की अनिवार्यता होती है। संस्कृत वाक्य में सन्धि-कार्य वैकल्पिक है अर्थात् वक्ता की इच्छा पर निर्भर करता है किन्तु एक पद में, धातु और उपसर्ग के मिलने पर तथा समास में संहिता अनिवार्य रूप से होती है -

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयो:।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते।

उदाहरण के लिये-

(क) अनिवार्य -

1. पदगत सन्धि – बालकेन (बालक + इन)
2. उपसर्ग और धातु (क्रिया) के बीच सन्धि – उपैति (उप +एति)
3. समासगत सन्धि – सूर्योदय: (सूर्यस्य उदय:, सूर्य + उदय:

(ख) वैकल्पिक या वक्ता की इच्छा पर निर्भर:-

वाक्य में पदों के बीच सन्धि -

सुरेशो ग्रामादागच्छति।

अथवा

सुरेश: ग्रामात् आगच्छति

प्रस्तुत स्वर सन्धि प्रकरण में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ और वृद्धि सन्धि के नियमों का विधान करने वाले सूत्रों की उदाहरण के साथ व्याख्या प्रस्तुत की जायेगी।

2.4 स्वर सन्धि के प्रमुख भेद

स्वर सन्धि के भेदों में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। यहॉ हम क्रमश: इनके विधायक सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या जानेंगे।

2.4.1 यण् सन्धि (य्,व्, र्, ल्)—

नियम – ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, ऌ के बाद किसी असवर्ण स्वर के आने पर इ का य्, उ का व्, ऋ का र् तथा ऌ का ल् हो जाता है। यण् सन्धि मुख्यत: यण् प्रत्याहार पर आधारित है। जैसा कि आप 'संज्ञा प्रकरण' में जान चुके हैं कि यण् प्रत्याहार के अन्तर्गत य्, व्, र्, तथा ल् वर्ण आते हैं तथा ये वर्ण अन्त:स्थ कहलाते हैं। अन्त:स्थ का अर्थ है बीच में रहने वाला। अर्थात् ये चार वर्ण स्वर और व्यंजन के बीच में स्थित हैं। प्रस्तुत प्रसंग में इ, उ, त्र अथवा ऌ के बाद यदि स्वर वर्ण हो तो इ, उ, ऋ अथवा ऌ के स्थान में क्रमश: य्, व्, र् अथवा ल् आदेश होता है। तात्पर्य यह है कि इ य् में, उ व् में, ऋ र् में तथा ऌ ल् में परिवर्तित हो जाता है। इन बातों को पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा है -

सूत्र- इको यणचि। 6.1.77

इक: स्थाने यण् स्यात् अचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य: इति स्थिते।

अर्थात संहिता की स्थिति में इक. (इ, उ, त्र, लृ) के स्थान में यण् (य्, व्, र्, ल्) आदेश हो। यहॉ यह ध्यान देने योग्य है कि दो स्वर वर्णों के मध्य अत्यधिक समीपता हो तथा इ, उ, ऋ अथवा लृ के बाद कोई स्वर हो तब क्रमश: उपर्युक्त परिवर्तन होता है उदाहरण – सुधी + उपास्य:। यहॉ 'ध्' के बाद आने वाले 'ई' के बाद 'उ' है। अत: स्वर 'उ' के पर में रहने पर 'ई' का 'य्' आदेश हो जाता है तथा 'सु ध् य् + उपास्य: यह स्थिति बन जाती है।

यहॉ यह विचारणीय है कि 'सुधी + उपास्य:' में इक् तीन हैं यथा – 'स्' के बाद 'उ' (इक् है), 'ध्' के बाद 'ई' (इक् है) तथा 'उपास्य:' का पहला वर्ण 'उ' (इक् है)। इसके साथ ही प्रथम 'उ' के आगे 'ध्' के बाद आने वाला स्वर 'इ' है, इसी 'इ' के बाद 'उपास्य:' का पहला वर्ण स्वर 'उ' है तथा 'उ' के आगे 'प्' के बाद आने वाला स्वर 'आ' है। इस प्रकार तीनों इक् (उ, ई तथा उ) के आगे स्वर वर्णों के विद्यमान रहने से यण् सन्धि हो सकती है।

परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि पाणिनि का विधान है -

सूत्र- तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य। 1.1.66

सप्तमी निर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् । अर्थात् सप्तम्यन्त (सप्तमी विभक्ति जिस शब्द के अन्त में है) पद का उच्चारण कर जिस कार्य का विधान किया जाता है, वह कार्य वर्णान्तर से अव्यवहित (व्यवधान रहित) पूर्व वर्ण के स्थान में होता है।

तात्पर्य यह है कि जिस वर्ण के आगे रहने पर जिस वर्ण के कार्य का विधान किया गया हो उन दोनों वर्णों के बीच में किसी अन्य वर्ण को नहीं आना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण में सप्तमी विभक्ति वाला पद है 'अचि' ('अच्) का सप्तमी विभक्ति एक वचन में 'अचि' रूप बनता है) अर्थात् स्वर वर्णों के परे रहने पर 'इक्' (इ, उ, ऋ तथा लृ) अथवा अच् (स्वर वर्णों) के बीच में किसी अन्य वर्ण को नहीं रहना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण में प्रथम 'उ' और 'ई' के बीच में 'ध्', द्वितीय 'ई' आ और 'उ' के बिच में कोई व्यवधान नहीं तथा तृतीय 'उ' और 'आ' के बीच में 'प्' व्यवधान (बाधा) है। इस प्रकार केवल द्वितीय 'ई' और 'उ' बीच में किसी अन्य वर्ण की बाधा नहीं है। अत: सूत्र के अनुसार 'उ' के परे रहते 'ध्' के बाद आने वाले 'ई' को 'य्' हो जाता है। रूप इस प्रकार है – सु ध् य् + उपास्य: ॥

यहॉ एक अन्य प्रश्न उपस्थित होता है कि 'यण्' प्रत्याहार में चार वर्ण य्, व्, र्, तथा ल् हैं। उपर्युक्त उदाहरण में 'ई' का परिवर्तन 'य्' में ही क्यों होता है, व्, र्, या ल् में क्यों नहीं? इसका उत्तर पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र से दिया है-

सूत्र - स्थानेऽन्तरतम:। 1.1.50 प्रसंगे सति सदृशतम् आदेश: स्यात्।

अर्थात् एक स्थानी के स्थान पर कई आदेशों के उपस्थित होने पर उनमें जो स्थानी के सबसे सदृश हो, उसी का आदेश हो।

उपर्युक्त उदाहरण में एक स्थानी 'ई' है तथा उसके आदेश य्, व्, र् तथा ल् चार हैं। किन्तु संज्ञा प्रकरण की इकाई के अध्ययन से आप जान चुके होंगे कि 'ई' का उच्चारण स्थान तालु है तथा 'य्' का भी उच्चारण स्थान तालु ही है। व्, र् तथा ल् के उच्चारण स्थान तालु से भिन्न हैं, अत: 'ई' के सदृश नहीं हैं। इस प्रकार 'ई' का 'य्' आदेश हुआ, अन्य नहीं। फलत: 'सुध्, य् + उपास्य:' को मिला देने पर 'सुध्युपास्य:' यह रूप सिद्ध हुआ।

सुध्, य् + उपास्य: में यद्यपि वर्ण संयोग करने पर सुद्धयुपास्य: रूप बन जाता है किन्तु इसका विस्तृत प्रक्रियात्मक रूप इस प्रकार है –

सूत्र- अनचि च 8.4.47

अच: परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

अर्थात अच् के बाद यर् प्रत्याहार में आने वाले वर्णों को द्वित्व होता है, यदि उनके बाद कोई स्वर न हो। इस सूत्र से ध् को द्वित्व होकर सु ध् ध् य् + उपास्य: बन जाता है। इसके पश्चात् प्रस्तुत सूत्र का आगमन होता है।

सूत्र- झलां जश् झशि 8.4.53

स्पष्टम् इति पूर्व धकारस्य दकार:।

स्पष्ट ही है झल् प्रत्याहार को जश् प्रत्याहार होता है, यदि झश् प्रत्याहार बाद में हो। इस सूत्र से सु ध् ध् य् + उपास्य: में पूर्व के धकार को दकार हो गया और सु द् ध् य् + उपास्य: बन गया। यहाँ पर पुन: एक विशेष बात यह आती है कि **संयोगान्तस्य लोप: 8:2.2.3 सूत्र कहता है – संयोगान्तं यत्पदं तस्य लोप: स्यात्।"** अर्थात संयोगान्त जो पद हो उसका लोप हो जाता है। सु द् ध् य् + उपास्य: की स्थिति में द् ध् य् को संयोग संज्ञा होगी तथा संयोगान्तस्य लोप: सूत्र के अनुसार सु द् ध् य् इस पूरे पद का लोप हो जायेगा। किन्तु –

सूत्र- अलोऽन्त्यस्य 1:1.52

षष्ठी निर्दिष्टस्यान्त्यस्याल् आदेश: स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते अर्थात् षष्ठी विभक्ति से निर्दिष्ट को जो आदेश विहित रहता है वह उसी के अन्तिम अल् के स्थान में रहता है। अत: इस परिभाषा सूत्र के अनुसार संयोगान्त पद के अन्तिम अल् को ही लोप प्राप्त होगा परन्तु यण: प्रतिषेधो वाच्य: वार्तिक के अनुसार यण् का प्रतिषेध करना चाहिए। अत: लोप का निषेध होकर सु द् ध् य् + उपास्य: = सुद्ध्युपास्य: और "अनचि च" इसके विकल्प से "सुध्युपास्य:" दोनों रूप बनते हैं।

इसी प्रकार 'मध्वरि:' – मधु + अरि: में पूर्व वर्णित प्रक्रिया के आधार पर 'ध्' के बाद आने वाले 'उ' के परे अच् (स्वर वर्ण) 'अरि' का पहला वर्ण 'अ' है। अत: 'इको यणचि', 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' तथा 'स्थानेऽन्तरतम:' सूत्रों के आधार पर किसी अन्य वर्ण की बाधा से रहित 'उ' का, स्वर वर्ण 'अ' के परे रहने पर, अत्यन्त सदृश 'व्' आदेश होता है, क्योंकि 'उ' का उच्चारण स्थान ओष्ठ तथा 'व्' का उच्चारण स्थान 'दन्त और ओष्ठ' है। 'ओष्ठ 'उ' तथा 'व्' दोनों का उच्चारण स्थान एक होने से 'यण्' के अन्य वर्ण य्, र् तथा ल् की अपेक्षा सदृशतम है। अत: 'उ' का 'व्' में परिवर्तन हुआ और मध्व् + अरि: - 'मध्वरि:' रूप सिद्ध हुआ।

धात्रंश: - धातृ + अंश:' यहां 'त्' के बाद आने वाले 'ऋ' से परे अच् (स्वर वर्ण) 'अ' है। पूर्वोक्त सूत्र – 'इको यणचि', 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' तथा 'स्थानेऽन्तरतम:' के आधार पर 'ऋ' का 'अ' परे रहने पर 'र्' आदेशहुआ। 'र्' आदेश का कारण पूर्ववत् है। 'ऋ' तथा 'र्' दोनों वर्णों का उच्चारण स्थान मूर्धा होने के कारण दोनों सदृशतम हैं। 'यण्' के अन्य वर्ण य्, व् तथा ल् अन्य – अन्य स्थानों से उच्चरित होने के कारण 'र्' से पूर्णत: भिन्न हैं। इस प्रकार 'धात्र् + अंश: - धात्रंश: यह रूप सिद्ध हुआ।

लाकृति: - लृ + आकृति: - यहाँ 'लृ' का अच् (स्वर वर्ण) 'आ' परे रहते पूर्वोक्त सूत्रों से 'ल्' यण् आदेश हुआ। 'लृ' यण् आदेश हुआ। 'लृ' एवं 'ल्' – ये दोनों वर्ण दन्त स्थान से उच्चरित

होने से सदृशतम हैं । फलत: ल् + आकृति: यह रूप सिद्ध हुआ । उपर्युक्त चार उदाहरण 'सुध्युपास्य:', 'मध्वरि:', 'धात्रंश:' तथा 'लाकृति:' ' इक् (इ, उ, ऋ, तथा लृ) के चार आदेश क्रमश: य्, व्, र् तथा ल् के हैं। अन्य उदाहरण भी इसी प्रक्रिया के आधार पर साध्य होंगे।

अभ्यास प्रश्न 1 –

(1) निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -

क. इ/ ई – य्

अभि + उदय:

यदि + अपि

इति + आदि:

प्रति + उपकार:

नि + ऊन:

प्रति + एकम्

देवी + अनुग्रह:

नदी + एव

यादृशी + उक्ति:

(ख) उ/ ऊ – व्

अनु + अय:

सु + आगतम्

अनु + एषाम्

वधू + आगम

(ग) ऋ – र्

पितृ + इच्छा

मातृ + आज्ञा

(घ) लृ – ल्

लृ + आकृति

(2) सन्धि –विच्छेद कीजिये

इत्युक्त्वा

(क) अत्याचार:

(ख) गुर्वादेश:

(ग) पित्रुपदेश:

(घ) मात्रनुमति:

(ड.) भ्रात्रुक्तम्

(च) वध्वलंकार:

(छ) गौर्यायाति

(झ) वार्यस्ति

(ञ) दध्यानय

2.4.2 अयादि सन्धि (अय्, अव्, आय्, आव्)—

नियम - यदि ए, ओ, ऐ अथवा औ के बाद कोई स्वर वर्ण हो तो ए का अय्, ओ का अव्, ऐ का आय् तथा औ का आव् हो जाता है। जैसा कि उपर्युक्त नियम से ज्ञाता होता है कि इस सन्धि में अय्, अव्, आय् अथवा आव् आदेश होता है। अत: इसी आधार पर इसका नामकरण अयादि (अय् + आदि अर्थात् अय्, अव्, आय् अथवा आव्) है। इस तथ्यको पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से बताया है-

सूत्र - एचोऽयवायाव:। 6.1.78 एच: क्रमात् अय्, अव्, आय्, आव् एते स्युरचि।

अर्थात् एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के स्थान में क्रमश: अय्, अव्, आय्, आव् आदेश हो, अच् (स्वर वर्ण) के परे रहने पर।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि ए के स्थान पर अय्, ओ के स्थान पर अव्, ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् – ऐसा क्रमपूर्वक ही क्यों हो, क्रम में परिवर्तन क्यों नहीं हो सकता? इसका उत्तर पाणिनि एक अन्य सूत्र के माध्यम से देते हैं। वह है -

सूत्र- यथासंख्यमनुदेश: समानाम्। 1.3.10

समसम्बन्धी विधिर्य थासंख्यं स्यात्।

अर्थात् यदि स्थानी और आदेश की संख्या समान हो तो वहाँ पर आदेश क्रम से (प्रथम को प्रथम, द्वितीय को द्वितीय इत्यादि) होते हैं। तात्पर्य यह है कि एच् प्रत्याहार में चार वर्ण हैं – ए, ओ, ऐ, औ तथा होने वाले आदेशों की संख्या भी चार हैं – अय्, अव्, आय्, आव्।

इस प्रकार स्थानी और आदेशों की संख्या समान (चार-चार) होने के कारण आदेश क्रमपूर्वक ही होंगे। अर्थात् पहले ए को पहला आदेश अय्, दूसरे ओ को दूसरा आदेश अव्, तीसरे ऐ को तीसरा आदेश आय् तथा चौथे औ को चौथा आदेश आव् ही होगा। यहाँ क्रम का उल्लंघन संभव नहीं है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

हरये – हरे + ए – यहाँ 'र्' के बाद आने वाला 'ए' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है ऐसे 'ए' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'ए' है। अत: उपर्युक्त 'एचोऽयवायाव:' सूत्र के अनुसार पूर्व 'ए' को 'अय्' आदेश हो गया। फलत: 'हर् अय् + ए' ऐसा रूप बना। सबको मिलाने के पश्चात् ' हरये ' रूप सिद्ध हुआ।

विष्णवे – विष्णो + ए – यहाँ ' ण् ' के बाद आने वाला 'ओ' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है। ऐसे 'ओ' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'ए' है। अत: पूर्वोक्त सूत्र के अनुसार ' ओ ' को ' अव् ' आदेश हुआ। फलत- ' विष्ण् अव् + ए ऐसा रूप बना। सबको मिलाने के पश्चात् ' विष्णवे ' यह रूप निष्पन्न हुआ।

नायक: - नै + अक: - यहाँ 'न्' के बाद आने वाला ' ऐ ' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है। ऐसे 'ऐ' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'अ' है। अत:' एचोऽयवायाव:' सूत्र से 'औ' को 'आव्' आदेश हुआ। फलत: ' प् आव् + अक:' ऐसा रूप बना। सभी को जोड़ने के पश्चात् ' पावक:' रूप सिद्ध हुआ।

उपर्युक्त उदाहरणों के माध्यम से ए, ओ, ऐ, और का स्वर्ण वर्ण परे रहने पर क्रमश: अय्, अव्, आय्, आदेश किस प्रकार होता है – यह आप जान पाये। आगे आप इसके अपवाद को जानेंगे जिसमें अन्य व्यंजन वर्ण के परे रहने पर (आगे रहने पर) ओ, औ को क्रमश: अव्, आव् आदेश होता है। पाणिनि ने इस नियम को निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से समझाया है -

सूत्र - वान्तो यि प्रत्यये। 6.1.79

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्त:। गव्यम्। नाव्यम्।

अर्थात् यकारादि प्रत्यय परे रहते ('य' जिसके आदि में है ऐसा प्रत्यय जिसके आगे है) ओ, और के स्थान में क्रमश: अव्, आव् आदेश होता है। ये आदेश वान्त कहे जाते हैं। यथा – गव्यम्, नाव्यम् आदि। इसको उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

गव्यम् – गो + यम् – यहॉ 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' के आगे यकारादि प्रत्यय (य् जिसके आदि में है ऐसा प्रत्यय) 'यम्' है। अत: 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र के अनुसार 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' को 'अव्' ओदश हो गया। इससे 'ग् अव् + यम्' – यह रूप बना। सबको जोड़ने पर 'गव्यम्' रूप सिद्ध हुआ।

नाव्यम्: नौ + यम् – यहॉ 'न्' के बाद आने वाले 'औ' के आगे यकारादि प्रत्यय 'यम्' है। अत: 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र से 'औ' को 'आव्' आदेश हुआ। फलत: 'न् आव् + यम्' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'नाव्यम्' रूप सिद्ध हुआ।

इस प्रसंग में एक अन्य अपवाद भी द्रष्टव्य है -

मार्ग के परिमाण अर्थ में या दूरी के अर्थ में भी 'गो' शब्द के आगे 'यूति:' शब्द आये तो 'ओ' के स्थान में 'अव्' आदेश होता है। वार्तिककार कात्यायन ने इस नियम को निम्नलिखित वार्तिक से कहा है -

वार्त्तिक : अध्वपरिमाणे च। गव्यूति:।

उपर्युक्त उदाहरण गव्यूति: - गो + यूति: में 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' का 'यूति:' (मार्ग के परिमाण अर्थ में) शब्द के आगे रहने पर 'अव्' आदेश होकर 'ग् अव् + यूति:' ऐसा बना। सबको मिलाने पर 'गव्यूति:' (दो कोस) रूप सिद्ध हुआ।

टिप्पणी – पदान्त ए या ओ (पद के अन्त में आने वाले ए या ओ) के बाद 'अ' रहने पर यह नियम लागू नहीं होता। यथा -

वृक्षे + अपि – वृक्षेऽपि

विष्णो + अत्र – विष्णोऽत्र

इन दोनों में पूर्वरूप सन्धि है, अयादि नहीं।

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. निम्नलिखित में सन्धि कीजिये –

(I) ए – अय्

क. शे + अनम्

ख. ने + अनम्

ग. चे + अनम्

घ. शे + आन:

ड. शे + इत:

(II) ओ – अय्

क. पो + अन:

ख. लो + अन:

ग. पो + इत्रम.

घ. भो + अनम्

ड. भानो + ए

(III) ऐ – आय्

क. गै + अन:

ख. परिचै + अक:

(IV) औ – आव्

क. भौ + अक:

ख. नौ + इक:

ग. भौ + उक:

घ. बालकौ + आगतौ

2.4.3 गुण सन्धि (अ, ए, ओ)—

यदि अ वर्ण के बाद अच् हो तो पूर्व (पहले) और पर (बाद वाले) के (अ वर्ण और उस अच् के) स्थान में एक गुण आदेश होता है। अ, ए, तथा ओ को गुण कहते हैं।

इस नियम को पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा है -

सूत्र- आद् गुण:। 6.1.87

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेश: स्यात्। उपेन्द्र:। गंगोदकम्।

अर्थात् यदि 'अ' से अच् (स्वर वर्ण) आगे हो तो पहले और आगे वाले वर्णों (पहले तथा बाद वाले, दोनों वर्णों) के स्थान में गुण आदेश हो। यहॉ 'गुण' एक तकनीकी शब्द है। गुण से अ, ए तथा ओ वर्णों का बोध होता है। उससे यह ज्ञात होता है कि जब भी गुण आदेश हो तो अ, ए अथवा ओ रूप में हो। इसको उदाहरण के माध्यम से ठीक प्रकार से जाना जा सकता है।

उपेन्द्र: - उप + इन्द्र: - यहॉ 'प्' के आगे वर्तमान 'अ' है जिसके आगे इन्द्र का आदि वर्ण 'इ' (अच् – स्वर) है। इस स्थिति में पूर्व में पूर्व वर्ण 'अ' तथा बाद वाला वर्ण 'इ' – दोनों के स्थान में 'आद् गुण:' सूत्र से गुण एकादेश प्राप्त है। गुण एक आदेश से तात्पर्य है अ, ए अथवा ओ के रूप में आदेश। इनमें ए का उच्चारण स्थान कण्ठतालु है – ऐसा आप वर्णों के उच्चारण स्थान के माध्यम से भी जानते हैं। 'अ' का उच्चारण स्थान कण्ठ तथा 'इ' का उच्चारण स्थान तालु है। इस प्रकार जो उच्चारण स्थान 'अ' और 'इ' का है वही 'ए' का भी है। जैसा कि आप यण् सन्धि में जान आये हैं कि 'स्थानेऽन्तरतम:' सूत्र से आदेश सदृशतम का होता है। यहॉ 'अ' तथा 'इ' का उच्चारण स्थान की दृष्टि से सदृशतम 'ए' है। अत: उ प् अ + इन्द्र: में अ + इ का 'ए' गुण आदेश होने पर 'उ प् ए न्द्र:' ऐसा रूप हुआ। सबको मिलाने पर 'उपेन्द्र:' रूप सिद्ध हुआ।

गंगोदकम् – गंगा + उदकम् – यहॉ दूसरे 'ग्' के बाद आने वाले 'आ' के बाद 'उ' (उदकम् का 'उ' वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'आ' एवं 'उ' – इन दोनों वर्णों के स्थान पर एकादेश प्राप्त है। स्थानेऽन्तरतम:' सूत्र से आदेश सदृशतम होता है। यहॉ 'अ' का कण्ठ तथा 'उ' का उच्चारण स्थान कण्ठोष्ठ का सदृशतम है। अत: 'आ + उ' को गुण एकादेश 'ओ' होकर 'गंग् ओ दकम्' – यह रूप बना। सबको मिलाने पर 'गंगोदकम्' रूप सिद्ध हुआ।

कृष्णर्द्धि: - कृष्ण + ऋद्धि: - यहॉ 'ण्' के बाद 'अ' है तथा उसके आगे ऋ अच् (स्वर वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'अ' एवं 'ऋ' – इन दोंनों वर्णों के स्थान में गुण एकादेश प्राप्त है। अत: 'अ' एवं 'ऋ' – इन दोनों के स्थान पर गुण एकादेश 'अ' हुआ। किन्तु यहॉ यह ज्ञातव्य है

कि गुण एकादेश 'अ' के साथ हमेशा 'र्' का प्रयोग होता है, यदि आगे ऋ हो। फलत: कृष्ण् अर् ऋि: - यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'कृष्णर्द्धि:' रूप सिद्ध हुआ।

तवल्कार: - तव + लृकार: - यहाँ 'व्' के बाद 'अ' है तथा उसके आगे 'लृ' अच् (स्वर वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'अ' एवं 'लृ' – इन दोनों वर्णों के स्थान में गुण एकादेश 'अ' उपस्थित होता है क्योंकि 'अ' के आगे 'लृ' है। इस प्रकार 'तव् अल् कार:' यह रूप बना। सभी को मिलाने से 'तवल्कार:' रूप सिद्ध हुआ। उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसार अन्य उदाहरण भी साध्य होंगे।

अभ्यास प्रश्न 3

निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद किजिये -

(क) द्रव्यर्द्धि:
(ख) सप्तर्षय:
(ग) ग्रीष्मर्तु:
(घ) महर्षि:
(ड.) ममल्कार:
(च) महोर्मि:
(छ) एकोनविंशति:
(ज) महोत्सव:
(झ) सूर्योदय:
(ट) महेश:
(ठ) महेन्द्र:
(ड) गणेश:
(ढ) देवेन्द्र:
(ण) रमेश:
(त) महोदय:
(थ) चन्द्रोदय:
(द) देवर्षि:
(ध) वर्षर्तु:

2.4.4 दीर्घ सन्धि—

नियम – ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद यदि क्रमश: ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आये तो दोनों मिलकर दीर्घ (क्रमश: आ, ई, ऊ, ॠ) हो जाते हैं।

यहाँ दीर्घ सन्धि के 'दीर्घ' नामकरण का तात्पर्य है दीर्घ (आ, ई, ऊ, ॠ) होना। पाणिनि ने इस तथ्य को निम्नलिखित सूत्र से कहा है -

सूत्र - अक: सवर्णे दीर्घ:। 6.1.101

अक: सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोदीर्घ एकादेश: स्यात्। दैत्यारि:। श्रीश:। विष्णूदय:। होतृकार:।

अर्थात् अक् से सवर्ण अच् (स्वर वर्ण) परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में दीर्घ एकादेश हो। तात्पर्य यह है कि अक् प्रत्याहार के अन्तर्गत अ, इ, उ, ऋ, ऌ वर्ण आते हैं। इनमें से किसी एक वर्ण के बाद यदि उसी का सवर्ण स्वर वर्ण (यथा अ/आ के बाद अ/आ) आये तो दोनों वर्णों के स्थान में एक दीर्घ आदेश होता है। इन वर्णों में 'ऌ' पद यह नियम प्रयुक्त नहीं होगा, क्योंकि उसका दीर्घ नहीं होता।

उदाहरण – दैत्यारि: - दैत्य + अरि: - इस स्थिति में 'य.' के बाद आने वाले 'अ' के बाद 'अरि:' का आदि वर्ण 'अ' सवर्ण अच् (स्वर वर्ण) है। अत: अक: सवर्णे दीर्घ:' सूत्र से दोनों के स्थान में सदृशतम आदेश दीर्घ 'आ' हुआ। फलत: 'दैत्य आ रि:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'दैत्यारि:' रूप सिद्ध हुआ।

श्रीश: - श्री + ईश: - यहॉ 'श्र्' के बाद आने वाले 'ई' के बाद सवर्ण (अच्) ईश:' का आदि 'ई' है। अत: 'अक: सवर्णे दीर्घ:' सूत्र से दोनों 'ई + ई' के स्थान में दीर्घ एक 'ई' आदेश हुआ। फलत: 'श्र् ई श:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'श्रीश:' रूप निष्पन्न हुआ। इसी प्रकार विष्णु + उदय: - विष्णूदय: एवं होतृ + ऋकार: - होतृकार: को जानना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 4-

1- निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -
   - (क) कमल + आकर:
   - (ख) श्रद्धा + अस्ति
   - (ग) विद्या + आलय:
   - (घ) मुनि + इन्द्र:
   - (ड.) सती + ईश:
   - (च) भानु + उदय:
   - (छ) वधू + उत्सव:
   - (ज) नेतृ + ऋभुक्षा
   - (झ) पक्तृ + ऋजीषम्

2- निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद कीजिये -
   - (क) वधूररीकृतम्
   - (ख) तरूर्ध्वम्
   - (ग) गिरीश:
   - (घ) पितृणम्
   - (ड.) पितृणम्
   - (च) लक्ष्मीश्वर:
   - (छ) कवीश्वर:
   - (ज) विद्याभ्यास:
   - (झ) परमार्थ:

2.5 वृद्धि सन्धि (आ, ऐ, औ)—

अ या आ के बाद एच् ए, ओ, ऐ, औ रहने पर पहले और बाद वृद्धि सन्धि का नामकरण उपर्युक्त 'आ, ऐ, औ' के आधार पर हुआ है। क्योंकि ये वर्ण वृद्धि संज्ञक हैं, अत: इनसे सम्बद्ध सन्धि वृद्धि सन्धि के नाम से जानी जाती है।

पाणिनि ने वृद्धि सन्धि का निम्नलिखित सूत्र से विधान किया है -

सूत्र- वृद्धिरेचि। 6.1.88

आदेचि परे वृद्धिरेकादेश: स्यात्। कृष्णैकत्वम्। गंगौघ:। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

अर्थात् अवर्ण ('अ' या 'आ') से एच् (ए, ओ, ऐ, औ) परे हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एक आदेश हो। इसे उदाहरणों के माध्यम से भलीभॉंति समझा जा सकता है -

कृष्णैकत्वम् – कृष्ण + एकत्वम् – इस स्थिति में 'ण्' के बाद आने वाले 'अ' के आगे 'एकत्वम्' का आदि वर्ण 'ए' एच् के अन्तर्गत आता है। अत: 'अ' के आगे 'ए' के होने से 'वृद्धिरेचि' सूत्र से दोनों वर्णों का एक सदृशतम आदेश 'ऐ' हुआ। फलत: 'कृष्ण् ऐ कत्वम्' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'कृष्णैकत्वम्' रूप सिद्ध हुआ।

गंगौघ: - गंगा + ओघ: - यहॉं दूसरे 'ग्' के बाद आने वाले 'आ' के आगे 'ओघ:' का आदि वर्ण 'ओ' है जो एच् प्रत्याहार के अर्न्तगत आता है। अत: दोनों वर्ण 'आ + ओ' पूर्वोक्त सूत्र से 'औ' वृद्धि एक आदेश हुआ। फलत: 'गंग् औ घ:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'गंगौघ:' रूप सिद्ध हुआ । इसी प्रकार 'देव + ऐश्वर्यम् – देवैश्वर्यम्' तथा 'कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् – कृष्णौत्कण्ठ्यम्' को भी जानना चाहिए।

वृद्धि सन्धि के विषय में एक अन्य महत्त्वपूर्ण विधान को जानना आवश्यक है। पाणिनि के अनुसार – यदि अवर्णान्त उपसर्ग ('अ' या 'आ' जिस उपसर्ग के अन्त में हो) के बाद ऋ है जिस धातु के आदि में हो तो पूर्व पर (दोनों वर्णों) के स्थान में वृद्धि एक आदेश हो –

सूत्र- उपसर्गादृति धातौ। 6.1.91

अवर्णान्तादुपसर्गाद् ऋकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेश: स्यात्। प्रार्च्छति

उदाहरण -प्राच्छति – प्र + ऋच्छति – यहॉं 'प्र' उपसर्ग के अन्त में 'अ' (प्र्+अ) है। उसके आगे 'ऋच्छति' क्रिया में 'ऋच्छ' धातु का आदि वर्ण 'ऋ' है। अत: 'अ' एवं 'ऋ' – उन दोनों वर्णों के स्थान में वृद्धि एक आदेश 'आ' हुआ। 'आ' सदैव 'र्' के साथ उपस्थित होता है। अत: 'प्र् आर् च्छति' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'प्रार्च्छति' रूप सिद्ध हुआ।

अभ्यास प्रश्न 5-

1- निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -

(क) पंच + एते

(ख) जन + एकता

(ग) दीर्घ + एरण्ड:

(घ) मा + एवम्

(ड.) एक + एकम्

(च) परम + औषधि:

(छ) दिव्य + औषधम्

(ज) महा + औत्सुक्यम्

(झ) प्र + ऋच्छति

(ट) प्र + ऋणोति

2- निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद कीजिये -

(क) दर्शनौत्सुक्यम्

(ख) स्थूलैण:

(ग) सुखौपयिकम्

(घ) तस्यौदार्यम्

(ड.) महैन:

2.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि दो वर्णों के मेल से होने वाले परिवर्तन को सन्धि कहते हैं। सन्धि के तीन भेद हैं – स्वर (अच्) सन्धि, व्यंजन (हल्) सन्धि तथा विसर्ग सन्धि।दो स्वर वर्णों के मेल से होने वाले परिवर्तन को स्वर सन्धि कहते हैं।

स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सन्धि हैं। यण् सन्धि में ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के बाद किसी असवर्ण स्वर के आने पर इ का य्, उ का व्, ऋ का र् तथा लृ का ल् हो जाता अयादि सन्धि में ए, ओ, ऐ, औ के बाद कोई स्वर वर्ण हो तो ए का अय्, ओ का अव्, ऐ का आय् तथा औ का आव् हो जाता है। गुण सन्धि में यदि अवर्ण (अ या आ) के आगे इवर्ण (इ या ई) हो तो दोनों मिलकर ए, उवर्ण (उ या ऊ) हो तो दोनों मिलकर ओ, ऋ हो तो दोनों मिलकर अर् तथा लृ हो तो दोनों मिलकर अल् हो जाते हैं। दीर्घ सन्धि में ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद यदि क्रमश: ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आये तो दोनों मिलकर दीर्घ (क्रमश: आ, ई, ऊ, ऋ) हो जाते हैं। वृद्धि सन्धि में अवर्ण (अ या आ) के बाद यदि 'ए' अथवा 'ऐ' आये तो दोनों मिलकर 'ऐ' तथा 'ओ' अथवा 'औ' आये तो दोनों मिलकर 'औ' हो जाते हैं। वृद्धि रूप में जहॉ भी 'आ' हो तो वह 'र्' के साथ ही उपस्थित हो। वृद्धि सन्धि में यदि अवर्णान्त उपसर्ग के बाद ऋकारादि धातु हो तो दोनों वर्णों के स्थान में वृद्धि एकादेश 'आर्' हो जाता है।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.**आदेश** – संस्कृत व्याकरण में 'आदेश' एक तकनीकी शब्द है। आदेश शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो किसी स्थान में पहले से रहने वाले वर्ण को हटाकर स्वयं उपस्थित होता है वह आदेश कहलाता है। जैसे – सुधी + उपास्य: में 'ई' को हटाकर 'य्' उपस्थित होता है। आदेश को शत्रु के समान माना गया है – शत्रुवदादेश:, क्योंकि वह पहले से उपस्थित वर्ण को हटाकर वहॉ स्वयं स्थित हो जाता है।

2.**स्थानी** – स्थानी शब्द भी पारिभाषिक है। इसके विषय में कहा गया है कि जिसके स्थान में अर्थात् जिस वर्ण के ऊपर आदेश होता है वह स्थानी कहलाता है। जैसे – 'सुधी + उपास्य:' में 'ई' वर्ण के स्थान में 'य्' का आदेश होता है। अत: 'ई' स्थानी है।

3. **वार्तिक – उक्तानुक्तदुरूक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।**
वं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा विचक्षणा:।।

अर्थात उक्त (पहले कहे गये), अनुक्त (नहीं कहे गये) तथा दुरूक्त (त्रुटिपूर्ण रूप से कहे गये) विषय पर जहॉ विचार किया जाता है, उसे विद्वान लोग वार्तिक कहते हैं। वैयाकरण कात्यायन का वार्तिक, जो कि पाणिनि के द्वारा रचित अष्टाध्यायी के बाद लिखा गया, संस्कृत व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रंन्थ है।

4.उपसर्ग – प्र आदि उपसर्गों की क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा होती है। प्र आदि उपसर्गों की संख्या बाईस है – प्र, परा, अप्, सम्, अनु, अव्, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप।

5.धातु – संस्कृत व्याकरण में क्रियावाची भू आदि की धातु संज्ञा होती है। भू आदि की गणना पाणिनि के द्वारा रचित 'धातुपाठ' नामक ग्रंथ में की गयी है। क्रियावाची भू आदि कहने से पृथ्वीवाचक भू आदि को इससे पृथक् समझना चाहिए।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर -

1. (i) (क) अभ्युदय: (ख) यद्यपि
   (ग) इत्यादि: (घ) प्रत्युपकार:
   (ड.) न्यून: (च) प्रत्येकम्
   (छ) देव्यनुग्रह: (ज) नद्येव
   (झ) यादृश्युक्ति:
   (ii) (क) अन्वय: (ख) स्वागतम्
   (ग) अन्वेषणम् (घ) वध्वागमनम्
   (iii) (क) पित्रिच्छा (ख) मात्राज्ञा
   (iv) (क) लाकृति:
2. (क) इति + उक्त्वा (ख) अति + आचार:
   (ग) गुरू + आदेश: (घ) पितृ + उपदेश:
   (ड.) मातृ + अनुमति: (च) मातृ + उक्तम्
   (छ) वधू + अलंकार: (ज) गौरी + आयाति
   (झ) वारि + अस्ति (ट) दधि + आनय

अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर

1. i. (क)शयनम् (ख) नयनम्
   (ग) चयनम् (घ) शयान:
   (ड.) शयित:
   Ii. (क)पवन: (ख) लवन:
   (ग) पवित्रम् (घ) भवनम्
   (ड.) भानवे
   iii. (क) गायन: (ख) परिचायक:
   iv. (क) भावक: (ख) नाविक:
   (ग) भावुक: (घ) बालकावागतौ

अभ्यास प्रश्न 3 के उत्तर

(क) द्रव्य + ऋद्धि: (ख) सप्त + ऋषय:
(ग) ग्रीष्म + ऋतु: (घ) महा + ऋषि:
(ड.) मम + लृकार: (च) महा + ऊर्मि:
(छ) एक + ऊनविंशति: (ज) महा + उत्सव:
(झ) सूर्य + उदय: (´´) महा + ईश:
(ट) महा + इन्द्र: (ठ) गण + ईश:
(ड) देव + इन्द्र: (ढ) रमा + ईश:
(ण) महा + उदय: (त) चन्द्र + उदय:
(थ) देव + ऋषि: (द) वर्षा + ऋतु:

अभ्यास प्रश्न 4 के उत्तर

(क) कमलाकर: (ख) श्रद्धास्ति
(ग) विद्यालय: (घ) मुनीन्द्र:
(ड.) सतीश: (च) भानूदय:
(छ) वधूत्सव: (ज) नेतृभुक्षा
(झ) पक्तृजीषम्

2. (क) वधू + उररीकृतम् (ख) तरू + ऊर्ध्वम्
(ग) गिरि + ईश: (घ) पितृ + ऋणम्
(ड.) सु + उक्ति: (च) लक्ष्मी + ईश्वर:
(छ) कवि + ईश्वर: (ज) विद्या + अभ्यास:
(झ) परम + अर्थ:

अभ्यास प्रश्न 5 के उत्तर

(क) पंचैते: (ख) जनैकता
(ग) दीर्घैरण्ड: (घ) मैवम्:
(ड.) एकैकम्: (च) परमौषधि:
(छ) दिव्यौषधम्: (ज) महौत्सुक्यम्
(झ) उपार्च्छति ( ) प्राणौति

2. (क) दर्शन + औत्सुक्यम् (ख) स्थूल + एण:
(ग) सुख + औपयिकम्: (घ) तस्य + औदार्यम्
(ड.) महा + एन:

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराजाचार्य, वरदराज, लघुसिद्धान्त कौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक – श्री धरानन्द शास्त्री, (2000) मोतीलाल बनारसी, दिल्ली

2.वरदराज, लघुसिद्धान्त कौमुदी, व्याख्याकार – महेश सिंह कुशवाहा, (1994) चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

2.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र, कमलाकान्त, व्याकरणसौरभम्, (2002) एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली।

2. शास्त्री, चक्रधर , नौटियाल 'हंस'बृहद् अनुवाद चन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032), ज्ञानदा प्रकाशन, पटना

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणी लिखें -
   - (क) यण् सन्धि
   - (ख) अयादि सन्धि
   - (ग) गुण सन्धि
   - (घ) दीर्घ सन्धि
   - (ड.) वृद्धि सन्धि
2. स्वर सन्धि पर एक निबन्ध लिखें

इकाई .3 कारक एवं वाच्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अथ कारक प्रकरण
  3.3.1 प्रथमा विभक्तिः
  3.3.2 द्वितीया विभक्ति
  3.3.3 तृतीया विभक्ति
  3.3.4 चतुर्थी विभक्तिः
  3.3.5 पंचमी विभक्तिः
  3.3.6 षष्ठी विभक्ति
  3.3.7 सप्तमी विभक्ति:
3.4 वाच्य परिवर्तन
3.5 सारांश
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत व्याकरण-पत्रलेखन एवं निबन्ध से सम्बन्धित तृतीय खण्ड की यह तृतीय इकाई है, इस इकाई का विषय है कारक एवं वाच्य परिचय। व्याकरण शास्त्र के प्रणेता पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि हैं। इन प्रणेताओं ने बड़े स्पष्ट रूप से और विस्तार से कारक एवं वाच्य के बारे में चर्चा की है कि कारक एवं वाच्य क्यों पढ़ा - लिखा जाता है तथा कारक की रचना क्यों होती है ? प्रस्तुत इकाई में आप के अध्ययनार्थ इन्हीं विषयों की विस्तार से चर्चा की गयी है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः-

- कारक एवं वाच्य का अध्ययन करेंगे।
- कारक एवं वाच्य के अन्तर्गत छः कारकों से परिचित होंगे।
- कारक किसे कहते है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।
- कारक कितने प्रकार के होते हैं ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।
- वाच्य क्या है इनकी विशेषता क्या है ? आप बता सकेंगे।

3.3 अथ कारक प्रकरण

3.3 .1 प्रथमा विभक्तिः—

(कर्ता कारकम्)

क्रियाजनकत्वम् कारकत्वम्।

जो क्रिया का जनक हो उसे कारक कहते है। कारक छः प्रकार के माने गये है इसमें सबसे पहले कर्ता कारक का वर्णन हो रहा है-

प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाण वचन मात्रे प्रथमा 2/3/46।।

नियतोपस्थितिकःप्रातिपदिकार्थः, मात्र शब्दस्य प्रत्येक योगः। प्रातिपदिकार्थ मात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्।

प्रतिपादिकार्व्थमात्रे - उच्चैः। नीचैः।कृष्णः/श्री/ज्ञानम्/लिङ्गमात्रे-तटः,तटी,तटम । परिमाणमात्रे-द्रोणो व्रीहिः। वचनं सङ्ख्या-एकः, द्वौ,बहवः।

प्रातिपदिकार्थ मात्र में, लिंग मात्र की अधिकता होने पर, परिमाणमात्र में और वचन में प्रथमा विभक्ति होती है।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः-

किसी शब्द के उच्चारण करने पर निश्चित रूप से जिस अर्थ की उपस्थिति अर्थात् प्रतीति होती है उसे प्रातिपादिकार्थ कहते है। जिस शब्द के उच्चारण करने से यह पता चले कि यह शब्द इस अर्थ का ज्ञान कराता है अथवा इस शब्द का यह अर्थ है, ऐसी प्रतीति जिस शब्द के विषय में होता है उसे प्रातिपादिकार्थ कहते है जिस शब्द का सीधा-सीधा अर्थ मात्र उपस्थित है, ऐसे शब्द से प्रथमा विभक्ति होती है अर्थात् किसी शब्द के उच्चारण करने पर नियतरूप से जिस अर्थ की उपस्थित होती है अर्थात्-प्रतीति होती है ऐसे प्रातिपदिकार्थ से प्रथमा विभक्ति

होती है। इसका **उदाहरण है-** उच्चैः नीचैः, कृष्णः श्रीः, ज्ञानम् इस शब्दों के उच्चारण मात्र से क्रमशः उपर, नीचे, भगवान कृष्ण, लक्ष्मी जी और ज्ञान ये अर्थ अपने आप किसी अन्य शक्ति के बिना भी उपस्थित होते है इसलिए प्राति पदिकार्थ माना गया है और प्रातिपदिकार्थ-लिंग-परिमाण-वचन-मात्रे इस सूत्र से प्रथमा विभक्ति होती है।

लिंगमात्राद्याधिक्ये-

कोई शब्द अपने लिंग नहीं कह सकता अपितु लिंगविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ को ही कहता है जैसे-पुरूषशब्द पुल्लिंग युक्त मनुष्यरूप प्रातिपदिकार्थ को नारी - शब्द स्त्रीलिंगयुक्त नारीरूप् प्रातिपदिकार्थ को तथा फल शब्द नपुंसकलिंगयुक्त फल रूप अर्थ को अवश्य कहते हैं।

किन्तु तट शब्द उसमें रहने वाला बहुत लिंगों में से किसी एक अर्थ को तो कह रहा है। किन्तु अनेक को नहीं कह रहा है। इस लिए प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विभक्ति नहीं हो सकती है। अतः प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिंग मात्र की अधिकता होतो भी प्रथमा विभक्ति होती है, इसके लिए इस सूत्र में लिंग ग्रहण किया गया है।

ततः, तटी, तटम्। अकारान्त तट शब्द से प्रातिपदिकार्थ सहित लिंगमात्र की अधिकता में प्रथमा विभक्ति हुई। पुल्लिंग में राम शब्द की तरह स्त्रीलिंग में नदी शब्द के समान तथा नपुंसकलिंग में फल शब्द के समान प्रयोग किया गया है।

परिमाणमात्राधिक्ये. परिमाण मात्र की अधिकता होने पर प्रथमा विभक्ति होती है जैसे-द्रोणों व्रीहिः। द्रोण प्राचीन काल का एक परिमाणवाचक शब्द है, जैसे आजकल किलो कुन्तल आदि है। द्रोण का अर्थ नापने वाला मापक है और व्रीहि उससे नापी जाने वाली माप्य वस्तु है। द्रोण परिमाण और व्रीहि द्रव्य कभी भी एक नहीं हो सकते। अतः उभ्दान्वय को बाधकर परिच्छेद्य-परिच्छेदक भाव रूप सम्बन्ध में अन्वय करने के लिए परिमाण अर्थ में प्रथम विभक्त् होती है।

संख्यामात्रे - संख्यामात्र में प्रथम विभक्ति होती है एकः दौ बहब:। जैसे एक शब्द से एकत्व संख्या, द्वि शब्द द्वित्व संख्या बहु शब्द से बहुत्व संख्या अर्थ का बोध होता है। तात्पर्य यह है कि एक, द्वि, बहु आदि शब्दों से संख्या अर्थ जो प्रातिपदिकार्थ है, वह उक्त है उस उक्त अर्थ को बताने के लिए सु औ आदि प्रत्यय नही किये जा सकते क्यों कि उक्तार्थानामप्रयोग उक्त कहा गया है जिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सकता ऐसा नियम है। अतः एक द्वि आदि से एकत्व, द्वित्व आदि संख्या रूप अर्थ के उक्त होने पर भी वचन-ग्रहण सामर्थ्य से उक्तार्थानामप्रयोगः इस नियम को बाधकर सु आदि प्रत्यय होते है। इस लिए संख्यामात्रे का उच्चारण किया। एक, द्वि, बहु ये स्वतः संख्यावाचक होते हुए भी प्रथमा विभक्ति होनी चाहिए जिससे ये पद बन सकें। इन तीनों शब्दों से प्रतिपदिकार्थ मात्र होते हुए संख्यामात्र की विशेषता में प्रतिपदिकार्थ लिंग परिमाणवचनमात्रे प्रथमा से प्रथमा विभक्ति हुई।

सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति विधायक विधिसूत्र -

सम्बोधने च 2/3/47//

प्रथमा स्यात्। हे राम।

सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। उदाहरण हे राम! राम से सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति हुई।

प्रथम पुरूष (प्रथमा विभक्ति) उदाहरणानि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
(बालक)	बालकः	बालकौ	बालकाः (पुल्लिंगे)
(बालिका)	बालिका	बालिके	बालिकाः (स्त्री0)
(यह)	अयम्	इमौ	इमे (पुल्लिंगे)
(यह)	इयम्	इमे	इमाः (स्त्री0)
(यह)	इदम	इमे	इमानि (नपं0)
(वह)	सः	तौ	ते (पु0)

मध्यम पुरूषः (प्रथमाविभक्ति)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
(तुम)	त्वं	युवाम्	युयम

उत्तम-पुरूष (प्रथमाविभक्ति)

(मैं)	अहम्	आवाम्	वयम्

वाक्य निर्माण प्रकारः-

बालकः विद्यालयं गच्छति।
(बालक विद्यालय जाता है)
बालकौ विद्यालयं गच्छतः।
(दो बालक विद्यालय जाते है)
बालकाः विद्यालयं गच्छन्ति।
(बालक विद्यालय जाते हैं)

मध्यम-पुरूष

त्वं कस्य चित्रं पश्यसि
(तुम किसका चित्र देख रहे हो)
युवां कयोः चित्रे पश्यथः
(तुम दोनों किसके चित्र को देख रहे हो)
यूयं केषां चित्राणि पश्यथ
(तुम लोग किसके चित्रों को देख रहे हो)

उत्तम पुरूषः

अहं तत् चित्रं पश्यामि (मैं उस चित्र को देखता हूँ)
आवां ते चित्रे पश्यावः (हम दोनो उन दोनों चित्रों को देख रहे हैं)
वयं तानि चित्राणि पश्यामः (हम लोग उन चित्रों को देख रहे हैं)

अभ्यास प्रश्न 1.

(1.) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः। (बहुविकल्पक प्रश्न)

1.युष्यद् शब्दबहुवचनस्य रूपमस्ति-

(अ) वयम् (ब) यूयम्
(स) त्वम् (द) आवाम्

2.अस्मद् शब्दस्य एकवचनस्य रूपमस्ति-

(अ) तव (ब) अस्माकम्

(स) आवाम् (द) अहम्

(3) संस्कृते अनुवादो विधेय:

1. माता भोजन पकाती है।
2. गीता पत्र लिखती है।
3. वे लड़के दौड़ रहे है।
4. मैं जा रहा हूँ।
5. तुम दोनों जाते हो।

3.3.2 द्वितीया विभक्ति(कर्मकारक)

कर्मसंज्ञा विधायकं सूत्रम्

कर्तुरीप्सिततमं कर्म 1/4/49

कर्तु: क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्म संज्ञं स्यात्।

कर्ता को जो अपनी क्रिया के द्वारा अत्यन्त इष्ट अर्थात् जिसको विशेष रूप से अपना चाहता है, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। एकवाक्य में कर्ता, कर्म और क्रिया ये तीन या तीन से अधिक भी होते है। इसमें कर्म कौन सा है ? यह जानने के लिए इस सूत्र की आवश्यकता होती है। जैसे रामः ग्रामं गच्छति इस वाक्य में गच्छति क्रिया है और राम यह कर्ता है को गच्छन् क्रिया द्वारा अत्यन्त इष्ट है ग्राम। अतः ग्राम की कर्मसंज्ञा होती है। इसी प्रकार 'देवदत्तः पत्रं लिखति' में कर्ता देवदत्त को लेखन क्रिया द्वारा अत्यन्त अभीष्ट है पत्र। अतः पत्र की कर्म संज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होती है।

कर्मणि द्वितीया 2/3/2 ।।

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्

अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। **हरिं भजति।** इस उदाहरण में हरि अनुक्त कर्म है, उसमे द्वितीया विभक्ति होती है। क्योकि 'भजति' क्रिया के द्वारा साक्षात् सम्बन्ध भक्तादि कारक का है कर्म का नहीं। इसी प्रकार सुरेशः पत्रं लिखिति, रमेशः गृहं गच्छति, वटुर्वेदं पठति, इत्यादि उदाहरण जानना चाहिए। अभिहिते तु कर्मणि अर्थात् क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले कर्म में (कर्मवाच्य) प्रतिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है जैसे **हरिः सेव्यते** इस उदाहरण में सेव् धातु से कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ। अतः उक्त होने से कर्म में प्रथमा विभक्ति हुआ। इसी प्रकार लक्ष्म्या सेवितो हरिः इत्यादि समझना चाहिए।

अकथितं च 1/4/51।।

अपादानादि विशेषैरविवक्षितं कारकं कर्म संज्ञं स्यात्।

दुह्-याच्-पच्-दण्ड्-रूधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शासु-जि-मथ-मुषाम्

कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी-ह्-कृष् वहाम्।

अपादान आदि कारकों के द्वारा अविवक्षित कारक की कर्म संज्ञा होती है।

इस सूत्र के द्वारा जितने भी अकथित (अविवक्षित) जो कारक है उन सभी की कर्म संज्ञा प्राप्त है किन्तु इस श्लोक के द्वारा दुह्, याच् पच्, दण्ड रूध, प्रच्छ चि , बू, शास, जि, मथ् मुष, नी, ह कृष्, वह्, इन सोलह धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादानादि

विभक्ति के रूप में अविवक्षित जो कारक उनकी कर्म संज्ञा होती है इन सोलह धातुओं को द्विकर्मक कहते हे क्योकि इसमें दो कर्म है। इन सभी सोलह धातुओं को उदाहरण दिया जा रहा है-

रामः गां दोग्धि पयः। (राम गाय से दुध को दुहता है) इस वाक्य में कर्ता राम है क्रिया पद दोग्धि (दुह, धातु लट् प्र0एकचन) दोहन क्रिया द्वारा कर्ता को अत्यन्त अभिष्ट जो कारक है वह पय दूध है। अत:पयस् को अत्यन्त इप्सित कर्म मानकर कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति पहले हो चुकी है। यहा वक्ता गो को अपादान के रूप में होने के कारण गो यह अविवक्षित हुआ। उसकी अकथितं च सूत्र से कर्म संज्ञा होकर कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति हुई।

बलिं याचते वसुधाम्। (भगवान् वामन बलि से पृथ्वि माँगते हैं) कर्ता वामन हुआ, क्रिया याचते इष्टतम् कर्म वसुधा और अकथित कर्म बलि है यहाँ पर पंचमी विभक्ति प्राप्त है। किन्तु कर्ता के दारा अपादान के रूप में न विवक्षा होने के कारण बलि की कर्म संज्ञा तथा द्वितीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए जो दिया जा रहा है।

रमेशः तण्डुलान् ओदनं पचति। (रमेश चावल से भात पकाता है।)

गर्गान् शतं दण्डयति। (गर्गों से सौ रूपये जुर्माना लगाता है)

कृष्णः ब्रजमवरूणद्धि गाम् (भगवान् श्री कृष्ण गौ को रोकते है)

रमेशः माणवकं पन्थानं पृच्छति। (रमेश बालक से मार्ग पुछता है)

गीता वृक्षमवचिनोति फलानि (गीता वृक्ष से फल को तोड़ती हैं)

पिता माणवकं धर्म ब्रुते शास्ति वा। (पिता बालक को धर्म का उपदेश देता हैं)

उमेशः शतं जयति देवस्तम्। (उमेश देवदत्त से सौ रूपये जीतता है)

देवसुरा: सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति।(देव दान व समुद्र से अमृत मथते हैं)

यज्ञदत्त: देवस्तं शतं मुष्णाति। (यज्ञस्त देवस्त से सै रूपये चुराता है) रमेशः ग्रामम् अजां नयति हरति कर्षति वहति वा। (रमेश ग्राम से बकरी को ले जाता हे, खिचता है, ढ़ोता है) (और विशेष सूत्रों के ज्ञान के लिए सिद्धान्त कौमुदी कारक प्रकरण को देखें)

द्वितीया विभाक्ति का उदाहरण-

एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**	**मूलशब्दः**
बालकम्	बालकौ	बालकान्	(पु0) बालक
इमम्	इमौ	इमान्	(पु0) इदम्
तम्	तौ	तान्	(पु0) तत
कम्	कौ	कान्	पु0 किम्
इमाम्	इमे	इमाः	स्त्री इदम्
ताम्	ते	ताः	स्त्री तत्
काम	के	का:	स्त्री किम्
त्वाम्	युवाम्	युष्मान्	युष्मद्
माम्	आवाम्	अस्मान्	अस्मद्

गुरूः कं छात्रं पृच्छति। गुरू किस छात्र से पुछता है।

अयं बालकः चित्रं पश्यति। यह बालक चित्र को देखता है।

सा तं ग्रामं गच्छति। वह उस ग्राम में जाती है।
सुरेश तं पुस्तकं पश्यति। सुरेश उस पुस्तक को देखता है।
त्वं सुरेशं प्रश्न पृच्छ। तुम सुरेश से प्रश्न पूछो।
अहं का विद्या पठानि। मै किस विद्या को पढ़ूँ।
पिता तान् छात्रान् ताड़यति। पिता उन छात्रों को मारते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2.

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः
1-बालक शब्दस्य द्विवचनस्य रूपमस्ति-
अ. बालकम् ब. बालकेन स. बालकैः द. बालकौ
2-इदं शब्दस्य द्वितीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-
अ. इमम् ब. अनेन स. इमौ द. इमान्
(3) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-
1. राम गाय से दूध दूहता है।
2. सुरेश राम से प्रश्न पूछता है।
3. गणेश चावल से भात पकाता है।
4. राम गर्गों से सौ रूपये दण्ड लगाता है।
5. सुरेश गॉव से बकरी को ले जाता है।

3.3.3 तृतीया विभक्ति

(करण कारकम्)

स्वतन्त्रः कर्ता 1/4/54 ।।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

क्रिया में स्वतन्त्र रूप विवक्षित अर्थ कर्तृ संज्ञक होता है, अनुवाद बनाने के लिए कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों की आवश्यकता होती है ये पहले ,द्वितिया विभक्ति में कहाँ जा चुका है। कर्ता किसे कहते है इस सूत्र में विशेषरूप से बताया जायेगा।

कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों में जो प्रधान है या क्रिया की सिद्धि जिससे होती है वह कर्ता कहा जाता है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार क्रिया का प्रयोग किया जाता है **जैसे-** रामः पठति (राम पढ़ता है) इस वाक्य में पठति क्रिया है राम कर्ता है। क्योंकि कर्ता के बिना क्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती। इस लिए राम को कर्ता माना गया है।

साधकतमं करणम् 1/**4/42। 1**

क्रिया सिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसज्ञं स्यात।

क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक की करण संज्ञा होती है। जैसे रमेश साईकिल से घर जाता है।(रमेशः द्विचक्रिकया गृहं गच्छति) इस वाक्य में रमेश के घर जाने का सहायक द्विचक्रिका है। अतः द्विचक्रिका की करण संज्ञा हुई। और जहाँ-जहाँ करण संज्ञा होगी वहाँ-वहाँ कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया विभक्ति होती है।

कर्तृकरणयोस्तृतीया 2/3/18।

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात-। रामेण बाणेन हतो बाली।

अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति होती है। उदाहरण-रामेण बाणेन हतो बाली (राम ने बाण से बाली को मारा) यहा रामेण इस अनुक्त कर्ता में तथा बाण इस अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति होती है। यहा हनन् क्रिया का साक्षात् वाच्य न तो राम कर्ता है और नही बाण करण ही अपितु साक्षात् क्रिया का बाली कर्म है। अतः उस उक्त करण में प्रथमा विभक्ति होती है। राम के द्वारा बाण रूप साधन से बाली मारा गया। यह अर्थ है। शेष सूत्रों का वर्णन सिद्धान्त कौमुदी में देखें।

तृतीया विभक्ति का उदाहरण

एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**	**मूलशब्दः**
बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकैः	पु0 बालक
अनेन	आभ्याम्	एभिः	पु0 इदम्
तेन	ताभ्याम्	तैः	पु0 तद
केन	काभ्याम्	कैः	पु0 किम्
अनया	आभ्याम्	एभिः	स्त्री इदम्
तया	ताभ्याम्	ताभिः	स्त्री तत्
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	युष्मद
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	अस्मद्

बालकः केन पत्रं लिखति।	बालक किससे पत्र लिखता है।
बालकः कलमेन पत्रं लिखति।	बालक कलम से पत्र लिखता है।
रमेश अनेन सह पठति।	रमेश इसके साथ पढ़ता है
दिनेशः तेन सह गच्छति।	दिनेश उसके साथ जाता हे।
लोके पुरूषः केन एधते।	लोक में पुरूष किससे बढ़ता है।
लोके पुरूषः धर्मेण एधते।	लोक में पुरूष धर्म से बढ़ता है।
त्वया सह क्रीडति।	तुम्हारे साथ खेलता है।
मया सह गच्छति।	मेरे साथ जाता है।

अभ्यास प्रश्न 3.

(1) बहुकलात्मकाः प्रश्नाः

1. किम् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. केन ब. कैः स. कस्मै द. केभ्यः

2. तत् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. तस्मै ब. ताभ्याम् स. तैः द. तेभ्यः

3. अस्मद् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. मया ब. महयम् स. आवाभ्याम् द. अस्माभिः

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. रमेश पुस्तक से पढ़ता है।
2. वे दोनों साइकिल से घर जाते है।
3. मैं कलम से लिखता हूँ।

4. सुरेश वाहन से घर जाता है।

5. तुम किससे लिख रहे हो ?

3.3.4 चतुर्थी विभक्तिः (सम्प्रदान कारक)

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् 1/4/32।।

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्

दान रूपी कर्म के द्वारा कर्ता को जो अभिष्ट हो उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है

सम्प्रदान का अर्थ है सम्यक् प्रदानं सम्प्रदानम् जिसको अच्छी तरह से दे दिया गया हो, और देने बाद वापस न लिया जाय, उसी का नाम दान या सम्प्रदान है। जैसे विप्राय गां ददाति (विप्र को गाय देता है) यहा पर विप्र को गाय देता है कर्ता यजमान क्रिया ददाति, दान क्रिया के द्वारा अभिष्ट कारक गो है उसकी कर्म संज्ञा हुई। सम्प्रदान संज्ञा जहा पर होती है वहाँ पर चतुर्थी विभक्ति होती है चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से। रजकस्य वस्त्रं ददाति यहाँ पर धोबी को कपड़ा देता है क्योंकि धोबी को कपड़ा वापस लेने के लिए देता है न कि सर्वदा के लिए। इसलिए सम्बन्ध सामान्य में षष्ठी विभक्ति हुई, चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई।

चतुर्थी सम्प्रदाने 2/3/13

सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात्

सम्प्रदान अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। विप्राय गां ददाति यहॉ पर विप्र की सम्प्रदान संज्ञा होने के बाद चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई है ।

नमस्स्वस्ति स्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च 2/3/16 ॥

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थ ग्रहणम्, दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि ।।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलंवषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। इस सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा कारक संज्ञा की अपेक्षा नहीं होती है। नमस आदि जो ये छः शब्द जिस शब्द के साथ सम्बन्ध रखते है उनमें चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण हरये नमः। हरि को नमस्कार है। यहाँ पर हरि-शब्द नमः से सम्बन्ध या युक्त हैं क्योंकि हरि को ही नामस्कार किया गया हैं इस लिए नमस्स्वस्ति- इस सूत्र से हरि से हरि में चतुर्थी विभक्ति हुई।

प्रजाभ्यः स्वस्ति । प्रजाओं का कल्याण हो। यहाँ पर स्वस्ति शब्द प्रजा शब्द से युक्त है इस लिए नमस्स्वस्ति -इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है।

पितृभ्यः स्वधा । पितरों को अन्नजल। यहा पर स्वधा-शब्द पितृ शब्द से युक्त है क्योंकि तर्पण इत्यादि पितरों के लिए दिया जाता है। इस लिए नमस्स्वस्ति-इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। अग्नये स्वाहा। यहा पर स्वाहा शब्द अग्नि शब्द से युक्त है। क्योंकि हविषान्न अग्नि शब्द का नामोच्चारण कर के ही दिया जाता है। इस लिए नमस्स्वति- इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। अलमिति पर्याप्त्यर्थ ग्रहणम्। इस सूत्र में अलम-शब्द का अर्थ पर्याप्त, समर्थ शक्त का अर्थ भी समर्थ पर्याप्त है, अतः इन सभी के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण दैत्येभ्यो हरिरलम्, दैत्येभ्यो हरिः प्रभु: दैत्येभ्यो हरिः समर्थ दैत्येभ्यो हरिः शक्तः इत्यादि वाक्यों में इन शब्दों का योग होने पर चतुर्थी विभक्ति हुई। दैत्यों को जीतने के लिए हरि समर्थ है।

चतुर्थी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	मूलशब्दः
बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्याः	पु0 बालक
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः	पु0 इदम्
तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः	पु0 तत्
अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः	स्त्री इदम्
तस्यै मह्यम्	ताभ्याम् आवाभ्याम्	ताभ्यः अस्मभ्यम्	स्त्री इदम्
तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्यभ्यम्	अस्मरद्

1. जननी अस्मै बालकाय दुग्धं यच्छति।
(माता इस बालक के लिए दुध देती है।)
2. पिता कन्यायै वस्त्रं यच्छति।
(पिता कन्या के लिए वस्त्र देता है)
3. रमेशः तस्यै कन्यायै धनं ददाति। (रमेश उस कन्या के लिए धन देता है)
4. शिक्षकः छात्राय ज्ञानं ददाति। (शिक्षक छात्रा के लिए ज्ञान देता है।)
5. शिक्षिका तस्यै छात्रायै मोदकं ददाति। (शिक्षिका उस छात्रा को मोदक देती है)
6. मह्यं यजमानः वस्त्रं ददाति। (मुझको यजमान वस्त्र देता है।)

अभ्यास प्रश्न 4.

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः
1. इदं शब्दस्य चतुर्थ्येकवचने रूपमस्ति-(अ)
अ. अस्मै ब. अनया स. अस्मिन् द. अस्य
2. अस्मद् शब्दस्य चतुर्थ्येकवचने रूपमस्ति-(स)
अ. मम ब. आवाम् स. मह्यम् द. अहम्
3. तद् शब्दस्य चतुर्थी बहुवचने रूपमस्ति-(द)
अ. तस्य ब. तस्मै स. तेषाम् द. तेभ्यः
(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-
1. ब्राह्मण को गाय देता देता है।
2. यजमान गुरू को वस्त्र देता है।
3. मैं बालको के लिए पुस्तक देता हूँ।
4. उस छात्र को द्रव्य दो।
5. उन लोगों के लिए वस्त्र है।

3.3.5 पंचमी विभक्तिः

ध्रुवमपायेमपादानम्-

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकम् अपादान संज्ञं स्यात्।

अपाय (अलगाव) होने में जो निश्चित सीमा है उसकी अपादान संज्ञा होती है। अलगाव या वियोग अर्थ जहा पर होता है उसमें पंचमी विभक्ति होती है। जैसे धावतो अश्वात् पतति। दौड़ते

हुए घोड़े से गिरता है। यहा पर अलगाव या वियोग अश्व से होता है इस लिए अश्व की अपादान संज्ञा हुई और अपादाने पंचमी" इस सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है। उदाहरण-

एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**	**शब्दः**
बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः	पु0 बालक
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः	पु0 इदम्
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः	पु0 किम्
तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः	पु0 तत्
अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः	स्त्री इदम्
कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः	स्त्री किम्
तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः	स्त्री तत्
मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	अस्मद्
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	युष्मद्

पंचमी विभक्ति का उदाहरण-

इदं फलं वृक्षात् पतति। यह फल वृक्ष से गिरता है।
कस्मात् वृक्षात् पत्रं पतति। किस वृक्ष से पत्ता गिरता है।
अस्मात् वृक्षात् पत्रं पतति। इस वृक्ष से पत्ता गिरता है।
कस्या: लतायाः पुष्पं पतति? किस लता से पुष्प गिरता है।
तस्मात् गिरे: बालकः पतति? उस पर्वत से बालक गिरता है।
अहं गृहाद् आगच्छामि। मैं घर से आता हूँ।
त्वं गृहाद् कुत्र गच्छसि? तुम घर से कहाँ जाते हो।

अभ्यास प्रश्न 5.

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. बालक शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति(अ)

अ. बालकात् ब. बालकस्य स. बालकेन द. बालकाय

2. इदं शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति(अ)

अ. अस्याः ब. अनया स. अस्यै द. अस्याम्

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

2. बानर वृक्ष से गिरता है।
3. मैं घर से जा रहा हूँ।
4. वृक्ष से पत्ता गिरता हैं
5. रमेश पर्वत से गिरता है।

3.3.6 षष्ठी विभक्ति (सम्बन्धः)

षष्ठी शेषे 2/3/50।।

कारक प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषः तत्र षष्ठीस्यात्। राज्ञः पुरूषः।।

कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध को शेष कहते है। उस शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।

शेष अर्थात् वचा हुआ, प्रातिपदिकार्थ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण संज्ञा जहाँ नहीं हो वह शेष है। जैसे स्वस्वामिभाव सम्बन्ध जहाँ पर हो वहाँ पर षष्ठी विभाक्ति होती है।

राज्ञ: पुरूष: । राजा का पुरूष । यहाँ पर राजा स्वामी हैं और पुरूष स्व है। स्वस्वामिभाव सम्बन्ध मानकर षष्ठी शेषे से राजन् शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई।

षष्ठी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**	**मूलशब्द**
बालकस्य	बालकयोः	बालकानाम्	पु0 बालक
अस्य	अनयोः	एषाम्	पु0 इदम्
कस्य	कयोः	केषाम्	पु0 किम्
तस्य	तयोः	तेषाम्	पु0 तत्
अस्याः	अनयोः	आसाम्	स्त्री इदम्
कस्याः	कयोः	कासाम्	स्त्री किम्
तस्याः	तयोः	तासाम्	स्त्री तत
तव	युवयोः	युष्माकम्	
मम	आवयोः	अस्माकम्	

अयं विद्यालयः कस्य अस्ति? यह विद्यालय किसका है?

अयं मम विद्यालयः अस्ति? यह मेरा विद्यालय हैं

तस्य गृहं कुत्र अस्ति? उसका घर कहा है

इदं पुष्पं कस्याः अस्ति? यह फूल किसकी है।

अयम् अस्याः पुत्रः अस्ति। यह इसका पुत्र है।

अभ्यास प्रश्न 6 .

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः

1. बालकशब्दस्य षष्ठी द्विवचनस्य रूपमस्ति

अ. बालकाभ्याम् ब. बालकानाम्

स. बालकयोः द. बालकेभ्यः

2. इदं शब्स्य स्त्रीलिंस्यैकवचनस्य रूपमस्ति

अ. अस्याः ब. अनया

स. अस्मै द. अस्मिन्

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनायें-

1. यह किसका घर है।
2. यह राम का घर है।
3. राम के दो पुत्र थे।
4. यह पुस्तक रमेश की है।
5. यह नदी का जल है।

3.3.7 सप्तमी विभक्ति: (अधिकरण कारकम्)

आधारो अधिकरणम् 1/4/45।।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरण संज्ञं स्यात्।

कर्ता और कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का आधार जो कारक उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। क्रिया साक्षात् किसी आधार में नहीं रहती किन्तु कर्ता या कर्म के द्वारा रहती है जैसे कटे आस्ते देवस्तः देवदत्त चटाई पर बैठा है यहाँ पर आस्ते में आसन (रहना) क्रिया, देवदत्त कर्ता के द्वारा कट में है इस लिए कट की अधिकरण संज्ञा हुई। अधिकरण संज्ञा होने के बाद "सप्तम्यधिकरणे च" से अधिकरण जो कर्ता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है।

सप्तमी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**	**मूलशब्द**
बलके	बालकयोः	बालकेषु	पु0 बालकः
अस्मिन	अनयोः	एषु	पु0 इदम्
तस्मिन	तयोः	तेषु	पु0 तत्
कस्मिन्	कयोः	कषुः	पु0 किम्
अस्याम्	अनयोः	आसु	स्त्री इदम्
तस्याम्	तयोः	तासु	स्त्री तत्
कस्याम्	कयोः	कासु	स्त्री किम्
मयि	आवयोः	अस्मासु	अस्मद्
त्वयि	युवयोः	युष्यासु	युस्मद्

अयं बालकः कुत्र तिष्ठति। यह बालक कहाँ बैठता है।

अयं बालकः गृहे तिष्ठति। यह बालक घर में बैठता है।

कस्याः ग्रीवायाम् आभूषणमस्ति। किसके गले में आभूषण है।

साबाला कस्मिन् स्थाने तिष्ठति। वह बालिका किस स्थान में बैठती है।

सा बाला द्वारे तिष्ठति। वह बालिका द्वार पर बैठती है।

त्वं कस्याम् उपविशति। तुम कहाँ पर बैठे हो ?

तस्यां वाटिकायां बालकः अस्ति। उस वाटिका में बालक है।

अस्यां वाटिकायां बालिका अस्ति। इस वाटिका में बालिका है।

अभ्यास प्रश्न 7 .

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. बालकशब्दस्य सप्तम्येकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. बालकस्य ब. बालके

स. बालाकानाम् द. बालकेषु

2. इदं शब्दस्य सप्तमीबहुवचनस्य स्त्रीलिंगस्य रूपमस्ति-

अ. अनयोः ब. आसु

स; तस्या द; अस्य

3. युस्मद् शब्दस्य सप्तम्येक वचनस्य रूपमस्ति-

अ. तुभ्यम् ब. त्वया
स. अस्य द. त्वयि

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. वृक्ष पर कोयल बैठी है।
2. उस स्त्री के गले में आभूषण है।
3. हम लोग विद्यालय में पढ़ते है।
4. मै उस घर में बैठा हूँ।
5. उस पुस्तकक में चित्र है।

3.4 वाच्य परिवर्तन

संस्कृत व्याकरण शास्त्र में वाच्य के तीन भेद माने गये है।

1.कर्तृवाच्य 2. कर्मवाच्य 3. भाववाच्य। सकर्मकधातुओं के रूप दो वाच्यो में होते है- कर्तृवाच्य में तथा कर्मवाच्य में और अकर्मक धातुओं के रूप दो वाच्यों में होते है। कर्तृवाच्य और भाववाच्य में।

1. कर्तृवाच्य- कर्तृवाच्य में कर्ता प्रधान होता हैं और क्रिया कर्ता के अनुसार चलती है। यदि कर्ता एकवचन हैं तो क्रिया भी एकवचन होती है, और कर्ता प्रथम पुरूष का है तो क्रिया भी प्रथम पुरूष की होती है- जैसे रामः ग्रामं गच्छति यहाँ पर कर्ता राम है, क्रिया गच्छति है और कर्म ग्राम है कर्ता एकवचन तथा प्रथम पुरूष है तो क्रिया भी एकवचन तथा प्रथम पुरूष की है। इसके अनुसार अन्य उदाहरण देखें-

वह कहता है। सः वदति
तुम दोनो बोलते है। युवाम् वदथः।
तुम लोग कहते हो। यूयं, वदथ।
तुम लोग हसते हो। यूयं हसथ।
तुम ईश्वर को नमस्कार करते हो। त्वं ईश्वरं नमसि।
तुम दोनों भोजन पकाते हो। युवां भोजनं पचथः।
तुम लोग पुस्तकों को पढ़ते हो। यूयं पुस्कानि पठथ।
मै बोलता हूँ- अहं वदामि।
हम दोनों बोलते है। आवां वदावः।
हम लोग पढ़ते है। वयं पठामः।
हम लोग पत्र लिखते हैं। वयं पत्रं लिखावः।
इसी प्रकार कर्तृवाच्य का अन्य उदाहरण भी समझना चाहिए।

कर्मवाच्य में कर्म मुख्य होता है और कर्म के अनुसार ही क्रिया का पुरूष वचन लिंग का प्रयोग किया जाता है। कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति, कर्म में प्रथमा विभक्ति और क्रिया कर्म के अनुसार होती है।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में जो सार्वधातुकलकार (लट्लकार, लोट्लकार, लङ् कार और विधिलिङ्) होते है। उन लकारों में धातु और प्रत्यय के बीच में य लगा दिया जाता है और धातु का रूप सदा आत्मने पद में ही चलता है। आर्धधातुक लकारों में 'य' नहीं लगाया जाता हैं वहाँ

पर स्यते या इष्यते लगाया जाता है। कर्मवाच्य में या भाववाच्य में रूप कैसे बनाये जाते है। वह संक्षेप में बता रहे है- भू धातु से लट्लकार लाते है भू लट् ऐसा बनता है अब यहाँ पर शंका होती है कि लट् के स्थान पर आत्मने पदि प्रत्यय लावे या परस्मैपदि प्रत्यय। इस शंका को निवारण करने के लिए एक सूत्र है भावकर्मणोः इस सूत्र से भाव और कर्म में जो प्रत्यय होते है वह हमेशा आत्मने पदि प्रत्यय होते है तो यहाँ पर प्रथम पुरूष एकवचन की विवक्षा में त प्रत्यय होगा। भू त ऐसी स्थिति हुई। अव यहाँ पर तिङशित् सार्वधातुकं से "त" की सार्वधातुक संज्ञा हुई और सार्वधातुक के यक् से यक् प्रत्यय होता है तो स्थिति भू+यक्+त बनती है। ककार की हलन्त्यम से इत्संज्ञा तस्य लोप से लोप होकर य मात्र वचता है। भू+य+त बनता है। अब यहाँ पर सार्वधातु कार्धधातुकयों इस सूत्र से भू को गुण प्राप्त था किनतु यक मे कित्व होने के कारण क्ङितिच सूत्र गुण का निषेध होता है और टितआत्मने पदानां टेरे सूत्र से त का जो अ है उस अ को एत्व करने पर 'ते' बनता है मिलाने पर भूयते प्रयोग बनता है। भाववाच्य में भूधातु का एक ही प्रयोग बनता है अन्य पुरूष वचन में प्रयोग नहीं बनते है। क्योंकि इसमें कर्म नहीं होता है। उदाहरण त्वया यया अन्यैश्च भूयते (तुझसे मुझसे या अन्यों से हुआ जाता है) तेन भूयते (उससे होता है।) तैः भूयते (उन लोगो के द्वारा हुआ जाता है।) इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिए

कर्मवाच्य के उदाहरण-

मया पुस्तकं पठ्यते। मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है।
मया, त्वया,युस्मभि: गृहंगम्यते। हमारे, तुम्हारे या तुम लोगो के द्वारा घर जाया जाता है।
मया फलं खाद्यते। मेरे द्वारा फल खाया जाता है।
मया फलानि खाद्यन्ते। मेरे द्वारा फलों को खाया जाता है।
अस्माभिः पुस्तकं लिख्यते। मेरे द्वारा पुस्तक लिखा जाता है।
मया पुस्तकानि लिख्यन्ते। मरे द्वारा पुस्तके लिखे जाते हैं।
मया चलचित्रं दृश्यते। मेरे द्वारा चलचित्रं देखा जाता है
बालकेन बालिका दृश्यते। बालक के द्वारा बालिका देखी जाती है।
गन्त्रा ग्रामः गम्यते। जानेवाले के द्वारा गावं जाया जाता हैं।
अध्येतृभिः पाठाः पाठ्यन्ते। अध्येताओं के द्वारा पाठ पढे जाते हैं।
मातृभि भोजन पच्यते। माताओं के द्वारा भोजन पकाया जाता है।
पुस्तकस्य कर्ता लेखः लिख्यते। पुस्तक रचने वाले के द्वारा लेख लिखे जाता है।
पित्रा ग्रामः गम्यते। पिता के द्वारा गांव जाया जाता है।
द्रष्टृभि मयुराः दृश्यन्ते। देखने वाले क द्वारा मयुर देखे जाते है।
राजपुरूषभिः दूर्जनाः नियन्ताम्। राजपुरूषों के द्वारा दुर्जनों को लाया जाय।

क्तवतवतुनिष्ठा निष्ठा प्रत्यय में भी कर्मवाच्य होता है। भूत काल में क्त (त) क्तवतु (तवत्) कृत प्रत्यय होते हैं। दोनों का क्रमशः त,तवत् शेष रहता है। त प्रत्यय कर्म वाच्य तथा भाववाच्य में होता है और तवत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है।

क्त प्रत्यय जब सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में होगा तो कर्म में प्रथमा कर्ता में तृतीया और कर्म के अनुसार क्रिया का विभक्ति, लिंग, वचन का प्रयोग किया जाता है। कर्ता के अनुसार नहीं।

अकर्मक धातु से क्त (त) प्रत्यय होगा तो कर्ता में तृतीया विभक्ति होगी और नपुंसक लिग एकवचन ही होगा। त प्रत्ययान्त क्रिया शब्द कर्म के अनुसार पुलिंग होगा तो उसके रूप राम के समान चलेंगे, स्त्रीलिंग होगा तो रमा के समान चलेंगे, स्त्रीलिंग होगा तो रमा के समान नपुंसकलिंग ज्ञान के समान होगा। जैसे-पुंलिंग में मया ग्रन्थः पठितः। (मेरे द्वारा ग्रन्थ पढ़ा जाता है।) मया ग्रन्थों पठितौ। (हमारे द्वारा दो ग्रन्थ पढ़े जाते है)।मया ग्रन्था: पठिता:। हमारे द्वारा ग्रन्थ पढे जाते है।

स्त्रीलिंग में त्वया बालिका दृष्टा। (तुम्हारे द्वारा बालिका देखी गयी।) त्वया बालिकाः दृष्टा: (तुम्हारे द्वारा बालिकायें देखी गयीं।)

नपुंसकलिंग में त्वया फलं खादितम्। (तुम्हारे द्वारा फल खाये गये) युष्माभिः फलानि खादितानि (तुम लोगों के द्वारा फले खाये गये।)

3.5 सारांश

अजन्त पुंल्लिंग आदि छः प्रकारणों में सु आदि इक्कीस प्रत्ययों का विधान किया गया है। इन सात (सु,औ,जस् इति प्रथमा। अम् औट्, शस् इति द्वितीया। टा, भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे, भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि, भ्याम् भ्यस् इति पंचमी। ङस्, ओस् आम इति षष्ठी। ङि ओस, सुप इति सप्तमी प्रत्ययों को सात विभक्तियों में विभाजित किया गया है। कौन सी विभक्ति किस अर्थ में होती है। यह बात इस कारक प्रकरण में बतायी जायेगी। अतः इस प्रकरण को विभक्त्यर्थ प्रकरण कहते हैं। कारक शब्द का एक अर्थ कर्ता भी ह। किन्तु यहाँ पर कारक शब्द पारिभाषिक है। करोति क्रियां निवर्तयतीति कारकम् अथवा क्रियान्वयितवम कारकम् अथवा साक्षात् क्रिया जनकं कारकम् जो क्रिया का निमित्त बने अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय अर्थात् सीधे सम्बन्ध रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं। ये कारक छः है- **कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च। अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्।।** अर्थात् कर्ता कारक, कर्मकारक, करण कारक, सम्प्रदान कारक, अपादान कारक और अधिकरण कारक। सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया है। क्योंकि षष्ठी विभक्ति को छोड़कर अन्य सभी कारकों का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय है किन्तु सम्बन्ध का सीधे अन्वय न होकर परम्परया अन्वय होता है। जैसे रामः पठति में रामः कर्ता का पठति क्रिया के साथ साक्षात सम्बन्ध है और क्रिया एक दूसरे से आकांक्षा युक्त है, अतः सीधे सम्बन्ध रखते हैं। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण प्रथमा विभक्ति रामः यह कारक हुआ। इसी प्रकार इस कारक प्रकरण में छः कारक एवं सातों विभक्तियों का वर्णन किया गया है।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1. 1.ब 2. द

संस्कृत अनुवाद - 1. माता भोजनं पचति 2. गीता पत्रं लिखति 3. ते बालका: धावन्ति 4. अहं गच्छामि 5. युवाम् गच्छथ:

अभ्यास प्रश्न 2 . 1.द 2. द

संस्कृत अनुवाद- 1. . राम: गां पय: दोग्धि। 2. सुरेश: रामं प्रश्नं पृच्छति।

3. गणेश: तण्डुलान् ओदनं पचति। 4. राम: गर्गान् शतं दण्डयति।

5. सुरेश: ग्रामम् अजां नयति ।

अभ्यास प्रश्न 3 . 1.ब 2. स 3.द

संस्कृत अनुवाद-1. रमेश: पुस्तकेन पठति । 2. तौ द्विचिक्रकया गृहं गच्छत:।3.. अहं लेखन्या लिखति । 4. सुरेश: वाहनेन गृहं गच्छति । 5. त्वं केन लिखसि ?

अभ्यास प्रश्न 4 . 1.अ 2. स 3. द

संस्कृत अनुवाद-1. विप्राय गां ददाति । 2. यजमान: गुरवे वस्त्रं ददाति । 3. अहं बालकेभ्य: पुस्तकं ददाति । 4. तस्मै छात्राय द्रव्यं देहि । 5. तेभ्य: वस्त्रम् अस्ति ।

अभ्यास प्रश्न 5 . 1.अ 2. अ

संस्कृत अनुवाद-1. बानर: वृक्षात् पतति । 2. अहं गृहं गच्छामि । 3. वृक्षात् पत्रं पतति । 4. रमेश: पर्वतात् पतति ।

अभ्यास प्रश्न 6 . 1.स 2. स

संस्कृत अनुवाद-1. इदं कस्य गृम् अस्ति । 2. इदं रामस्य गृहम् अस्ति । 3. रामस्य दौ पुत्रौ स्त:। 4. इदं पुस्तकं रमेशस्य अस्ति । 5. इदं नद्या: जलम् अस्ति ।

अभ्यास प्रश्न 7 . 1. ब 2. ब 3. द

संस्कृत अनुवाद-

1. वृक्षे कोकिला तिष्ठति
2. तस्या:स्त्रिया: ग्रीवायाम् आभूषणमस्ति
3. वयं विद्यालये पठाम:
4. अहं तस्मिन् गृहे तिष्ठामि
5. तस्मिन् पुस्तके चित्रम् अस्ति ।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी,भट्टोजिदीक्षित,गोपालदत्तपाण्डेय,चौखम्बा सुरभारती।
2. लघुसिद्धान्तकौमुदी,वरदराजाचार्य ,भीमसेन शास्त्री, भैमीप्रकाशन, लाजपत नगर दिल्ली।
3. अनुवाद चन्द्रिका,हरेकान्तमिश्र:,हरेकान्तमिश्र चौखम्बा अमर प्रकाशन वाराणसी
4. प्रौढमनोरमा,भटटोजिदीक्षित,द्वारिका प्रसाद दिवेदी,चौखम्बा सुरभारती वाराणसी
5. अनुवादचन्द्रिका ,श्री कपिलदेव द्विवेदी, कपिलदेव द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती वारणसी

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी,वरढ़राजाचार्य, भीमसेन शास्त्री,भैमी प्रकाशन लाजपत, नगर दिल्ली।
2. अनुवाद चन्द्रिका, हरेकान्तमिश्र:, हरेकान्तमिश्र,चौखम्बा प्रकाशन।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अकथितं च इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये ।
2. वाच्य एवं वाच्य परिवर्तन को परिभाषित कीजिए ।

खण्ड- दो (Section-B)
शब्दरूप-धातुरूप एवं अनुवाद

इकाई .1 शब्द रूप परिचय : सामान्य नियम

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 शब्द का स्वरूप एवं कारक का चिह्न
    1.3.1 पुंल्लिङ्ग राम शब्द
    1.3.2 लिंग और वचन
    1.3.3 हरि शब्द का रूप
    1.3.4 पितृ शब्द ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग
    1.3.5 अजन्त पुंल्लिङ्ग राजन् शब्द
    1.3.6 रमा (लक्ष्मि) आकारान्त स्त्रीलिंग
    1.3.7 हलन्त-शब्दरूप
    13.8 सर्वनाम शब्द
    1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक उपयोगी सामग्री

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

संस्कृत व्याकरण-पत्रलेखन एवं निबन्ध नामक पाठ्यक्रम से सम्बन्धित द्वितीय खण्ड की यह प्रथम इकाई है। इस इकाई का विषय है शब्दरूप परिचय जिसमें राम, हरि, सखि, पितृ, राजन्, रमा अदि शब्द रूपों का तथा वाक्यों में उनके प्रयोग का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करेंगे। उक्त सभी प्रकार के ज्ञान वाक्य से ही होते हैं। वाक्यों में शब्दों का प्रमुख स्थान है। शब्दों के अन्त में सुप् (सु, औ, जस् आदि) 21 प्रत्यय होते हैं अतः ऐसे शब्द सुबन्त कहे जाते हैं। प्रत्येक संज्ञा, सर्वनाम आदि शब्द प्रायः वचन एवं विभक्ति भेद से 21 रूप वाले होते हैं। इन्हीं का संस्कृत के वाक्यों में प्रयोग होता है। प्रस्तुत इकाई में विस्तार से शब्द रूप के बारे में चर्चा की गयी है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- शब्द रूप से परिचित हो सकेंगे।
- शब्द क्या है इसके बारे में आप समझ सकेंगे।
- संज्ञा, सर्वनाम क्या है इसके बारे में परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- राम शब्द का रूप कैसे चलाया जाय इसका वाक्य में परिवर्तन कैसे किया जाय, इससे परिचित हो सकेंगे।
- हरि शब्द का रूप एवं वाक्य में कैसे परिवर्तन किया जाय इससे परिचित हो सकेंगे।
- सखि, पितृ, राजन, रमा अर्थ सहित इनको वाक्य में परिवर्तन कैसे किया जाय इससे परिचित हो सकेंगे।
- हलन्त-शब्दरूप के रूप कैसे चलाया जाय इसका वाक्य में परिवर्तन कैसे किया जाय, इससे परिचित हो सकेंगे।

1.3 शब्द का स्वरूप एवं कारक चिह्न

संस्कृत व्याकरण में वर्ण दो प्रकार के हैं। स्वर और व्यञ्जन। स्वर वर्णों (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ) की अच् संज्ञा होती है, ये अच् नाम वाले वर्ण जिन शब्दों के अन्त में होते हैं वे अजन्त शब्द कहे जाते हैं। जैसे- राम, (र + आ + म् + अ) यहां अन्त में 'अ' है, इसी प्रकार बालक, बालिका, नदी, मित्र, आदि। इन सभी शब्दों के अन्त में स्वर (अच्) वर्ण होते हैं, ऐसे शब्द अजन्त कहे जाते हैं।

व्यञ्जन वर्णों (क् ,ख् , ग् आदि) व्यञ्जन वर्ण हल् कहे जाते हैं। ये हल् संज्ञा वाले वर्ण जिनके अन्त में हों ,वे हलन्त शब्द कहे जाते हैं। जैसे – राजन्, (र् + आ + ज् + अ + न्) यहां अन्त में न् है, इसी प्रकार सरित्, महत्, हनुमत्, श्रीमत्, आदि। इन सभी शब्दों के अन्त में हलन्त वर्ण हैं। शब्दों के रूप जानने के लिये उनके अन्तिम वर्ण और लिङ्ग के अनुसार छः स्वरूप बताये गये हैं।

1. अजन्तपुँल्लिङ्गशब्दाः- बालकः,कविः, भानुः, आदि।
2. अजन्तस्त्रीलिङ्गशब्दाः- बालिका, नदी, माता, आदि।

3. अजन्तनपुसकलिङ्गशब्दाः- फलम्, दधि, आदि।

4. हलन्तपुँल्लिङ्गशब्दाः- महत्, विद्वान्, राजन् आदि।

5. हलन्तस्त्रीलिङ्गशब्दाः- उपनिषद्, वाक्, आदि।

6. हलन्तनपुंसकलिङ्गशब्दाः- धनुष्, पयस्, नामन्, आदि।

इन सभी शब्दों के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के भेद से 21 रूप होते हैं। इन शब्दों को क्रियापदों के साथ जोड़ने पर वाक्य बनते हैं।) यथा-

छात्रः लिखति। छात्र लिखता है

सः छात्रः पुस्तकं पठति। वह छात्र पुस्तक पढता है

सः छात्रः योग्यः अस्ति। वह छात्र योग्य है

एषा बालिका सुन्दरी अस्ति। यह बालिका सुन्दर है

कारक चिह्न—

विभक्तिः	**कारकम्**	**अर्थः**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	ने	**रामः**	**रामौ**	**रामाः**
द्वितीया	कर्म	को	**रामम्**	**रामौ**	**रामान्**
तृतीया	करणम्	से, साथ, द्वारा	**रामेण**	**रामाभ्याम्**	**रामैः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	को, के, लिये	**रामाय**	**रामाभ्याम्**	**रामेभ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	से (अलगहोना)	**रामात्**	**रामाभ्याम्**	**रामेभ्यः**
षष्ठी	सम्बन्धः	का, के, की, रा, रे, री,ना, ने, नी	**रामस्य**	**रामयोः**	**रामाणाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	में, पर	**रामे**	**रामयोः**	**रामेषु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	हे, अरे, अयि, भोः	**हे राम !**	**हे रामौ !**	**हे रामाः !**

नाम या सुबन्त शब्दों के साथ सात विभक्तियों के तीन वचनों में 21 प्रत्यय लगते हैं। इन विभक्तियों के साधारण ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम यहा पर 'राम' शब्द के रूप दे रहे हैं।

1.3.1 पुंल्लिङ्ग राम शब्द

विभक्तिः	**कारकम्**	**वचनम् - एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	**रामः**	**रामौ**	**रामाः**
द्वितीया	कर्म	**रामम्**	**रामौ**	**रामान्**
तृतीया	करणम्	**रामेण**	**रामाभ्याम्**	**रामैः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	**रामाय**	**रामाभ्याम्**	**रामेभ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	**रामात्**	**रामाभ्याम्**	**रामेभ्यः**
षष्ठी	सम्बन्धः	**रामस्य**	**रामयोः**	**रामाणाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	**रामे**	**रामयोः**	**रामेषु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	**हे राम !**	**हे रामौ !**	**हे रामाः !**

सुबन्त के 21 प्रत्यय

विभक्तिः	कारकम्	वचनम् - एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	कर्ता	सु	औ	जस्
द्वितीया	कर्म	अम	औट्	शस्
तृतीया	करणम्	टा	भ्याम्	भिस
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	अपादानम्	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	सम्बन्धः	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	अधिकरणम्	ङि	ओस्	सुप्

वाक्य रचना का नियम—

वाक्य रचना वाक्य रचना में भाषा का प्रयोग होता है। भाषा ही एक एसा साधन है जिसके द्वारा मानव समाज अपने भाव और दूसरों को प्रगट कर सकता है। भाषा अनेक प्रकार की मानी गयी है,जैसे- संकृत हिन्दी, अंग्रजी आदि। संस्कृत भाषा उस भाषा को कहते है जो शुद्ध एवं परिमार्जित हो। भाषा वाक्यों से बनती है। एक वाक्य में अनेक शब्द होते हैं और प्रत्येक शब्द में अनेक वर्ण होते हैं। उदाहरणार्थ-" सुरेश पुस्तक पढ़ता है। " इस वाक्य में चार शब्द है और प्रत्येक शब्द मे पृथक् पृथक् वर्ण है।'सुरेश' शब्द में स्+उ+र्+ए+श्+अ छः वर्ण है यह लिपि जिसमें हम इन अक्षरों को लिख रहे है उसे हम देवनागरी लिपि कहते है। आजकल संस्कृत तथा हिन्दी इसी लिपि में लिखि जा रही है। प्राचीन काल में संस्कृत भाषा ब्राह्मी लिपि में लिखि जाती थी।

वर्ण के भेद- वर्ण दो प्रकार के माने गये है। स्वर और व्यन्जन। स्वर अच् प्रत्याहार को कहते है अच् प्रत्याहार में वर्ण होते हैं अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए,ओ, ऐ,औ, और व्यंजन में वर्ण होते है-

क वर्ग- क ख ग घ।

च वर्ग-च छ ज झ ञ

ट वर्ग- ट ठ ड ढ ण।

तवर्ग- त थ द ध न।

प वर्ग-प फ ब भ म।

यण -य व र ल।

शल्- श ष स ह।

ये सम्पूर्ण तैतीस व्यंजन माने गये है। हिन्दी वर्ण माला में क्ष, त्र , ज्ञ भी वर्ण माना गया है किन्तु ये वर्ण संयुक्ताक्षर हैं, जैसे-

क्ष- क+ष = क्ष।

त्र- त+र = त्र।

ज्ञ- ज+य = ज्ञ।

अनुवाद - किसी भाषा के शब्दार्थ को दूसरी भाषा के शब्दों में अनुवाद कहते है। अनुवाद प्रणाली के वर्णन करने से पूर्व वाक्य में जो सुबन्त तिङन्त आदि शब्द रहते हें उनका विवेचन तथा कारकों का संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक है।

कारक (कर्ता, कर्म आदि) - " गोपाल गॉव जाता है। इस वाक्य में जाने वाला गोपाल है "कृष्ण ने कंस को मारा।" इस वाक्य में मारने वाला कृष्ण है। 'जाना' और 'मारना' ये दो क्रियाएं हैं। इन क्रियाओं को करने वाला गोपाल और कृष्ण है। क्रिया को करने वाले कर्ता कहते है। अतः इन दो वाक्यों में गोपाल और कृष्ण कर्ता हैं। प्रथम वाक्य में जाने का विषय गॉव है और द्वितीय वाक्य में मारने का विषय कंस है। गॉव और कंस के लिए ही कर्ताओं ने क्रियाएँ की। अतःजिस वस्तु के लिए कर्ता क्रिया को कर्ता है उसको कर्म कहते है। 'यजमान ने अपने हाथो से ब्राह्मणों को दान दिया। इस वाक्य में दान क्रिया की पूर्ति हाथ से हुई। अतः हाथ करण हुआ। इसी वाक्य में दान रूपी जो क्रिया हुई, वह ब्राह्मणों के लिए हुई है। अतः ब्राह्ाण सम्प्रदान हुआ। "आम के वृक्षो से भूमि पर फल गिरे।" इस वाक्य में वृक्षों से फल अलग हुए अतः वृक्ष अपादान कारक हुआ। फल भूमि पर गिरे, अतः भूमि अधिकरण हुई। और आम का सम्बन्ध वृक्षां से है अतः 'आम' सम्बन्ध कारक हुआ। ऊपर दिये गये इन चार वाक्यों में माना मारना, देना और गिराना क्रियाओं के करने में जिन कर्ता कर्म आदि शब्दों को उपयोग हुआ है, उन्हें कारक कहते हैं। कारक वह वस्तु है, जिसका उपयोग क्रिया की पूर्ति के लिए किया जाता है। करकों को जोड़ने के लिए हिन्दी में 'ने' 'को' आदि चिन्ह काम मे आते है, ये विभक्ति (कारक चिन्ह)कहलाते हैं। संस्कृत में सात विभक्तियॉ एक सम्बोधन होता है। शब्द का नियम जो शब्द रूप राम हरि सखि राजन रमा अर्थ सहित दिया गया है इन रूपों का वाक्य में परिवर्तन किया गया है।

अव्यय शब्द— जिन शब्दों में किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ हो उसे अव्यय कहते है, यथा- राम: सदा पुस्तकं पठति। (राम हमेशा पुस्तक पढ़ता है।) राम: सदा पुस्तकानि पठति।(राम हमेशा पुस्तकें पढ़ता है।) बालकाः सदा पुस्तकानि पठन्ति। (बालक हमेशा पुस्तकें पढ़ते है।) इन तीनों वाक्यों में सभी शब्दों का परिवर्तन हुआ। किन्तु 'सदा' जो अव्यय पद है उसका परिवर्तन नहीं हुआ है इस लिए यह अव्यय पद कहा गया है।

संज्ञा- किसी नाम, व्यक्ति, वस्तु को संज्ञा कहते है, यथा- राम, नदी, लता, अश्व आदि।

सर्वनाम— जो किसी संज्ञा के बदले बोला जाता है उसे सर्वनाम कहते है, यथा-त्वम् (तुम) अहम् (मैं) सः (वह) आदि।

विशेषण— जो विशेषता को बताता है उसे विशेषण कहते हैं,यथा- सुन्दर रक्त , कृष्ण (काला) दुष्ट आदि। जिन शब्दों के रूपों में परिवर्तन होता है उसे विकारी शब्द कहते है। विकारी शब्द अनेक प्रकार के होते हैं। **विकारी शब्दों के उदाहरण**—

"कुलपतिः तुभ्यं सुन्दरं पारितोषिकम् अददत् (कुलपति ने तुम्हारे लिए सुन्दर इनाम दिया।)" इस वाक्य में 'कुलपति शब्द संज्ञा या नाम है, तुभ्यं (तुम्हारे लिए) संज्ञा के स्थान पर आया है, अतः सर्वनाम है; सुन्दरम् शब्द पारितोषिक (इनाम) की विशेषता बतलाता है, अतः विशेषण है; अददत् (दिया) शब्द किसी कार्य का करना बतलाता है, अतः क्रिया है।

1.3.2 लिंग और वचन

सीता ने राम को पुष्प दिया (सीता रामाय पुष्पं अददत्) इस वाक्य में सीता एक ऐसा शब्द है जिससे स्त्री जाति का बोध होता है अतः यह शब्द स्त्रीलिंग है और एक वचन भी है। 'पुष्प' शब्द से न तो पुरूष जाति का बोध होता है और न स्त्री जाति का, बोध है, अतः यह शब्द नपुंसक लिंग है और एक वचन भी है। ' रामाय ' शब्द एक ऐसा नाम है जिसे पुरूष जाति का बोध होता

है, अतः पुंलिंग है तथा एकवचन भी है। 'अददात्' जो शब्द है वह क्रिया है और एकवचन है। संस्कृत में एक ही शब्द के वाचक शब्द भिन्न-भिन्न लिङ्गों के है, यथा-तटः, तटी, तटम्, (तीनों का अर्थ किनारा है)।

पुरूष— संस्कृत भाषा में तीन पुरूष होते हैं- प्रथम पुरूष, मध्यम पुरूष तथा उत्तम पुरूष। प्रथम पुरूष का प्रयोग वह, वे दोनों वे लोग जहाँ ऐसा वाक्य होता है वहाँ पर किया जाता है, जैसे वे लोग पढ़ते है, (ते पठन्ति)। मध्यम पुरूष का प्रयोग तुम, तुम दोनों, तुम लोग जहाँ पर होता है वहाँ पर मध्यम पुरूष का प्रयोग किया जाता है। जैसे त्वं पठसि। (तुम पढ़ते हो)। उत्तम पुरूष का प्रयोग वहाँ पर किया जाता है जहाँ हम, हम दोनों, हम लोग रहता है। जैसे- अहं पुस्तकं पठामि (मैं पुस्तक पढ़ता हूँ) इन पुरूषों का प्रयोग आगे वाच्य प्रकरण में दिया गया है। संस्कृत में तीन वचन होते हैं- एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। भिन्न भिन्न कारकों को बतलाने के लिए प्रातिपदिकों में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हे 'सुप'कहते है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ बतलाने के लिए धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते है उन्हे तिङ् कहते हैं। सुप और तिङ् को विभक्ति कहते हैं। सुबन्त और तिङन्त शब्दों को ही पद कहते हैं।

विभक्तियों के मूल स्वरूप

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ने	सु	औ	जस् (अः)
द्वितीया	को	अम्	औट् (औ)	शस् (अः)
तृतीया	से, के द्वारा	टा (इन)	भ्याम्	भिस् (भिः)
चतुर्थी	के लिए	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पंचमी	से अलग	ङसि आत्)	भ्याम्	भ्यस(भ्यः)
षष्ठी	का, के, की	ङस् (स्य)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	में, पै, पर	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप्

इन सात विभक्तियों तथा 21 प्रत्ययों को क्रमशः जोड़कर के रूप बनाये जाते हैं, यथा-राम शब्द से प्रथमा के एकवचन में रूप बनाना है तो सबसे पहले प्रथमा के एक वचन सु प्रत्यय लायेंगे, सु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तस्य लोपः से लोप करते है और स् के स्थान में विसर्ग करते हैं तो रामः ऐसा प्रयोग बनता है। अन्य भी रूप ऐसे जोड़कर चलाया जाता है। इसे शब्द रूप कहते हैं।

राम शब्द का वाक्य में परिवर्तन

अकारान्त पुंल्लिङ्ग राम शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा विभक्ति	रामः (राम)	रामौ (दो राम)	रामा:(रामो ने)
द्वितीया विभक्ति	रामम् (राम को)	रामौ (दो राम को)	रामान् (रामों को)
तृतीय विभक्ति	रामेण (राम से)	रामभ्याम् दो रामसे)	रामै(रामो से) :
चतुर्थी विभक्ति	रामाय (राम के लिए)	रामाभ्याम् (दो राम के लिए)	रामेभ्यरामो के) : (लिए
पंचमी विभक्ति	रामात् (राम से)	रामाभ्याम्(दो राम से)	रामेभ्य (रामो से) :

षष्ठी विभक्ति	रामस्य (राम का)	रामयो(दो राम का) :	रामाणाम् (रामो के)
सप्तमी विभक्ति	रामे (में राम)	रामयो(दो राम में):	रामेषु(रामो में)
सम्बोधन विभक्ति	हे राम (हे राम)	हे रामौ (हे दो राम)	हे रामा (हे रामों)

जितने भी अकारान्त पुल्लिंग रूप होंगे सब राम के समान होंगे। यथा रमेश, सुरेश, उमेश, दिनेश आदि। कुछ अकारान्त शब्द एवं अर्थ दिये जा रहे हैं - इसी तरह अधोलिखित शब्दों के रूपों का अभ्यास कीजिए।

नरः-मनुष्य, कृषकः–किसान, बालः–बालक, विद्यालयः-विद्यालय, पुत्रः–पुत्र, सज्जनः–सज्जन, जनकः – पिता, दुर्जनः – दुर्जन, नृपः – राजा, खलः – दुष्ट,भक्तः- भक्त, करः- हाथ, शिष्यः- शिष्य, अनिलः-हवा,सूर्यः–सूर्य, वृकः–भेडिया, चन्द्रः – चन्द्रमा, रासभ–गदहा, सुरः– देवता,उपहारः – भेट,रवगः –पक्षी, पिकः – कोयल,मयूरः- मोर,वंशः- वंश (कुल), प्रश्नः- प्रश्न,गजः- हाथी,कोशः- कोस,आलयः- घर,लोकः- संसार,आपणिकः- दुकानदार,धर्मः- धर्म,असुरः- दैत्य,अनलः- अग्नि, आतपः-धूप,ग्रन्थः- ग्रन्थ, आभीरः-अहिर,कृष्णः-काला, नाकः- स्वर्ग, वानरः- वानर, पड़क- कीचड,आम्रः- आम, रूद्रः- शिव

वाक्य में परिवर्तन

शब्द	**अर्थ**
रामः गृहं गच्छति।	राम घर जाता है।
रामाः पुस्तकालये पठन्ति।	बहुत से राम विद्यालय में पढ़ते हैं।
त्वं रामं पश्य।	तुम राम को देखों।
तौ रामौ पश्यतः।	वे दोनों दो राम को देखो।
ते रामान् पश्यन्ति।	वे लोग रामों को देखते हैं।
यूयं रामेण क्रीडथ।	तुम लोग राम से खेलते हो।
स तस्मै रामाय धनं ददाति।	वह उस राम को धन देता है।
तौ रामाभ्यां धनं दत्तः।	वे दोनों दो राम को धन देते हैं।
सः बालकः रामाभ्यां जुगुप्सत।	वह बालक राम से घृणा करता है।
सः बालकः रामाभ्यां विभेति।	वह बालक दो राम से डरता है।
बालकाः रामेभ्यः पठन्ति।	लड़के बहुत राम से पढ़ते हैं।
रामस्य गृहम् अस्ति।	राम का घर है।
रामयोः गृहे स्तः।	दो राम का दो घर है।
रामाणां विद्यालयाः सन्ति।	बहुत रामों का विद्यालय हैं।
मम चित्त : रामे अस्ति।	मेरा चित्त राम में हैं।
तव चित्त : रामे अस्ति।	तुम्हारा चित्त राम में है।
तेषां चित्तः रामेषु सन्ति।	उन लोगों की चित्त रामों में है।

1 .अभ्यास के प्रश्न

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. वाक्य रचना में किसका प्रयोग किया जाता है-

अ. शब्द ब. भाषा स. शब्द भाषा दोनों, द. शब्द भाषा दोनों नहीं

2. पुरूष कितने होते हैं-

अ. पाँच ब. चार स. तीन द. एक

3. लिंग कितने होते है-

अ. चार ब. एक स. तीन द. दो

4. वचन कितने होते हैं-

अ. चार ब.एक स. दो द. तीन

5. विभक्तियाँ कितनी होती है-

अ. चार ब. एक स. सात द. आठ

6. सम्बोधन कितने होते हैं -

अ. एक ब. तीन स. दो द. चार

हरि शब्द का वाक्य में परिवर्तन

इकारान्त पुल्लिङ्ग हरि (विष्णु अथवा बन्दर)

इकारान्त पुंल्लिंग विभक्तियों के मूल रूप

विभक्तिः	**एकवचन**	**द्विवचन**	बहुवचन
प्रथमा	सु (:)	औ (ई)	जस् (अः)
द्वितीया	अम्	औट् (ई)	शस् (ईन्)
तृतीया	टा (ना)	भ्याम्	भिस् (:भि)
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पंचमी	ङसि (अः)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
षष्ठी	ङस् (अः)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप्

1.3.3 हरि शब्द के रूप

इन सात विभक्तियों तथा 21 प्रत्ययों को जोड़ कर क्रमशः रूप बनाये जाते हैं,

यथा - हरि शब्द के प्रथमा विभक्ति के एक वचन में सु प्रत्यय होकर हरि+ सु,बाना सु के उकार की इत्संज्ञा तस्य लोपः से लोप होकर हरि+स् बना। स को विसर्ग होकर हरि: ऐसा रूप बनता है। क्रमशः इसी प्रकार 21 प्रत्ययों को जोड़कर रूप बनाइये –

विभक्तिः	**कारकम्**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	**हरिः**	**हरी**	**हरयः**
द्वितीया	कर्म	**हरिम्**	**हरी**	**हरीन्**
तृतीया	करणम्	**हरिणा**	**हरिभ्याम्**	**हरिभिः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	**हरये**	**हरिभ्याम्**	**हरिभ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	**हरेः**	**हरिभ्याम्**	**हरिभ्यः**
षष्ठी	सम्बन्धः	**हरेः**	**हर्योः**	**हरीणाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	**हरौ**	**हर्योः**	**हरिषु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	**हे हरे !**	**हे हरी !**	**हे हरयः!**

इसी प्रकार अन्य ह्रस्व इकारान्त पुंल्लिंग का रूप चलाये जाते हैं -

शब्द - अर्थ
अग्नि - आग
अङ - चरण
अन्जलि - जुड़े हुए हाथ
अद्रि - पहाड़
आराति - शत्रु
हरये - हरि के लिये
उडुपति - चन्द्र
उदधि - समुन्द्र
उपाधि - उपाधि
उषापति - सूर्य
उर्मि - लहर
ऋषि - मन्त्र द्रष्टा
कपि-बानर
कलानिधि-चन्द्र
कलि- झगड़ा
कवि - कविताकार
कुक्षि-पेट
कृमि - कीड़ा
गिरि-पहाड़
ग्रन्थि - गाँठ
चक्रपाणि - विष्णु
चुड़ामणि - शिरोरत्न
जठराग्नि - पेट की आग्नि
जलधि - समुद्र
ज्ञाति - रिस्तेदार
तरणि - सूर्य
दिनमणि - सूर्य
दिवाकीर्ति- नापित
दुन्दभि- नगारा
दुर्मति- दुष्ट बुद्धि
धन्वन्तरि- प्रसिद्ध वैद्य
धूर्जति- शिव
ध्वनि - आवाज
नमुचि - एक दैत्य
निधि- खजाना

अरि - शत्रु
अलि - भ्रमर
अवधि - सीमा
असि - तलवार
अहि - सर्प
आधि - मानसिक पीड़ा
सुरभि- बसन्त
सुमति - श्रेष्ठ बुद्धिवाला
सारथि - रथ वाहक
समाधि - समाधि
सभापति - सभा का प्रधान
सप्ति - घोड़ा
सन्धि - मेल
भकुनि -पक्षि
व्रीहि-चावल
व्याधि - शारीरिकरोग
विधि-दैव
वाल्मीकि-प्रसिद्ध मुनि
वारिराशि- समुद्र
वारिधि - सागर
वाक्पति - वृहस्पति
वद्धि - आग
वकवृत्ति - स्वार्थी
राशि-ढ़ेर
राश्मि - किरण
रवि - सूर्य
रमापति - विष्णु
ययाति - प्रसिद्ध राजा
यति- सन्यासी
मौलि- सिर
मृगपति- शेर
मुनि- मुनि
मारूति- हनुमान
मणि- मणि
भूपति- रा जा
पाणिनि -प्र सिद्ध मुनि

निशापति- चन्द्र प्रजापति- ब्रह्मा
नृपति- राजा पाणि- हाथ
पत्ति-पैदल सेना पशुपति- शिव
हिमगिरि- हिमालय परिधि - घेरा
सेनापति - सेनानायक वालधि - पुंछ

।। हरि शब्द का वाक्यादि में प्रयोग।।

हरिः वने क्रीडति।	हरि वन में खेलता है।
हरिः पुस्तिकायां लिखतः।	दो हरि कापी पर लिखते है।
हरयः स्नानं कुर्वन्ति।	बहुत से हरि स्नान करते है।
हरि वयम् अर्चनं कूर्मः।	हरि को हम लोग पूजा करते है।
तौ हरी पश्यतः।	वे दोनों दो हरी को देखते है।
ते हरीन् पश्यन्ति।	वे लोग बहुत से हरि को देखते है।
तौ हरिभ्यां सह गृहं गमिष्यतः।	वे दोनों दो हरि के साथ स्वर्ग जायेंगे।
हरिभिः मया सेव्यते।	बहुत से हरि के द्वारा हमारी सेवा की जाती है।
हरये मोदकं रोचते।	हरि को मोदक अच्छा लगता है।
हरिभ्यां मोदकं रोचेते।	दो हरि को मोदक अच्छा लगता है।
सः हरेः विभेति।	वह हरि से डरता है।
तौ हरिभ्यां त्रायेते।	वे दोनों दो हरि से रक्षा किये जाते है।
ते हरिभ्यां त्रायन्ते।	वे लोग बहुत से हरि से रक्षा किये जाते है।
इदं पुस्तकं हरेः अस्ति।	यह पुस्तक हरि का है।
इमानि पुस्तकानि हरीणां सन्ति।	ये पुस्तके बहुत से हरि का है।
इमानि पुस्तकानि हरीणां सन्ति।	ये पुस्तके बहुत से हरि का है।
वयं सर्वे हरौ सन्ति।	हम सभी लोग हरि में है।

2. अभ्यास के प्रश्न

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. - हरि शब्दस्य द्वितीया एकवचने रूपम् अस्ति-
   अ. हरिः ब. हरिम स. हरी द. हरीन
2. हरि शब्दस्य चतुर्थी एकवचने रूपम् अस्ति-
   अ. हरिणा ब. हरिभ्याम् स. हरये द. हरिभि
3. हरि शब्दस्य पंचमी एकवचने रूपम् अस्ति-
   अ. हरिभ्याम् ब. हरिभ्यः स. हरेः द. हर्योः
4. हरि शब्दस्य षष्ठी बहुवचने रूपम् अस्ति-
   अ. हरेः ब. हर्योः स. हरीणाम् द. हरिभ्याम्
5. हरि शब्दस्य सप्तमी एकवचने रूपम् अस्ति-
   अ. हरौ ब. हर्योः स. हरिषु द. हरिभ्यः

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये।

1. हरि ने सज्जनों की रक्षा की।
2. हरि को हम लोगों ने देखा।
3. हरि के साभ हम लोग स्वर्ग गये।
4. हरि को मोदक अच्छा लगता है ।
5. हम सभी लोग हरि से पढ़ते है।
6. ब्रह्मा ने हरि से वेद पढ़ा।
7. हरि का घर वहाँ पर है।
8. यह पुस्तक हरि का है।
9. हरि में हम लोग समाहित हैं।

सखि शब्द का वाक्य में परिवर्तन

सखि (मित्र) इकारान्त पुंल्लिङ्ग

विभक्तिः	**कारकम्**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	**सखा**	**सखायौ**	**सखायः**
द्वितीया	कर्म	**सखायम्**	**सखायौ**	**सखीन्**
तृतीया	करणम्	**सख्या**	**सखिभ्याम्**	**सखिभिः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	**सख्ये**	**सखिभ्याम्**	**सखिभ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	**सख्युः**	**सखिभ्याम्**	**सखिभिः**
षष्ठी	सम्बन्धः	**सख्युः**	**सख्योः**	**सखीनाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	**सख्यौ**	**सख्योः**	**सखिषु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	**हे सखे !**	**हे सखायौ**	**हे सखायः!**

।। सखि शब्द का वाक्यादि में प्रयोग।।

सुरेशः रामस्य सखा अस्ति।	सुरेश रमेश का मित्र है।
तौ रामस्य सखायौ स्तः।	वे दोनों राम के सखा है।
सखा त्वं कुत्र गच्छसि।	मित्र तुम कहा जाते हो?
सखायं पुस्तकं लिखेत्।	मित्र को पुस्तक लिखना चाहिए
सखीन् ग्रामं गच्छेयु :।	मित्रों को गाँव जाना चाहिए।
सख्या सह रामः पठति।	मित्र के साथ राम पढ़ता है।
सखिभिः सह ते बालकाः पठन्ति।	मित्र के साथ वे बालक पढ़ते है।
भक्तः सख्ये हरिं भजति।	भक्त मित्र के लिए हरि को भजता है।
सखिभ्यः पुस्तकम् अस्ति।	मित्रों के लिए पुस्तक है।
वयं सख्युः पुस्तकं पठामः।	हम लोग मित्र से पुस्तक पढते है।
यूयं सखिभ्यः पुस्तकं पठथ।	तुम लोग मित्रो से पुस्तक पढते हो।
इदं मन्दिरं सख्युः अस्ति।	यह मदर मित्र का हैं
तौ पुस्तके सख्योः स्तः।	वे दोनों पुस्तके दोनो मित्रों का है।
तेषां सखीनां वस्त्राणि मम पार्श्वे सन्ति।	उन मित्रों का वस्त्र मेरे पास हैं।
वयं सर्वे सख्यौ स्मः।	हम सभी लोग मित्र में है।

यो सखे! मम उद्धरः। हे सखा हम को उद्धार करों।

1.3.4 पितृ शब्द ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग

विभक्तिः	कारकम्	एकबचन	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	कर्ता	पिता (आ)	पितरौ (अरौ)	पितरः (अरः)
द्वितीया	कर्म	पितरम् (अरम्)	पितरौ(अरौ)	पितॄन् (ऋन)
तृतीया	करणम्	पित्रा (रा)	पितृभ्याम्(ऋभ्याम्)	पितृभिः (ऋभि)
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	पित्रे (रे)	पितृभ्याम् (ऋभ्याम्)	पितृभ्यः (ऋभ्यः)
पञ्चमी	अपादानम्	पितुः (उ:)	पितृभ्याम् (ऋभ्याम्)	पितृभ्यः (ऋभ्यः)
षष्ठी	सम्बन्धः	पितु: (उ:)	पित्रोः (रोः)	पितृणाम् (ऋणाम्)
सप्तमी	अधिकरणम्	पितरि (अरि)	पित्रोः (रोः)	पितृषु (ऋषु)
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	है पितः!	हे पितरौ!	हे पितरः

पितृ शब्द के समान अन्य रूप् भी देखें-

भातृ (भाई) जामातृ (दामाद) देवृ (देवर) इत्यादि पुंल्लिग ऋकारान्त शब्दों के रूप इसी भाँति चलते हैं।

पिता पुत्रं प्रश्नं पृच्छति।	पिता पुत्र से प्रश्न पुछता है।
पितरः पुत्रान् धर्ममुपदिशति।	पिताओं ने पुत्रों को धर्म का उपदेश देते हैं।
पितरं मन्दिरं गच्छेत्।	पिता को मन्दिर जाना चाहिए।
पितॄन् पुस्तकै: पाठयेयुः।	पिताओं को पुस्तकों के द्वारा पढ़ाना चाहिए।
पित्रा सह पुत्रं गच्छति।	पिता के साथ पुत्र जाता है।
पितृभ्यां सह ते पठन्ति।	दो पिताओं के साथ वे लोग पढ़ते हैं।
पितृभिः पुत्रा भूयन्ते।	पिताओं के द्वारा पुत्र होते हैं।
पित्रे पुष्पाणि सन्ति।	पिता के लिए पुष्प हैं।
पितृभ्यां पुस्तकानि सन्ति।	दो पिताओं के लिए पुस्तकें है।
पितृभ्यः ते गताः।	पिताओं के लिए वे लोग गये।
पितुः सः पठति।	पिता से वह पढ़ता है।
वयं पितृणां वस्त्राणि प्रक्षालयेम।	हम लोगों को पिताओं के वस्त्रों को धोना चाहिए।
पितु: वस्त्रं सुन्दरम् अस्ति।	पिता का वस्त्र सुन्दर है।
अस्माकं चित्तः पितरि अस्ति।	हम लोगों का चित्त पिता में है।
भो पितः! माम् पाठयतु ।	हे पिता मुझको पढ़ाइये।

3 .अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. पितृ शब्दस्य प्रथमा बहुवचने रूपमस्ति-

अ. पिता ब. पितरौ स. पितर: द. पितॄन्

2. पितृ शब्दस्य द्वितीया एकवचने रूपमस्ति-

अ. पितरम् ब. पितरौ स. पितरः द. पितॄन्

3. पितृ शब्दस्य तृतीया बहुवचने रूपमस्ति-

अ. पित्रा ब. पितृभ्याम् स. पितृभि: द. पितरौ

4. पितृ शब्दस्य चतुर्थी एकवचने रूपमस्ति-(अ)

अ. पित्रे ब. पितृभ्याम् स.पितृन् द. पितृभ्यः

5. पितृ शब्दस्य षष्ठी बहुवचने रूपमस्ति-

अ. पितृणाम् ब. पितुः स. पितृभ्याम् द. पितृभ्यः

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. तुम्हारा पिता कहाँ है ?
2. तुम्हारे पिता ने मुझको फल दिया।
3. पिता को पुस्तक दिखाओं।
4. पिता के साथ वे लोग घर गये।
5. पिता के लिए मैं फल लाऊँगा।
6. पिता से वे लोग पुस्तक पढ़े।
7. पिता का यह लेखनी है।
8. हम लोगों का चित्त पिता में है।

राजन् (राजा) शब्द का रूप एवं वाक्य में परिवर्तन

1.3.5 अजन्त पुंल्लिङ्ग राजन् शब्द

विभक्ति:	**कारकम्**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	**राजा**	**राजानौ**	**राजान:**
द्वितीया	कर्म	**राजानम्**	**राजानौ**	**राज्ञ:**
तृतीया	करणम्	**राज्ञा**	**राजभ्याम्**	**राजभि:**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	**राज्ञे**	**राजाभ्याम्**	**राजभ्य:**
पञ्चमी	अपादानम्	**राज्ञ:**	**राजभ्याम्**	**राजभ्य:**
षष्ठी	सम्बन्ध:	**राज्ञ:**	**राज्ञो:**	**राज्ञाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	**राज्ञि राजनि**	**राज्ञो:**	**राजसु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	**हे राजन्!**	**हे राजानौ!**	**हे राजान:!**

इसी प्रकार निम्न शब्दों के रूप होते हैं...

अकिंचनिमन् - निर्धनता
अणिमन् - अणुपना
अम्लिमन् - अम्लता खट्टापन
आशिमन् - शीघ्रता
अष्णिमन् - गरमी
ऋजिमन् - सरलता
कालिमन् - कालापन
कृष्णिमन्- कृष्णता, कालापन
क्रशिमन् - दुबलापन
क्षेणिमन् - शीघ्रता
प्रेमन् - प्रेम स्नेह
बधिरिमन् - बहरापन
बहिमन् – बाहुलय, आधिकय
बालिमन् - बालपन लड़कपन
भूमन् - बहुत अधिक्य
मधुरिमन् - मिठापन
मन्दिमन् - मन्दत्व, मन्दपना
महिमन् - महत्व, गौरव
मुकिमन् - मुकता, गूंगापन
भ्रदिमन् - मृदुता, कोमलता

गरिमन् - गौरव	रक्तिमन् - रक्तता लाली
चण्डिमन् - चण्डता तीव्रता	लघिमन् - लघुता हल्कापन
जडिमन - मूर्खता	लवणिमन् - लवणता नमकीनपन
तनिमन् - पतलापन	लोहितमन् - लोहितत्त्व वाली
द्रढ़िमन् - कठोरता	वरिमन् - उरूत्व विशालता
द्राघिमन् - लम्बाई	शीतिमन् - शीतत्व ठण्डक
पठिमन् - चतुरता	शुक्लिमन् - शुक्लता
पण्डितिमन - विद्धता	श्वेतिमन्-श्वेतता
परिव्रढ़िमन् - स्वामित्व	साधिमन् - सज्जनता
प्रथिमन् - विस्तार	स्थेमन् - स्थिरता दृढता
ह्रसिमन् - ह्रस्वत्व	स्वादिमन् - स्वादुपन

इसी प्रकार अश्व, स्थामन्, उक्षन्, तक्षन, वृषन् यूर्धन प्रमुति शब्दों के रूप् होते है।

अत्र एकः राजा अस्ति।	यहॉ एक राजा हैं।
अत्र दौ राजानः सन्ति।	यहॉ दो राजा हैं।
राजानं क्षमां याचते।	राजा से क्षमा मांगता है।
राजानं धर्म ब्रवीति शास्ति वा।	राजा को धर्म तबलाता है।
राज्ञः अन्य राज्ये गच्छेयुः	राजाओं को अन्य राज्य में जाना चाहिए-
राज्ञा सह गच्छति।	राजा के साथ जाता है।
राजभिः सह सेनापति चरति।	राजाओं के साथ सेनापति चलता है।
इदं प्रसादं राज्ञे अस्ति।	यह महल राजा के लिए है।
इमे वस्त्रं राजभ्यां स्तः।	ये दोनों वस्त्र दो राजाओं के लिए है।
राजभ्यः इमानि वस्त्राणि सन्ति।	राजाओं के लिए ये वस्त्र है।
ते राजभ्यः अपठन्।	वे लोग राजाओं से पढ़े।
ते राज्ञां पुत्राः सन्ति।	वे लोग राजाओं के पुत्र हैं।

4.अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः-

1. राजन् शब्दस्य प्रथमा बहुवचने रूपमस्ति-

अ. राजा ब. राजानः

स. राजानौ द. राजानम्

2. राजन् शब्दस्य द्वितीया द्विवचने रूपमस्ति-

अ. राजानम् ब. राजानौ

स. राजानः द. राज्ञः

3. राजन् शब्दस्य तृतीया बहुवचने रूपमस्ति-

अ. राज्ञा ब. राजभ्याम्

स. राजभिः द. राज्ञः

4. राजन् शब्दस्य पंचमी एकवचने रूपमस्ति-

अ. राज्ञः ब. राजभ्याम्

स. राजभ्यः द. राज्ञे

5. राजन् शब्दस्य सप्तमी एकवचने रूपमस्ति-

अ. राज्ञि ब. राज्ञोः

स. राजसु द. राज्ञाम्

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. राजा वन में गया।
2.राजाओं ने आपस में लड़े।
3. राजा को तुम लोग देखों।
4. राजाओं को वे लोग देखेंगे।
5. राजा के साथ रानियाँ जाती हैं।
6. राजाओं के साथ सारथी भी जाते हैं।
7. राजा के लिए यह फल है।
8. राजाओं के लिए ये वस्त्र है।
9. राजा से वे लोग पढेगें।
10. राजाओं का राज्य बड़ा है।

1.3.6 रमा (लक्ष्मि) आकारान्त स्त्रीलिंग

रमा शब्द का रूप

विभक्तिः	कारकम्	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	कर्ता	**रमा**	**रमे**	**रमाः**
द्वितीया	कर्म	**रमाम्**	**रमे**	**रमाः**
तृतीया	करणम्	**रमया**	**रमाभ्याम्**	**रमाभिः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	**रमायै**	**रमाभ्याम्**	**रमाभ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	**रमायाः**	**रमाभ्याम्**	**रमाभ्यः**
षष्ठी	सम्बन्धः	**रमायाः**	**रमयोः**	**रमाणाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	**रमायाम्**	**रमयोः**	**रमासु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	**हे रमे!**	**हे रमे!**	**हे रमाः!**

बालकों को समझने के लिए कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्दों का संग्रह यहा दे रहे हैं। इनका उच्चारण रमा के समान होता है।

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
जया	स्त्री	उपमा	सादृश्य
जालौका	जोंक	उमा	पार्वति
जनता	जन समूह	उषा	सवेरा
जड़ता	मूर्खता	अजा	बकरी
जटा	जटा	एला	इलायची

दुर्गा	दुर्गा	कन्या	कुँवारी कन्या
अम्बिका	अम्बिका	कुलटा	व्यभिचारिणी
जिज्ञासा	ज्ञानेच्छा	कुत्सा	निन्दा
छुरिका	छुरी	कशा	चाबुक
छाया	छाया	कविका	लगाम
छटा	चमक	कान्ता	मनोहरा
चेष्टा	हरकत	काष्ठा	दिशा
चेतना	समझ	कृपा	दया
चूड़ा	चोटी	आत्मजा	पुत्री
चिन्ता	फिकर	आपगा	नदी
चपला	विद्युत	ईप्सा	पाने की इच्छा
चिकित्सा	इलाज	क्षपा	रात्रि
चन्द्रिका	चादनी	आख्या	नाम
घृणा	अरूचि	अवस्था	हालत
ग्रीवा	गर्दन	अचला	पृथ्वी
गोशाला	गोस्थान	अनुज्ञा	आज्ञा

रमा शब्द का वाक्य में परिवर्तन

रमा गृहे भोजन पचति।	रमा घर में भोजन पकाती है।
ते रमे गृहे भोजनं पचतः।	वे दोनों रमा घर में भोजन पकाती है।
ताः रमाः विद्यालये पठिष्यन्ति।	वे सब रमा विद्यालय में पढ़ेगीं।
रमा भोजनं पचेत्।	रमा को भोजन पकाना चाहिए।
ताः रमाः भोजनं पचेयुः।	उन रमाओं को भोजन पकाना चाहिए।
तया रमया सह बालिकाः गमिष्यन्ति।	उस रमा के साथ वे लड़कियॉ जायेगीं।
ताभिः रमाभिः सह ता बालिकाः पठिष्यन्ति।	उन रमाओं के साथ वे लड़कियॉ पढ़ेगीं।
रमायै जलम् आनय।	रमा के लिए जल लाओं।
रमायाः ताः बालिका पठिष्यन्ति।	रमा से वे लड़कियॉ पढेगीं।
रमाणाम् आभूषणानि सन्ति।	रमाओं का आभूषणे हैं।
रमायां तस्याः बालिका चित्तमस्ति।	रमा में उस बालिका का चित्त है।

1.3.7 हलन्त-शब्दरूप—

व्यंजन वर्ण व्याकरण में हल् कहे जाते हैं। हल् कहने से सभी व्यञ्जनों का बोध होता है। शब्दों के अंत में जो वर्ण होता है, उसी वर्णान्त वाला (वर्ण के अन्त में आने वाला) वह शब्द कहा जाता है।

पुँल्लिङ्ग शब्द -

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	अन्तः	मूलशब्दाः (अर्थः)

राजा	राजानौ	राजानः	न्	राजन् (राजा)
युवा	युवानौ	युवानः	न्	युवन् (युवक)
गुणी	गुणिनौ	गुणिनः	न्	गुणिन्(गुणी)
विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः	स्	विद्वस् (विद्वान्)

स्त्रीलिङ्ग शब्द –

गीः	गिरौ	गिरः	र्	गिर् (वाणी)
दिक्, ग्,	दिशौ	दिशः	श्	दिश् (दिशा)
सरित्, द्	सरितौ	सरितः	त्	सरित् (नदी)
संसत्,द्	संसदौ	संसदः	द्	संसद् (सभा)
समित्	समिधौ	समिधः	ध्	समिध्(लकड़ी/ हवनसामग्री)

नपुंसकलिङ्ग शब्द –

पयः	पयसी	पयांसि	स्	पयस् (जल)
मनः	मनसी	मनांसि	स्	मनस् (मन)
कर्म	कर्मणि	कर्माणि	न्	कर्मन् (कर्म)
वपुः	वपुषी	वपूंषि	ष्	वपुष् (शरीर)

श्रीमत् शब्द रूप -

विभक्तिः	**कारकम्**	**चिह्नम्**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	ने	**श्रीमान्**	**श्रीमन्तौ**	**श्रीमन्तः**
द्वितीया	कर्म	को	**श्रीमन्तम्**	**श्रीमन्तौ**	**श्रीमतः**
तृतीया	करणम्	से, साथ, द्वारा	**श्रीमता**	**श्रीमद्भ्याम्**	**श्रीमद्भिः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	को, के लिये	**श्रीमते**	**श्रीमद्भ्याम्**	**श्रीमद्भ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	से (अलग होना)	**श्रीमतः**	**श्रीमद्भ्याम्**	**श्रीमद्भ्यः**
षष्ठी	सम्बन्धः	का, के, की,रा,रे, री,	**श्रीमतः**	**श्रीमतोः**	**श्रीमताम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	में, पर	**श्रीमति**	**श्रीमतोः**	**श्रीमत्सु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	हे, अरे, अयि, भोः	**हेश्रीमन् !**	**हेश्रीमन्तौ !**	**हे श्रीमन्तः !**

इसी प्रकार गुणवत्-(गुणवान्), रूपवत्-(रूपवान्), गतवत्-(गयाहुआ), धीमत्-(बुद्धिमान्), हनुमत्-(हनुमान्), भवत्-(आप), बलवत्-(बलवान्), धनवत्-(धनवान्), पठितवत्-(पढ़ाहुआ), यावत्-(जितना), तावत्-(उतना), एतावत्-(इतना), कियत्-(कितना), शब्दों के रूप भी इसी तरह बनेंगे।

गुणिन् (गुणी)—

विभक्तिः	**कारकम्**	**चिह्नम्**	**वचनम् - एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	ने	**गुणी**	**गुणिनौ**	**गुणिनः**
द्वितीया	कर्म	को	**गुणिनम्**	**गुणिनौ**	**गुणिनः**
तृतीया	करणम्	से, साथ, द्वारा	**गुणिना**	**गुणिभ्याम्**	**गुणिभिः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	को, के लिये	**गुणिने**	**गुणिभ्याम्**	**गुणिभ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	से (अलग होना)	**गुणिनः**	**गुणिभ्याम्**	**गुणिभ्यः**
षष्ठी	सम्बन्धः	का, के, की,रा,रे, री,	**गुणिनः**	**गुणिनोः**	**गुणीनाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	में, पर	**गुणिनि**	**गुणिनोः**	**गुणिषु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	हे, अरे, अयि, भोः	**हेगुणिन् !**	**हेगुणिनौ !**	**हेगुणिनः !**

इसी प्रकार कुटुम्बिन् (परिवार), चक्रवर्तिन्, हस्तिन् (हाथी), प्राणिन् (प्राणी), प्रतिवेशिन् (पड़ोसी), मालिन् (माली), ज्ञानिन् (ज्ञानी), अर्थिन् (याचक), कामिन् (प्रेमी), शशिन् (शशी), पक्षिन् (पक्षी), धनिन् (धनी), तपस्विन् (तपस्वी), योगिन् (योगी), ध्यानिन् (ध्यानी), मानिन् (मानी), बलिन् (बली), सुखिन् (सुखी), वादिन् (वादी), घातिन् (घाती), स्वामिन् (स्वामी), वासिन् (वासी-रहनेवाला), विज्ञानिन्(विज्ञानी) शब्दों के रूप भी इसी तरह बनेंगे।

राजन् (राजा)—

विभक्तिः	**कारकम्**	**चिह्नम्**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	ने	**राजा**	**राजानौ**	**राजानः**
द्वितीया	कर्म	को	**राजानम्**	**राजानौ**	**राज्ञः**
तृतीया	करणम्	से, साथ, द्वारा	**राज्ञा**	**राजभ्याम्**	**राजभिः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	को, के लिये	**राज्ञे**	**राजभ्याम्**	**राजभ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	से (अलग होना)	**राज्ञः**	**राजभ्याम्**	**राजभ्यः**

षष्ठी	सम्बन्धः	का, के, की,रा,रे, री,	**राज्ञः**	**राज्ञोः**	**राज्ञाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	में, पर	**राज्ञि, राजनी**	**राज्ञोः**	**राजसु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	हे, अरे, अयि, भोः	**हेराजन् !**	**हेराजानौ !**	**हेराजानः !**

सुहृद् (मित्र)—

विभक्तिः	**कारकम्**	**चिह्नम्**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	ने	**सुहृत् सुहृद् /**	**सुहृदौ**	**सुहृदः**
द्वितीया	कर्म	को	**सुहृदम्**	**सुहृदौ**	**सुहृदः**
तृतीया	करणम्	से, साथ, द्वारा	**सुहृदा**	**सुहृद्भ्याम्**	**सुहृद्भिः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	को, के लिये	**सुहृदे**	**सुहृद्भ्याम्**	**सुहृद्भ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	से (अलग होना)	**सुहृदः**	**सुहृद्भ्याम्**	**सुहृद्भ्यः**
षष्ठी	सम्बन्धः	का, के, की,रा,रे, री,	**सुहृदः**	**सुहृदोः**	**सुहृदाम्**
सप्तमी	अधिकरणम्	में, पर	**सुहृदि**	**सुहृदोः**	**सुहृत्सु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	हे, अरे, अयि, भोः	**हेसुहृत् सुहृद्/ !**	**हेसुहृदौ !**	**हेसुहृदः !**

नामन् (नाम)

विभक्तिः	**कारकम्**	**चिह्नम्**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	कर्ता	ने	**नाम**	**नाम्नी, नामनी**	**नामानि**
द्वितीया	कर्म	को	**नाम**	**नाम्नी, नामनी**	**नामानि**
तृतीया	करणम्	से, साथ, द्वारा	**नाम्ना**	**नामभ्याम्**	**नामभिः**
चतुर्थी	सम्प्रदानम्	को, के लिये	**नाम्ने**	**नामभ्याम्**	**नामभ्यः**
पञ्चमी	अपादानम्	से अलग) (होना	**नाम्नः**	**नामभ्याम्**	**नामभ्यः**
षष्ठी	सम्बन्धः	का, के, की,रा,रे, री,	**नाम्नः**	**नाम्नोः**	**नाम्नाम्**

सप्तमी	अधिकरणम्	में, पर	**नाम्नि, नामनि**	**नाम्नोः**	**नामसु**
सम्बोधनम्	सम्बोधनम्	हे, अरे, अयि, भोः	**हेनाम, नामन्!**	**हेनाम्नी, नामनी!**	**हेनामानि!**

इसी प्रकार दामन् (रस्सी), शर्मन् (शर्मा), वर्त्मन् (मार्ग), छद्मन् (छल), पर्वन् (पर्व, त्योहार), प्रेमन् (प्रेम), सद्मन् (घर), जन्मन् (जन्म), ब्रह्मन् (ब्रह्म), लोमन् (लोम कर्मन् (कर्म), धामन् (धाम), व्योमन् (आकाश), सामन् (सामवेद) इत्यादि शब्दों के रूप भी चलेंगे।

1.3.8 सर्वनाम शब्द—

सर्वनाम शब्द संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं । अतः प्रत्येक सर्वनाम शब्दों के तीनों लिङ्गों में रूप होते हैं । अतः रूपों में समानता भी होती है ।

पुँल्लिङ्ग			**कारकम् विभक्ति**	**स्त्रीलिङ्ग**		
एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**		**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
अयम्	**इमौ**	**इमे**	कर्ता प्रथमा	**इयम्**	**इमे**	**इमाः**
इमम्	**इमौ**	**इमान्**	कर्म द्वितीया	**इमाम्**	**इमे**	**इमाः**
अनेन	**आभ्याम्**	**एभिः,**	करणम् तृतीया	**अनया**	**आभ्याम्**	**आभिः**
अस्मै	**आभ्याम्**	**एभ्यः**	सम्प्रदानम् चतुर्थी	**अस्यै**	**आभ्याम्**	**आभ्यः**
अस्मात्	**आभ्याम्**	**एभ्यः**	अपादानम् पञ्चमी	**अस्याः**	**आभ्याम्**	**आभ्यः**
अस्य	**अनयोः**	**एषाम्**	सम्बन्धः षष्ठी	**अस्याः**	**अनयोः**	**आसाम्**
अस्मिन्	**अनयोः**	**एषु**	अधिकरणम् सप्तमी	**अस्याम्**	**अनयोः**	**आसु**

सर्वनाम शब्द के नपुंसकलिङ्ग में रूप—

शब्दः	**कारकम् विभक्तिः**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**	**द्विवचनम्**	**कारकम् विभक्तिः**	**बहुवचनम्**
तद्	कर्ता प्रथमा	**तत्**	**ते**	**तानि**	**उभौ**	कर्ता प्रथमा	**कति**

एतद्		**एतत्**	**एते**	**एतानि**	**उभौ**	कर्म द्वितीया	**कति**
इदम्		**इदम्**	**इमे**	**इमानि**	**उभाभ्याम्**	करणम् तृतीया	**कतिभिः**
किम्		**किम्**	**के**	**कानि**	**उभाभ्याम्**	सम्प्रदानम् चतुर्थी	**कतिभ्यः**
सर्व		**सर्वम्**	**सर्वे**	**सर्वाणि**	**उभाभ्याम्**	अपादानम् पञ्चमी	**कतिभ्यः**
अन्य द्		**अन्यत्**	**अन्ये**	**अन्यानि**	**उभयोः**	सम्बन्धः षष्ठी	**कतीनाम्**
विश्व		**विश्वम्**	**विश्वे**	**विश्वानि**	**उभयोः**	अधिकरणम् सप्तमी	**कतिषु**

नपुंसक लिङ्ग के प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में रूप एक समान होते हैं। तृतीया विभक्ति से सप्तमी तक सभी रूप अपने पुँल्लिंग रूप के समान होते हैं। अतः प्रयोग में पुँल्लिंग के ही रूपों का अभ्यास करना चाहिए।

1. 4 सारांश

इस इकाई में शब्द रूप तथा लिंग और वचन का विशेष रूप से वर्णन किया गया है स्त्री जाति का बोध कैसे होता है इनका विशेष रूप से वर्णन किया गया है यथा सीता पुष्प चुनती है इस वाक्य में सीता शब्द स्त्रीलिंग है और एक वचन भी है। ' पुष्प' शब्द से न तो पुरूष जाति का बोध होता है और न स्त्री जाति का, बोध है, अतः यह शब्द नपुंसक लिंग है और एक वचन भी है। संस्कृत में एक ही शब्द के वाचक शब्द भिन्न-भिन्न लिङ्गों के है, यथा-तटः, तटी, तटम्, (तीनों का अर्थ किनारा है)।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पात्मक प्रश्न:

अभ्यास 1 . 1. स 2.स 3. स 4. स 5. स 6.अ

अभ्यास 2 . 1. ब 2. स 3. स 4. स 5. अ

संस्कृत अनुवाद -1. हरि: सज्जनानां ररक्ष। 2. हरिं वयम् अपश्याम। 3. हरिणा सह वयं स्वर्गं अगच्छाम। 4. हरये मोदकं रोचते। 5. वयं हरे: पठाम:। 6. ब्रह्मा हरे: वेदं पपाठ।7. हरे: गृहं तत्र अस्ति। 8. इदं पुस्तकं हरे: अस्ति। 9. हरौ वयं सर्वे समाहिता:।

अभ्यास 3 . 1. स 2. अ 3. अ 4. अ 5. अ

संस्कृत अनुवाद - 1. तव पिता कुत्र अस्ति। 2. तव पिता मह्यं फलम् अददत्।
3. पितरं पुस्तकं दर्शय। 4. पित्रा सह ते गृहं अगच्छन् 5. पित्रे अहं फलं अनेष्यामि
6. पितु: ते पुस्तकं अपठत् 7. पितु: इयं लेखनी अस्ति। 8. अस्माकं चित्तं पितरि अस्ति

अभ्यास 4 . 1. ब 2. ब 3. स 4. द 5. अ

संस्कृत अनुवाद -1. नृप: वनम् अगच्छत् 2. राजनं यूयं पश्यथ 3. राज्ञां ते द्रक्ष्यन्ति।
4. राज्ञा सह राज्ञ: गच्छन्ति 5. राजभि:सारथिनोपि गच्छन्ति 6. राज्ञे इदं फलम् अस्ति।
7. राजभ्य: इमानि वस्त्राणि सन्ति 8. राज्ञ: ते पठिष्यन्ति

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुरभारती
2.	लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमीप्रकाशन लाजपतनगर दिल्ली
3.	अनुवादचन्द्रिका		हरेकान्त मिश्र	हरेकान्त मिश्र
4.	प्रौढ़मनोरमा	भट्टोजि दीक्षित	द्वारिकाप्रसाद द्विवेदी	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
5.	अनुवाद चन्द्रिका	श्री कपिल द्विवेदी	कपिल द्विवेदी	
6.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुरभारती

1.7 उपयोगी पुस्तकें

क्रम सं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुरभारती।
2.	लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमीप्रकाशन लाजपतनगर दिल्ली

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1- रमा शब्द के रूपों को दर्शाते हुए वाक्य में प्रयोग करें।
2. राजा शब्द का रूप लिखते हुए उदाहरण देकर वाक्य में प्रयोग बनायें।

इकाई 2. धातुरूप परिचय : सामान्य नियम

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 धातु स्वरूप एवं परिचय
  2.3.1 लट्लकार
  2.3.2 लिट् लकार
  2.3.3 लुट् लकार
  2.3.4 लृट् लकार
  2.3.5 लोट् लकार
  2.3.6 लङ् लकार
  2.3.7 लिङ् लकार
  2.3.8 आशी र्लिङ् लकार
  2.3.9 लुङ् लकार
  2.3.10 लृङ्लकार
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.8 सहायक सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

संस्कृत व्याकरण:पत्रलेखन एवं निबन्ध से सम्बन्धित द्वितीय खण्ड की यह द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने शब्द रूपों के विषय में अध्ययन किया। इस इकाई में हम धातु रूपों के बारे में अध्ययन करेंगे।

व्याकरणशास्त्र के महत्त्व को जानते हुए व्याकरण शास्त्र के धातुओं का वाक्य में प्रयोग किया गया है। प्रत्येक वाक्य में क्रिया का मुख्य स्थान होता है। क्रिया के बिना कोई वाक्य पूरा नहीं होता है। सभी पदों का मूल धातु ही होती है। परन्तु सम्भाषण में मूलधातुओं का प्रयोग नहीं किया जा सकता अपितु सम्भाषण के लिए मूलधातुओं से निर्मित पदों का प्रयोग होता है।

अतः धातुओं का विस्तृत ज्ञान हम इस अध्याय में प्राप्त करेंगे। व्याकरणशास्त्र के प्रणेताओं ने बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से धातु रूप के बारे में चर्चा की है, कि धातु रूप क्यों पढ़ा लिखा जाता है, तथा धातु रूप की रचना क्यों होती है, प्रस्तुत इकाई में विस्तार से उक्त विषय की चर्चा की गयी है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- धातुरूप का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- लकार क्या है , इसकी विशेषता क्या है, इस विषय को बता सकेंगे।
- वाक्य निर्माण की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- विभक्ति क्या है, इसकी विशेषता क्या है इसे बता सकेंगे।
- वर्तमान काल क्या है, इसकी विशेषता बता सकेंगे।
- भूत काल क्या है , इसकी विशेषता बता सकेंगे।
- भविष्य काल क्या है,इसकी विशेषता बता सकेंगे।

2.3 धातु स्वरूप एवं परिचय

क्रिया के मूल रूप को धातु कहते है। दूसरे शब्दों में – धातु क्रियापद के उस अंश को कहते है, जो किसी क्रिया प्रायः सभी रूपों में पाया जाता है। तात्पर्य यह कि जिन मूल अक्षरों से क्रियाएँ बनती है, उन्हें धातु कहते है। पठ्, नम्, खाद्, लिख् आदि।

सभी पदों का मूल ही धातु होती है, यथा – पाठक पाठ को पढ़ता है। इन तीनों ही पदों में 'पठ्' धातु है।) धातुओं से कालादि के भेद से दस प्रकार के लकार (लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्लृङ् च) होते हैं। सम्भाषण के लिए ये सभी लकार आवश्यक हैं। यहाँ हम उक्त लकारों के विषय में पढेंगे।

अब सर्वप्रथम काल के बारे में जानना चाहिए। काल तीन प्रकार के होते है। भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों में से वर्तमान काल का वर्णन हो रहा है।

2.3.1 लट्लकार

वर्तमाने लट् 3/2/123।। वर्तमान क्रिया वृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्।

वर्तमान काल की क्रिया के वाचक धातु से लट् लकार होता है। वर्तमान काल किसे कहते हैं ? जिस प्रथम क्षण से आरम्भ होकर कोई कार्य जिस अन्तिम क्षण में समाप्त होता है, इस काल का वर्तमान काल कहते हैं यथा- राम गांव जाता है (रामः ग्रामं गच्छति) राम ग्राम चलना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु जबतक पहुँच नहीं जाता है चाहे एक दिन में पहुँचे या एक महीना में , उस समग्र काल को वर्तमान काल कहते है।

पठ् धातु के लट् लकार में रूप

पुरुषाः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथम पुरुष	सः/ सा पठति (वह पढ़ता है / वह पढ़ रहा है अथवा वह पढ़ती है/ वह पढ़ रही है	तौ/ ते पठतः (वे दोनों पढ़ते है/वे दोनों पढ़ रहे हैं अथवा वे दोनों पढ़ती हैं/वे दोनों पढ़ रही हैं)	ते/ ताः पठन्ति (वे सब पढ़ते हैं/वे सब पढ़ रहे हैं अथवा वे सब पढ़ती हैं/वे सब पढ़ रही हैं)
मध्यमः पुरुषः	त्वं पठसि (तुम पढ़ते हो/ तुम पढ़ रहे हो अथवा तुम पढ़ती हो/ तुम पढ़ रही हो)	युवां पठथः (तुम दोनों पढ़ते हो/तुम दोनों पढ़ रहे हो अथवा तुम दोनों पढ़ती हो/ तुम दोनों पढ़ रही हो)	यूयं पठथ (तुम सब पढ़ते हो/ तुम सब पढ़ रहे हो अथवा तुम सब पढ़ती हो/ तुम सब पढ़ रही हो)
उत्तमः पुरुषः	अहं पठामि (मैं पढ़ता हूँ / मैं पढ़ रहा हूँ अथवा मैं पढ़ती हूँ / मैं पढ़ रही हूँ)	आवां पठावः (हम दोनों पढ़ते हैं / हम दोनों पढ़ रहे हैं अथवा हम दोनों पढ़ती हैं/ हम दोनों पढ़ रही हैं)	वयं पठामः (हम सब पढ़ते हैं/ हम सब पढ़ रहे हैं अथवा हम सब पढ़ती हैं/ हम सब पढ़ रही हैं)

इसी प्रकार भू धातु , वर्तमान काल का रूप भी चलेंगे।

भू सत्तायाम् (होना)

पुरूष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरूष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरूष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरूष	भवामि	भवावः	भवामः

अस् भवि होना अर्थ में प्रयोग होता है।

पुरूष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरूष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यमपुरूष	असि	स्थः	स्थ
उत्तमपुरूष	अस्मि	स्वः	स्मः

डुकृञ् (कृ) धातु

पुरूष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	करोति	कुरूतः	कुर्वन्ति
मध्यम पुरूष	करोसि	कुरूतः	करूथ
उत्तम पुरूष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

अनुवाद बनाने के लिए सबसे पहले पुरूष का ज्ञान किया जाता है ये वाक्य प्रथम पुरूष का है कि मध्यम पुरूष या उत्तम पुरूष का है।

प्रथमपुरूष—

जहाँ पर वह, वे दोनों, वे लोग का प्रयोग हुआ हो वहाँ पर प्रथम पुरूष का प्रयोग किया जाता है। यदि कर्ता एकवचन है तो क्रिया एकवचन या कर्ता बहुवचन है तो क्रिया भी बहुवचन रहेगा। **उदाहरण- सः पुस्तकं पठति** यहाँ पर कर्ता "स"? (वह) है। क्रिया पढ़ना है। कर्म पुस्तक है। अतः कर्ता एक वचन है इस लिए क्रिया एकवचन का प्रयोग किया गया है।

मूलधातु	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
लिख् = लिखना	बालः लिखति	बालौ लिखतः	बालाः लिखन्ति
नृत् = नाचना	सा नृत्यति	ते नृत्यतः	ताः नृत्यन्ति
क्रीड् = खेलना	बालिका क्रीडति	बालिके क्रीडतः	बालिकाः क्रीडन्ति
स्मृ = स्मरण करना	माता स्मरति	मातरौ स्मरतः	मातरः स्मरन्ति
भ्रम् = भ्रमण करना	पिता भ्रमति	पितरौ भ्रमतः	पितरः भ्रमन्ति
दा = देना	विक्रेता यच्छति	विक्रेतारौ यच्छतः	विक्रेतारः यच्छन्ति
वद् = बोलना	भवान् वदति	भवन्तौ वदतः	भवन्तः वदन्ति
पा = पीना	भवती पिबति	भवत्यौ पिबतः	भवत्यः पिबन्ति

मध्यम पुरूष—

मध्यम पुरूष का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पर तुम, तुम दोनों, तुम लोग का प्रयोग किया गया है। यथा त्वं भवसि (तुम हो रहे हो) यहाँ पर कर्ता 'त्वं' है। और क्रिया भवसि है और वर्तमान काल एकवचन है इस लिए मध्यम पुरूष का प्रयोग वहाँ पर किया जाता है जहाँ हम, हम दोनों, हम लोग का प्रयोग किया गया हो। **उदाहरण**- अहम् अस्मि (मैं हूँ) यहाँ पर कर्ता 'मैं' और क्रिया 'अस्मि (हूं) है। अतः वर्तमान काल के एक वचन का प्रयोग किया गया है।

मूलधातवः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
रक्ष् = रक्षा करना	त्वं रक्षसि	युवां रक्षथः	यूयं रक्षथ
वस् = रहना	त्वं वससि	युवां वसथः	यूयं वसथ
पत् = गिरना	त्वं पतसि	युवां पतथः	यूयं पतथ
स्पृश् = स्पर्श करना	त्वं स्पृशसि	युवां स्पृशथः	यूयं स्पृशथ
तॄ = तैरना	त्वं तरसि	युवां तरथः	यूयं तरथ
नी = लेकर जाना	त्वं नयसि	युवां नयथः	यूयं नयथ

दृश् = देखना	त्वं पश्यसि	युवां पश्यथः	यूयं पश्यथ
कुप् = क्रोध करना	त्वं कुप्यसि	युवां कुप्यथः	यूयं कुप्यथ
चुर् = चुराना	त्वं चोरयसि	युवां चोरयथः	यूयं चोरयथ
श्रु = सुनना	त्वं शृणोषि	युवां शृणुथः	यूयं शृणुथ

उत्तम पुरूष—

उत्तम पुरूष का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पर हम, हम दोनों, हम लोग का प्रयोग किया गया है। यथा अहं भवामि (हम हो रहे है) यहाँ पर कर्ता 'अहम्' है और क्रिया भवामि है और वर्तमान काल एकवचन है इसलिए उत्तम पुरूष का प्रयोग यहाँ पर किया गया है।

मूलधातु	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
हस् हँसना =	अहं हसामि	आवां हसावः	वयं हसामः
गम् जाना =	अहं गच्छामि	आवां गच्छावः	वयं गच्छामः
नम् नमस्कार करना =	अहं नमामि	आवां नमावः	वयं नमामः
खाद् खाना =	अहं खादामि	आवां खादावः	वयं खादामः
मिल् मिलना =	अहं मिलामि	आवां मिलावः	वयं मिलामः
धृ धारण करना =	अहं धरामि	आवां धरावः	वयं धरामः
प्रच्छ् पूछना =	अहं पृच्छामि	आवां पृच्छावः	वयं पृच्छामः
चिन्त् सोचना =	अहं चिन्तयामि	आवां चिन्तयावः	वयं चिन्तयामः
क्षल् धोना =	अहं प्रक्षालयामि	आवां प्रक्षालयावः	वयं प्रक्षालयामः
पूज् पूजा करना=	अहं पूजयामि	आवां पूजयावः	वयं पूजयामः
कृ करना =	अहं करोमि	आवां कुर्वः	वयं कुर्मः
आप् करना =	अहं प्राप्नोमि	आवां प्राप्नुवः	वयं प्राप्नुमः
स्था उठना =	अहम् उत्तिष्ठामि	आवाम् उत्तिष्ठावः	वयम् उत्तिष्ठामः

अभ्यास प्रश्न 1

(1) बहुविकल्पात्मक

1. लकार कितने होते हैं-

अ. दश ब. पाँच स. तीन द. सात

2. पुरूष कितने होते हैं

अ. पाँच ब. तीन स. दो द. एक

3. रामः शेते (राम सोता है) सकर्मक है कि अकर्मक है -

अ. सकर्मक ब. अकर्मक स. दोनों द. दोनों नही

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. हम लोग विद्यालय में होते हैं।
2. वे दोनों कहाँ होते हैं।

3. तुम लोग उन कार्यो को करते हो ।

4. हम लोग उन कार्यो को करते हैं।

5. हम लोग हैं।

2.3.2 लिट् लकार

अब लिट् लकार का प्रयोग कहा किया जाय, इसके लिए सर्वप्रथम लिट् लकार का अर्थ सुत्र के द्वारा प्रतिपादन किया जा रहा है।

परोक्षे लिट् 3 /2 /115 ।। भूताऽनद्यतन परोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्।

अनद्यतन परोक्ष भूत अर्थ में स्थित धातु से लिट् लकार होता है। अद्य भवम् अद्यतनम् जो आज का हो उसे अद्यतन कहते है। न अद्यतनम् अनद्यतनम् आज न होने वाले को अनद्यतन कहते हैं। लिट् लकार का ऐसे में प्रयोग किया जाता है जो आज का न हो। **देवदत्त ने आज प्रातः भोजन किया**- यहाँ भूतकाल तो है पर वह भूतकाल आज का होने से अद्यतन है, अनद्यतन नहीं हैं अतः इसमें लिट् लकार का प्रयोग नहीं होगा। सामान्य बात यह है कि वक्ता से जो परोक्ष (अक्ष्णः परम् इति परोक्षम्) अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों के ज्ञान से दूर हो उसे परोक्ष कहते हैं, फिर चाहे वह अतीत में कभी हुआ हो।

भूतकाल की क्रिया को प्रगट करने के लिए व्याकरणशास्त्र में लङ्, लिट, और लृङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा - हुआ था, रहा था, किया था के लिए। यथा पपाठ (उसने पढ़ा) श्रीकृष्ण: कंसं जघान (श्री कृष्ण ने कंस को मारा)।

यदि भूत काल का सूचक वाक्य में आज का प्रयोग हुआ हो तो लुङ् लकार का प्रयोग होता है, यथा अद्य दशरथः राजा अभूत् (आज दशरथ राजा हुआ)।

परोक्ष भूत काल में (इन्द्रिय से अगोचर होने पर) लिट् लकार का प्रयोग होता है, यथा नारद उवाच (नारद मुनि बोले) किन्तु उत्तम पुरूष में लिट् लकार का प्रयोग नहीं होता है। यथा अहं वनं जगाम (मैं जंगल गया) यह प्रयोग ठिक नहीं है।

भूतकाल में प्रश्न बोधक जहाँ वाक्य होगा, वहाँ पर बोधक कराने के लिए लङ् और लिट् लकार को बोध होता है यथा अभाषत किम् ? जगाम किम ? (गया क्या ?)

किन्तु विप्रकृष्ट भूतकाल में (जो देर से बीत चुका) उसको बोध कराने के लिए लिट् लकार का प्रयोग किया जाता हैं यथा कंस: जघान किम्? (कंस को मारा क्या) लिट् लकार का रूप एवं

वाक्यादि उदाहरण -

भू धातु लिट् लकार-

बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
बभूव	बभूविव	बभूविम

अस् धातु लिट् लकार-

अस् धातु को लिट् या जितने आर्धधातुक लकार हैं उनके स्थान में भू आदेश होता है।

बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
बभूव	बभूविव	बभूविम

डुकृञ् (कृ) धातु लिट् लकार-

चकार	चक्रतुः	चक्रु:
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
चकारचकर-	चकृव	चकृम

वाक्य में प्रयोग

अयोध्यायाः नृपः रामः बभूव। अयोध्या के राजा राम थे।
दशरथस्य चत्वारः पुत्राः बभूवु:। दशरथ के चार पुत्र हुए।
दुष्यन्तः कार्य चकार। दुष्यन्त ने कार्य किया था।
राम: कार्याणि चकार। राम ने कार्यों को किये।
वानराः लंकायां कार्याणि चक्रु:। वानरों ने लंका में कार्यों को किया।
लवकुशौ कार्यं चक्रतु:। लव कुश ने कार्य किया।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातुः लिट् लकारे मध्यम पुरूषस्य एक वचनस्य रूपमस्ति-

अ. बभूविथ ब. बभूवथुः स. बभूव द. बभूविम

2. अस्धातोः लिट् लकारे उत्तमपुरूषस्य एकवचनस्य रूपस्ति-

अ. बभूव ब. बभूविथ स. बभूविव द. बभूविम

3. कृ धातोः प्रथम पुरूषबहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. चकार ब. चक्रतु: स. चकृव द. चक्रुः

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. सीता के पति राम थे।
2. राम ने लंका में अनेक कार्य किये।
3. रावण ने सीता को चुराया।
4. राम ने रावण को मारा।
5. शकुन्तला के पुत्र भरत हुए।

2.3.3 लुट् लकार

अनद्यतने लुट् 3/3/15 ।। भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात्।

अनद्यतन भविष्यति क्रिया में वर्तमान धातु से लुट्लकार होता है। हिन्दी में जहाँ पर गा, गे, गी का प्रयोग होता है वहाँ पर भविष्यत् काल में लृट् लकार का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि लुट् तथा लृट् इन दोनों ही लकारों से भविष्यत् काल का बोध होता है। फिर भी इन दोनों लकारों में भेद है कि दूरवर्ती भविष्यत् के बोध के लिए लुट् लकार का प्रयोग होता है और समीप वर्ती भविष्य के लृट्लकार का प्रयोग होता है।

रूप एवं वाक्यादि उदाहरण-

भू धातु लुट्लकार

भविता	भवितारौ	भवितारः
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ

भवितामि	भवितस्वः	भवितास्मः

अस् धातु के रूप को लृट् लकार में भू आदेश होता है।

भविता	भवितारौ	भवितारः
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थः
भवितामि	भवितस्वः	भवितास्मः

डुकृञ् (कृ) धातु

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
कर्तासि	कर्तास्थः	कर्तास्थ
कर्तास्मि	कर्तास्वः	कर्तास्मः

रमेशः स्व विद्यालये भविता। रमेश कल विद्यालय में होगा।
युवां स्व विद्यालये भवितास्थः। तुम दोनों कल विद्यालय होंगे
ते स्व विद्यालये भवितारः। वे लोग कल विद्यालय में होगें।
यूयं स्व कार्य कर्तास्थ। तुम लोग कल कार्य करोगें।
आवां स्व कर्तास्वः। हम लोग घर में कार्य करेंगे।
युवां कदा कर्तास्व:। हम दोनों कब करोगे।
युवां कदा कर्तास्थः। तुम दोनों कब करोगे।
यूयं अग्रिमे मासे भवितास्थ। तुम लोग अगले महीने में होगें।

अभ्यास प्रश्न 3

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः प्रथम पुरूष एक वचने रूपमस्ति-

अ. भविता ब. भवितारौ स. भवतिस्म द. भवितारः

2. अस् धातोः प्रथम पुरूष एकवचने रूपमस्ति

अ. भवितास्मि ब. भतितास्वः स. भविता द. भवितास्मः

3. कृ धातोः उत्तमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति-

अ. कर्ता ब. कर्तारौ स. कर्तास्मः द. कर्तारः

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये।

1. दो दिन बाद मैं घर के कार्यों को करूगा।
2. पाच छः दिनों मैं वहा जऊगाँ।
3. तुम लोग कल घर जाओगे।
4. तुम दोनों परसों विद्यालय में होगे।
5. वे लोग कल में होगे।
6. तुम लोग कल घर के कार्य करोगे।
7. कल दो बालक घर के कार्य करोगे।

2.3.4 लृट् लकार

लृट् शेषे च ।। भविष्यतदर्थाद् धातो र्लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां च।

भविष्यत् अर्थ में धातु से लृट् लकार का प्रयोग होता है। क्रियार्थ चाहे विद्यमान हो या न हो। लृटलकार में बताया गया है कि जहाँ पर गा,गे,गी, रहेगा वहाँ पर लृट् लकार किन्तु जहाँ पर समीपवर्ती भविष्य रहेगा, वहाँ पर लृट् लकार का प्रयोग किया जा रहा है-

भू धातु

भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः
अस् धातु भविष्यति	 भविष्यतः	 भविष्यन्ति
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यामः
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यथ

डुकृञ् (कृ) धातु

करिष्यति	**करिष्यतः**	**करिष्यन्ति**
करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

तव मातु: दौ पुत्रौ भविष्यतः। (तुम्हारे माता को दो पुत्र होंगे)

ते भविष्यन्ति। वे लोग होगें।

त्वं भविष्यसि। तुम होगे।

युवां वने भविष्यथ। (तुम दोनों विद्यालय में जाकर होंगे)

यूयं वने भविष्यथ। तुम लोग वन में होंगे।

अहं मन्दिरे भविष्यामि। मैं मन्दिर में होऊगाँ।

आवां चिकित्सालये भविष्यावः। हम दोनों चिकित्सालय में होगें।

वयं सर्वे गृहे भविष्यामः। हम सभी लोग घर में होगें।

ते धर्मस्य निर्माणं करिष्यन्ति। वे लोग धर्म का निर्माण करेंगे।

तौ ग्रन्थस्य निर्माणं करिष्यतः। वे दोनों ग्रन्थ का निर्माण करेंगे।

ते सर्वे विद्यालयस्य कार्य करिष्यन्ति। वे सभी विद्यालय का कार्य करेंगे।

त्वं गृह गमिष्यसि। तु घर जाओगे।

युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथः तुम दोनों विद्यालय का कार्य करोगे।

युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथः। तुम लोग गृह कार्य करोगे।

अहं विद्यालयस्य कार्य करिष्यामि। मै विद्यालय का कार्य करूगा।

आवां गृहस्य कार्यं करिष्यावः हम दोनों गृह कार्य करेंगे।

वयं विद्यालयस्य कार्याणि करिष्यामः। हम सभी विद्यालय के कार्यों को करेंगे।

अभ्यास प्रश्न. 4

1. बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः लृट्लकारस्य प्रथमपुरूष बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. भविष्यति ब. भविष्यन्ति स. भविष्यतः द. भविष्यामि

2. अस् धातोः मध्यम पुरूष एकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. भविष्यसि ब. भविष्यामि स. भविष्यतः द. भविष्यन्ति

3. कृ धातोः लृट् लकारस्य उत्तमपुरूष बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. करिष्यामि ब. करिष्यामः स. करिष्यन्ति द. करिष्यसि

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. तुम लोग घर में होगे।
2. तुम विद्यालय में होगे।
3. तुम घर का कार्य करोगे।
4. तुम दोनों विद्यालय का कार्य करोगे।
5. हम सभी पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ेगें।
6. रमा कार्य नहीं करेगी।
7. लड़कियॉ घर का कार्य करेगी।
8. वे दोनों बालिका वन में जायेगीं।
9. हम दोनों घर में भोजन करेंगे।

2.3.5 लोट्लकार

लोट् च 3/3/162

विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट् स्यात् । विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार होता है। अनुमति, निमन्त्रण, आमन्त्रण , अनुरोध, जिज्ञासा और सामर्थ्य अर्थ में लोट्लकार का प्रयोग होता है , यथा- अनुमति अर्थ में - अद्य भवान् अत्र पाठयतु। (आज आप यहाँ पढ़ाइये।)

आमन्त्रण अर्थ में- विद्यालयेऽस्मिन यथेच्छ पठ। (इस विद्यालय में इच्छानुसार पढ़ सकते हो) माम् अस्याः विपदः रक्षतु भवान् (आप इस विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिए) आशीर्वाद अर्थ में मध्यम तथा अन्य पुरूष में लोट्लकार का प्रयोग किया जाता है, यथा - गच्छ विजयी भव (जाओ विजय प्राप्त करो), पन्थानः सन्तु ते शिवा (तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी होवे) 'प्रश्न और सामर्थ्यों 'आदि का बोध होने पर उत्तम पुरूष में लोट्लकार का प्रयोग होता है, यथा- किं करवाणि ते प्रियं देवि। देवि तेरे लिए मैं क्या करूँ। अहं सिन्धुमपि शोषयाणि। मैं समुद्र भी सुखा सकता हूँ।

भू धातु लोट् लकार

भवतु	भवताम्	भवन्तु
भव	भवतम्	भवत्
भवानि	भवाव	भवाम

अस् धातु लोट् लकार

अस्तु	स्ताम्	सन्तु
एधि	स्तम्	स्त
आसानि	आसाव	आसाम

डुकृञ् (कृ) धातु लोट् लकार

करोतु	करूताम्	कुर्वन्तु

कुरू	कुरूतम्	करूत
करवाणि	करवाव	करवाम

ते श्रमशीलाः भवन्तु। वे लोग श्रमशील होंवे।
मेघाः जलदाः भवन्तु। मेघजल देने वाले होंवे।
वयं सत्यवादिन: भवाम। हम लोग सत्यवादी होवें।
सः अस्तु। वह है।
तौ स्ताम्। तुम दोनों हो
मंगलानि सन्तु। मंगल होंवे।
यूयं विद्यालये स्त। तुम सब विद्यालय में होवे।
सः विद्यालयस्य कार्यं करोतु। वह विद्यालय का कार्य करे।
महेशः विद्यालये पाठं स्मरणं करोतु। महेश विद्यालय में पाठस्मरण करे।
तौ विद्यालये ग्रन्थस्य निर्माणं कुरूताम्। वे दोनों विद्यालय में ग्रन्थ का निर्माण करें।
अहं विद्यालयं गत्वा किं करवाणि। मै विद्यालय में जाकर क्या करूँ। वयं गृहं गत्वा किं करवाम। हम लोग घर में जाकर क्या करें। वयं रामायणष्य पाठं करवाम। हम लोग रामायण का पाठ करें

अभ्यास प्रश्न. 5

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः
1. भू धातुः लोट्लकारस्य मध्यमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति
अ. भवतु ब. भवताम् स. भवत द. भवन्तु
2. अस् धातो लोट्लकारस्य प्रथम पुरूष बहुवचने रूपमस्ति-
अ. अस्तु ब. स्ताम् स. सन्तु द. एधि
3 कृ धातोः उत्तमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति-
अ. करोतु ब. करवाणि स. करवाव द. करवाम
(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये।
1. वे लड़के अध्ययन शील होवे।
2. उन छात्रों को मंगल होवें।
3. उन लोगों का कल्याण हो।
4. वे सब घर का कार्य करें।
5. वे दोनों पाठ याद करें।
6. वे लोग ग्रन्थ का निर्माण करें।
7. मैं वहाँ जाकर क्या करूँ।
8. हम लोग वहा जाकर कार्य करें।

2.3.6 लङ् लकार

अनद्यतने लङ् 3/2/111।। अनद्यतन भूतार्थ वृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अनद्यतन भूतकाल में धातु से लङ् लकार का प्रयोग होता है। भूतकाल का सूचक वाक्य में यदि ह्य: (विता हुआ) का प्रयोग हो तो लङ् लकार का प्रयोग होता है। **यथा**- ह्य: वृष्टिरभवत्(कल वर्षा हुई थी)।

रूप एवं वाक्यादि विचारः-

भू धातु लङ् लकार

अभवत्	अभवताम्	अभवन्
अभवः	अभवतम्	अभवत
अभवम्	अभवाव	अभवाम

अस् धातु लड् लङ् लकार-

आसीत्	आस्ताम	आसन्
आसीः	आस्तम्	आस्त
आसम्	आस्व	आस्म

डुकृञ् (कृ) धातु लङ् लकार

अकरोत्	अकरूताम्	अकुर्वन्
अकरो:	अकुरूतम्	अकरूत
अकरवम्	अकरवाव	अकरवाम

रमेशः वैज्ञानिकम् अभवत्। रमेश वैज्ञानिक हुआ।
तौ योग्यम् अभवताम्। वे दोनों योग्य हुए।
ते बालिकाः विदुषी अभवन्। वे लड़किया विदुषी हुई।
त्वं कुत्र अभवः? तुम कहाँ हुए ?
यूयम् अध्यापकाः अभवत। तुम लोग अध्यापक हुए।
आवां छात्रौः अभवाम्। हम दोनों छात्र हुए।
वयं गुरवः अभवाम्। हम लोग गुरू हुए।
महाराणाप्रतापः उदय सिंहस्य पुत्र आसीत्
महाराणाप्रतापः उदय सिंह के पुत्र थे।
महाराणाप्रतापः निर्भिकः दयालुश्च आसीत्।
महाराणाप्रताप निर्भिक और दयालु थे।
तौ कुत्र आस्ताम्। वे दोनों कहाँ थे।
तौ गृहे आस्ताम्। वे दोनों घर में थे।
ते भ्रमणार्थं कुत्र आसन ? वे लोग भ्रमण करने के लिए कहाँ थे
त्वं पठनार्थं कुत्र आसी ? तुम पढ़ने के लिए कहाँ था?
वयं वने मन्दिरस्य समीपे आस्म। हम लोग वन में मन्दिर के पास थे।
महाराणाप्रताप: भारतस्य स्वतन्त्रतायै महान्त प्रयत्नम् अकरोत्
महाराणाप्रताप भारत के स्वतन्त्रता के लिए महान प्रयत्न किये।
मुगल शासक: देहल्यां शाससनम् अकरोत्।
मुगल शासक देहली पर शासन किया।
इमां प्रतिज्ञामकरोत। इस प्रतिज्ञा को किया।
ते जनाः किम् अकुर्वन्। वे लोग क्या किये।
यूयं देहल्यां शासनम् अकुरूत। तुम लोग देहली पर शासन किये।

वयं तानि कार्याणि अकुर्म। हम लोग इन कार्यों को किये।

अभ्यास प्रश्न. 6

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः लङ् लकारस्य प्रथम पुरूष द्विवचनस्य रूपमस्ति

अ. अभवत् ब. अभवताम् स. अभवन् द. अभवः

2. अस् धातोः लङ् लकारस्य उत्तमपुरूषद्विवचनस्य रूपमस्ति-

अ. आसीत् ब. आस्व स. आस्तम् द. आस्म

3. कृ धातोः लङ् लकारस्य मध्यमपुरूष एकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. अकरोत् ब. अकुर्वन् स. अकरोः द. अकुरूत

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. श्याम राजा हुआ।
2. वे लोग योग्य हुए।
3. तुम लोग कार्य करने में दक्ष हुए।
4. हम लोग कुशल अध्यापक हुए।
5. महाराणाप्रताप भारत की रक्षा के लिए अनेक प्रयास किये।
6. दिल्ली के मुगल शासकों के साथ युद्ध किये।
7. वे लोग कहाँ पर थे।

2.3.7 लिङ् लकार

विधिनिमन्त्रणाऽमन्त्रणाऽधीष्ट सम्प्रश्न प्रार्थनेषु लिङ् 3/3/161।।

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात्।

विधि निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट सम्प्रश्न और प्रार्थना इन अर्थो में धातु से परे लिङ् लकार होता है।

1. विधि - अपने से छोटे अर्थात् नौकर या सेवक आदि को आज्ञा या हुक्म देना विधि कहलाता है। कोई अपने नौकर से कहे-भवान् जलम् आनयेत् (आप जल लायें), वस्त्राणि भवान् प्रक्षालयेत् (आप वस्त्रों को धो दें) आदि विधि कहलाता है।

2. निमन्त्रण - अवश्य कर्तव्य प्रेरणा को "नियन्त्रण' कहते है। यथा इह भवान् भुंजीत्- (आप यहां खायें)

3.आमन्त्रण ऐसी प्रार्थना का नाम आमन्त्रण होता है जिसमें कामचारिता होती है। अर्थात् करना न करना अच्छा पर निर्भर होता है, इहासीत् भवान् (आप यहा बैठें) बैठना, न बैठना इच्छा पर निर्भर करता है। ऐसे आशीर्वाद अर्थ जहा पर होगा वहाँ पर लिङ् और लोट् दोनों लकारों का प्रयोग किया जाता है।

4. अधीष्ट-अधीष्टं नाम सत्कार पूर्वको व्यापार। किसी बड़े गुरू आदि को सत्कार पूर्वक किसी कार्य की करने की प्रेरणा देना अधीष्ट कहलाता है। यथा पुत्रमध्यापयेत् भावन् (आप मेरे पुत्र को पढ़ावे)।

सम्प्रश्न - किसी बड़े के समीप किसी वात का सम्प्रसारण निश्चय करना 'सम्प्रश्न' कहलाता है। किसी विषय से पूंछे - भे किं वेदमधीयीय उततर्कम् ? (निश्चयार्थ) पूछा गया है।

प्रार्थना- मांगने का नाम प्रार्थना है। यथा- भो भोजनं लभेय (मैं भौजन पाना चाहता हूँ)

सम्भावना अर्थ जहा पर होगा, वहाँ पर भी लिङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा-सम्भाव्यतेऽद्य पिताआगच्छेत् (शायद आज पिता जी आ जायॅ) कदाचिदाचार्यः श्वः वाराणसी गच्छेत् (शायद कल गुरू जी वाराणसी जावें)

रूप एवं वाक्यादि विचार

भू धातु

भवेत	भवेताम्	भवेयुः
भवेः	भवेतम्	भवेत
भवेयम्	भवेव	भवेम

अस् धातु लिङ्लकार

स्यात्	स्याताम्	स्युः
स्याः	सयातम्	स्यात्
स्याम्	स्याव	स्याम

डुकृञ् (कृ) धातु लिङ् लकार

कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
कर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

1. तं रामायणं पठनार्थम् अभ्यस्तं भवेत्
2. तौ ग्रन्थाऽध्ययनात् कुशलं भवेताम्
3. तान् पाठाभ्यासार्थं कुशलं भवेयु:
4. युस्मान बालिकान् पाठ् पठनार्थं दक्षः भवेत
5. अस्मान्नपि पाठ पठनार्थं कुशलं भवेम
6. तौ गृहे स्याताम्
7. तस्मिन् विद्यालये पुस्तकानि स्युः
8. ते पुस्तकानि अस्मान् स्याम
9. तानि कार्याणि तान् जनान् कुर्युः
10. युष्मान् तेषां ग्रन्थानाम् अध्ययनं कुर्यात
11. अस्मान् ग्रन्थानां निर्माणं कुर्याम

हिन्दी-

1. उस समायण को पढ़ने के लिए अभ्यस्त होना चाहिए।
2. तुम दोनों को ग्रन्थाध्ययन के लिए कुशल होना चाहिए।
3. उन लोगों को पाठ के अभ्यास के लिए कुशल होना चाहिए।
4. तुम बालिकाओं को पाठ पढ़ने के लिए दक्ष होना चाहिए।
5. हम लोगों को भी पाठ पढ़ने के लिए कुशल होना चाहिए।
6. तुम दोनों को घर में होना चाहिए।
7. विद्यालय में पुस्तकें होनी चाहिए।

8. वे पुस्तकें हम लोगों की होनी चाहिए।
9. उन लोगों को उन ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।
10. हम लोगों को ग्रन्थों का निर्माण करना चाहिए।
11. हम लोगों को ग्रन्थों का निर्माण करना चाहिए।

2.3.8 आशी र्लिङ् लकार

आशिषि लिङ् लोटौ 3/3/163।।

आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं।

उपदेश- उपदेश में भी आशीर्लिङ् का प्रयोग किया जाता है। सत्यं बूयात् प्रिय बूयात् (सत्य विचारे बोले) सहसा विदधीत न क्रियाम् (विना विचारे कार्य न करें)

रूप एवं वाक्यादि विचार:-

भू धातु आ0 लिङ् लकार -

भूयात्	भूयास्ताम्	भुयासुः
भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

अस् धातु आ0 लिङ् लकार यहाँ पर आर्धधातुक होने से अस् के स्थान में भू आदेश होता है।

भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

डुकृञ् ´ कृ धातु आ0 लिङ् लकार -

क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
क्रियाः	क्रियास्तम्	क्रियास्त
क्रियासम्	क्रियास्व	क्रियास्म

वाक्यादि उदाहरण-

ते शतं चिरायुः भूयासुः (वे लोग सौ वर्ष तक चिरायु होवे)।

तव पुत्रो भूयात्	तुम्हारा पुत्र होवे ।
त्वं चिरायुः भूयाः	तुम चिरायु हो।
वयं भूयास्म सर्वदा	हम लोग भी सर्वदा हो।
तौ गृहे भूयास्ताम्	वे दोनों घर में रहे।
ते कार्यं क्रियासुः	वे लोग कार्य करते रहे।

ईश्वरः करोतु वयं कार्य क्रियास्म। ईश्वर करे हम लोग कार्य करते रहें।

2.3.9 लुङ् लकार

लुङ् 3 / 2 / 110 ।।

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्

भूत काल में धातु से लुङ् लकार होता है।

कल यदि भूतकाल का सूचक वाक्य में आज का प्रयोग हो तो लुङ् लकार का प्रयोग होता हैं। यथा अद्य रामो राजा अभूत् (आज राम राजा हुआ)।

भू धातु लुङ् लकार -

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
अभूः	अभूतम्	अभूत
अभूवम्	अभूव	अभू

अस् धातु का रूप भू के समान होगा।

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
अभूः	अभूतम्	अभूत
अभूवम्	अभूव	अभूम
डुकृञ् ´ कृ धातु लुङ्लकार		
अकार्षित्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
अकर्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
अकार्षीः	अकार्ष्व	अकार्ष्म

रूप एवं वाक्यादि विचार:-

1. ते अद्य परीक्षायामुत्तीर्णम् अभूवन्।
2.यूयं प्रतियोगितायाम् उत्तीर्णम् अभूत।
3. वयम् अद्य कार्यकरणार्थं कुशलम् अभूम्।
4. ते अद्य गृहे अभूवन्।
5. यूयं कार्यम् अद्य अकार्ष्ट।
6. वयम् अद्य कार्यकरणार्थं प्रयासम् अकार्ष्म।
1. वे लोग आज परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।
2. तुम लोग आज प्रतियोगिता में सफल हुए।
3. हम लोग आज कार्य करने के लिए कुशल हुए।
4. वे लोग आज घर में रहें।
5. तुम लोग आज कार्य को किये।
6. हम लोग आज कार्य करने के लिए प्रयास किये।

2.3.10 लृङ्लकार

लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ 3/3/139।।

हेतु- हेतु मद् भावादि लृङ् लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्। क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्।

हेतु-हेतु मद्भाव आदि जो लिङ् के निमित्त कहे गये है उनमें यदि भविष्यत् कालिक क्रिया कहीं जाय तो धातु से परे लृङ् लकार होता है। क्रिया की अनिष्यत्ति (असिद्धि) गम्यमान हो तो। "यदि ऐसा होता तो ऐसा हो तो" इस प्रकार के भविष्यत् के अर्थ में धातु से लृङ् लकार होता हैं यथा-सुवृष्टि श्चेद् अभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत् (यदि अच्छी वर्षा होती तो अच्छा अन्न होता)।

रूप एवं वाक्यादि विचार:-

भू धातु

अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्

अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्याम
अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

अस् धातु यहाँ भी अस् के स्थान में भू आदेश होता है।

अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभष्यन्
अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

डुकृञ् ´ (कृ) धातु

अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	करिष्यत
अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

संस्कृत-

1. पश्चिमेन चेद् अयास्यत् न वाहनं पर्याभविष्यत् ।
2. यदि बालकाः अभविष्यन्-तर्हि अपाठयिष्यम् ।
3. यदि भोजनम् अभविष्यत् तर्हि सः अगमिष्यत् ।
4. यदि अगमिष्यत् तर्हि अभविष्यत् ।
5. यदि ते विद्यालयम् अगयिष्यन् तर्हि ते अभविष्यन् ।
6. यदि वयं तत्र अगमिष्यम तर्हि कार्याणि अभविष्याम ।
7. वयं अगमिष्याम तर्हि कार्याणि अकरिष्याम ।

हिन्दी -

1. यदि पश्चिम मार्ग से जायेगा तो वाहन नहीं उलटेगा ।
2. यदि भोजन होगा, तो वह जायेगा ।
3. यदि जायेगा तो होगा ।
4. यदि वे लोग विद्यालय में जायेंग तो वे लोग होंगे ।
5. यदि हम लोग जायेंगे तो कार्य करेंगे ।

2.4 सारांश

लकार दश प्रकार के माने गये हैं 1. लट् 2. लिट् 3. लृट् 4. लृट 5. लेट् 6. लोट् 7. लङ् 8. लिङ् 9. लुङ् 10 लृङ् इन दश लकारों में से पाचवाँ जो लकार 'लेट्' लकार है उनका प्रयोग वेद में होता है । आगे नव लकारों का प्रयोग किया जायेगा, परन्तु लिङ् लकार के दो (विधिलि और आशीर्लिङ्) होने से पुनः लोक में भी दशलकार माने गये हैं । अब इन लकारों का प्रयोग कहाँ पर किया जाय, इनका वर्णन सूत्र के माध्यम से किया जा रहा है -

लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः 3/4/69।। लकाराः सकर्मकेभ्य कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ।

लकार सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता अर्थ में होते हैं । इन दोनों वाक्यों का भाव यह है कि लकार के तीन अर्थ होते है। कर्ता, कर्म, भाव। यदि धातु सकर्मक हो तो लकारों का प्रयोग कर्ता और कर्म में होता है और यदि अकर्मक होतो भाव और कर्ता में लकारों का प्रयोग किया जाता है । सकर्मक- अकर्मक जिस धातु में कर्म

होता है। उस धातु को सकर्मक कहते हैं और जिस धातु में कर्म नहीं होता हैं। उस धातु को अकर्म कहते है और जिस धातु में कर्म नहीं होता है उस धातु को अकर्मक कहते है। यथा- रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक को पढ़ता है) यहाँ पर कर्ता राम क्रिया पढ़ना और कर्म पुस्तक है, पठ् धातु का कर्म पुस्तक है। इस लिए पठ् धातु को सकर्मक कहते है। और जहाँ कर्म नहीं होता है। उसे अकर्मक कहते है। रामः शेते (राम सोता है।) यहाँ पर शयनानुकूल जो व्यापार हो रहा है वह राम में हो रहा है। इस लिए यहा कोई कर्म नहीं हैं अतः शी धातु अकर्मक है। सकर्मक से लकार कर्ता और कर्म में होता हैं जिसे कर्तृवाच्य या कर्मवाच्य कहा जाता है। और अकर्मक से लकार कर्ता और भाव में होता है। इन तीनों (कर्तृवाच्य कर्मवाच्य भाववाच्य) का विस्तृत वर्णन आगे वाच्य प्रकरण में दिया गया है। इन दशो लकारों का वर्णन सामान्य रूप से किया गया है।

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1 –

1 . अ

2. ब

3. ब

संस्कृत अनुवाद - 1.वयं विद्यालये भवाम:

2. तौ कुत्र भवत:।

3. यूयं तानि कार्याणि कुरुथ

4. वयं तानि कार्याणि कुर्म:

5. वयं स्म:

अभ्यास 2 –

1. अ

2. अ

3. द

संस्कृत अनुवाद -

1. सीताया: पति राम: आसीत्।

2. राम: लंकायाम् अनेकानि कार्याणि चकार।

3. रावण: सीतां चोरयति

4. राम: रावणं जघान

5. शकुन्तलाया: पुत्र: भरत: बभूव

अभ्यास 3 –

1 . अ

2. स

3 .स

संस्कृत अनुवाद -

1.दिनद्वयं परमहम् गृहस्य कार्याणि करिष्यामि।

3. यूयं स्व गृहं गमिष्यथ।

4. युवां परश्व:विद्यालये बभुवथु:

6. यूयं स्व गृहस्य कार्यं करिष्यथ

7. श्व: बालकौ गृहस्य कार्यं करिष्यत

अभ्यास 4 –

1 .ब

2. अ

3 . ब

संस्कृत अनुवाद -

1. यूयं गृहे भविष्यथ।

2.त्वं विद्यालये भवसि।

3. त्वं गृहस्य कार्यं करिष्यथ

4. युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथ:।

5. वयं सर्वे विद्यालये पुस्तकं पठिष्याम:

6. रमा कार्यं न करिष्यति।

7. बालिका: गृहस्य कार्यं न करिष्यन्ति

8. ते बालिके वनं गमिष्यत:

9.आवां गृहे भोजनं करिष्याव:

अभ्यास 5 - 1 . स 2. स 3 . द

संस्कृत अनुवाद -

1. ते बालका: अध्ययनशीला: भवन्तु ।

2. तेभ्य: छात्रेभ्य: मंगलं भवतु ।

3. तेभ्य: कल्याणं भूयात् ।

4. ते गृहस्य कार्यं कुर्वन्तु।

5. वे दोनों पाठ याद करें। तौ पाठं स्मरणं कुर्यात् ।

6. वे लोग ग्रन्थ का निर्माण करें । ते ग्रन्थस्य निर्माणं कुर्यात् ।

7. मैं वहाँ जाकर क्या करूँ । अहं तत्र गत्वा किं करवाणि

8. हम लोग वहा जाकर कार्य करें । वयं तत्र गत्वा कार्यं करवाम

अभ्यास 6 - 1 . ब 2. ब 3 .स

संस्कृत अनुवाद -

1.श्याम: नृप: बभूव ।

2. ते योग्या बभूवु:।

3. यूयं कार्यकरणार्थं कुशलं बभूव।

4. वयं कुशलाध्यापका: बभूविम

5. महाराणाप्रताप: भारतस्य रक्षायै अनेके प्रयास: कृत:।

6. देहल्या: मुगलशासकै: सह युद्धम् अकरोत्

7. ते कुत्र आसीत्

2 .6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर भारती
2	लघुसिद्धान्तकौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमीप्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली
3.	परम लघु मंजूषा	नागेश भट्ट	भीमसेन शास्त्री	चौखम्भा सुर भारती
4.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	कौण्ड भट्ट	चन्द्रिकाप्रसाद द्विवेदी	प्रकाशन वाराणसी

2 .7 उपयोगी पुस्तकें

1.	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर भारती
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेनशास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये
2. आशी र्लिङ् लकार का वर्णन कीजिए

इकाई.3 लघु गद्याशों का भाषानुवाद (संस्कृत से हिन्दी व हिन्दी से संस्कृत)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मूर्ख पुत्रों की कथा
3.4 गौरैया पक्षी की कथा
3.5 धर्मबुद्वि और पापबुद्धि की कथा
3.6 बगुला और सर्प की कथा
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 उपयोगी पुस्तकें
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत व्याकरण-पत्रलेखन एवं निबन्ध से सम्बन्धित द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई है। इस इकाई का विषय है - लघुगद्यांशों के भाषानुवाद संस्कृत से हिन्दी व हिन्दी से संस्कृत में किया जा रहा है।

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं की अपेक्षा विशुद्ध काल्पनिक पात्रों तथा कथानकों का चित्रण हैं। यह एक ऐसा काल्पनिक जगत् है, जिसमें घटना - वैचित्र्य और पात्र - वैचित्र्य के साथ-साथ कौतूहल, हास्य, व्यंग्य, विनोद एवं उपदेश का एकत्र समावेश है।

इन कथाओं का आभिर्भाव कब व कैसे हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी ऋग्वेदीय मनु मत्स्य सम्वाद के आधार पर इसकी प्राचीनता का आभास मात्र प्रतीत होता है। वस्तुतः पशु पक्षियों की कथाओं का प्राचीनतम संग्रह जातक कथाओं में उपलब्ध होता है। इनका परिमार्जित रूप हमें बृहत् कथा मंजरी, कथासरितसागर, सुख सप्तशती, पंचतन्त्र आदि में प्राप्त होता हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- लघुगद्यांशों के अनुवाद संस्कृत से हिन्दी व हिन्दी से संस्कृत में कर सकेंगे।
- कथा क्या है ? इसके बारे में समझा सकेंगे।
- इन कथाओं के माध्यम से शत्रु-मित्र में भेद क्या हैं ? इसके बारे में आप समझा सकेंगे।
- इन कथाओं से आप जीवन की शिक्षाएं प्राप्त करेंगें ।
- इन कथाओं के माध्यम से अपने व पराये के भेद के बारे में बता सकेंगे।

3.3 मूर्ख पुत्रों की कथा

दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् । तत्र सकलार्थि कल्पद्रुमः प्रवरमुकुटमणिमरीचिमंजरी चर्चित चरणयुगलः सकलकलापाररशक्तिर्नाम राजा बभूव। तस्य त्रयः पुत्राः परमदुर्मेधसो बहुशक्तिरूग्रशक्तिरनन्तशक्तिश्चेति नामानो बभूवुः । अथ राजातान्शास्त्रविमुखानालोक्य सचिवानाहूय प्रोवाच-'भोः, ज्ञातमेतद्भिवद्धर्यन्ममैते पुत्राः शास्त्रविमुखा विवेकरहिताश्च तदेतान्पश्यतो मे महदपि राज्यं न सौख्यमावहति।

दक्षिण देश में महिलारोप्य नाम का नगर था। वहाँ समस्त याचकों के लिए कल्प वृक्ष के समान उच्चतम राजाओं की मुकुटमणियों के किरण समूह से पूजित चरणयुगल वाला और समग्र कलाओं का पारदर्शी अमर शक्ति नाम का राजा था। उसके परम मूर्ख तीन पुत्र हुए, जिनके नाम थे - बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनन्तशक्ति। उन पुत्रों को शास्त्र से विमुख देखकर राजा ने मन्त्रियों को बुलाकर कहा –' यह तो आप लोगों को विदित ही है कि ये मेरे पुत्र शास्त्र ज्ञान से विमुख तथा विवेक शून्य हैं। इस लिए इन्हें देखते हुए मुझे यह विशाल राज्य भी आनन्द नहीं देता।'

अजातमृतमूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौ वरम्।
यतस्तौ स्वल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्।। अथवा साध्विदमुच्यते -

अथवा यह किसी ने ठीक ही कहा है -

उत्पन्न ही नहीं हुए, उत्पन्न होकर मर गये एवं मूर्ख इन तीन पुत्रों में से उत्पन्न ही न हुए और उत्पन्न हो कर मर गये ये दोनों बल्कि अच्छे हैं क्योंकि वे अत्यन्त अल्प दुःख देनें वाले होते हैं, किन्तु अन्तिम मूर्ख पुत्र तो जीवन पर्यन्त सन्ताप ही देता रहता है।

वरं गर्भस्त्रावो वरमृतुषु नैवाभिगमनं
वरं जातः प्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता।
वरं बन्ध्या भार्या वरमपि च गर्भेषु वसति-
र्नं चाविद्वान्रुपद्रविणगुणयुंक्तोपि तनयः ।।

बल्कि गर्भ का पतन हो जाना अच्छा है,ऋतु काल में स्त्री के पास न जाना अच्छा है, किसी प्रकार सन्तति के उत्पन्न होने पर उसका तत्काल ही मर जाना अच्छा है, अथवा पुत्र न होकर कन्या का ही जन्म होना अच्छा है, स्त्री का बन्ध्या होना या सन्तान का गर्भ में ही रहना अच्छा है, किन्तु रूप सम्पत्ति गुण सम्पन्न होता हुआ भी मूर्ख पुत्र अच्छा नहीं है।

किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान् ।।

उस गौ से क्या प्रयोजन जो न बच्चा उत्पन्न करती है और न तो दूध ही देती है ? उसी प्रकार उस पुत्र से क्या प्रयोजन जो न विद्वान् हो और न माता-पिता, गुरु एवं इष्टदेवों में प्रेम करने वाला हो।

वरमिह वा सुतमरणं मा मूर्खत्वं कुलप्रसूतस्य।
येन विबुधजनमध्ये जारज इव लज्जते मनुजः ।।

अथवा इस संसार में पुत्र का मरण अच्छा है, परन्तु कुल में उत्पन्न पुत्र का मूर्ख होना उचित नहीं है। क्योंकि उस मूर्ख पुत्र से विद्वानों के मध्य में जारज पुत्र के समान मनुष्य लज्जित होता है।

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी ससंभ्रमा यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद् वन्ध्या कीदृशी भवति ।।

गुणी लोंगों की गणना के समय जिसके नाम पर अँगुली शीघ्रता के साथ न गीरे, यदि उस प्रकार के पुत्र से उसकी माता पुत्रवती है, तो बताओ फिर वन्ध्या किस प्रकार कि स्त्री होती है।

तदेतेषं यथा बुद्धिप्रकाशो भवति तथा कोऽप्युपायोनुष्ठीयताम्। अत्र च मद्दत्तां वृत्तिं भुघजानानां पण्डितानां पघचशति तिष्ठति। ततो ' यथा मम मनोरथाः सिद्धिं यान्ति तथाऽनुष्ठीयताम्' इति। तत्रैकः प्रोवाच ' देव, द्वादशभिर्वर्श्र्ष्यकिरणं श्रूयते। ततो धर्मशास्त्राणि मन्वादीनि, अर्थ शास्त्राणि चाणक्यादीनि, कामशास्त्राणि वात्स्यायनादीनि। एवं च ततो धर्मार्थकामशास्त्राणि ज्ञायन्ते। तनः प्रतिबोधनं भवति।' अथ तन्मध्यतो सुमतिर्नाम सचिवः प्राह -'अशाश्वतोऽयं जीवितव्यिवषय-।प्रभूतकाल- ज्ञेयानि शब्दशास्त्राणि। तत्संक्षेपमात्रं शास्त्रं किच्श्रिदेतेषां प्रबोधनार्थ चिन्त्यतामिति। उक्तं च यतः -

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्र स्वल्पं तथाऽऽयुबहवश्च विघ्नाः।
सारं ततो ग्राहमपास्य फल्गु हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ।।

इसलिए जिस प्रकार इनकी बुद्धि का विकास हो वैसा कोई उपाय आप लोग करें। यहाँ पर मेरे द्वारा दी हुई जीविका को भोगते हुए पाँच सौ विद्वान् रहते हैं। अतएव जिस प्रकार मेरे मनोरथ सिद्ध हों वैसा उद्योग करें। उनमें से एक मन्त्री ने कहा- राजन्। बारह वर्ष में व्याकरण शास्त्र का अध्ययन होता है, तत्पश्चात् मनु आदि के धर्म शास्त्र, चाणक्यादि के अर्थ शास्त्र, वात्स्यायनादि

के कामशास्त्र, तदनन्तर धर्म, अर्थ तथा काम शास्त्र पढें जते हैं। इन सबों के पढ़ने के अनन्तर ही ज्ञान होता हैं। इसके अनन्तर उनमें से सुमति नामक एक मन्त्री ने कहा - यह मानव जीवन अनित्य है और व्याकरण शास्त्र का ज्ञान अधिक समय के अनन्तर होता है। इस लिए इनके बोध के लिए किसी संक्षिप्त शास्त्र का विचार कीजिए क्योंकि कहा भी है -

शब्दशास्त्र (व्याकरण) का निश्चित कहीं पार नहीं, अवस्था थोड़ी और विघ्न अत्यधिक है। इसलिए सार (तत्त्व) को ग्रहण कर, असार का वैसे ही परित्याग कर देना चाहिए जैसे हंस जल से दूध निकाल लेते हैं और जल त्याग देते हैं।

तदत्रास्ति विष्णुशर्मा नाम ब्राह्मणः सकलशास्त्रपारंगमश्छात्रसंसदि लब्धकीर्तिः। तस्मै समर्पयतु एतान् । स ननुं द्राक्प्रबुद्धान्करिष्यति' इति । स राजा तदाकर्ण्य विष्णुशर्माणमाहूय प्रोवाच - 'भो भगवन् मदनुग्रहार्थमेतानर्थशास्त्रं प्रति द्राग्यथानन्यसदृशान्विदधासि तथा कुरू। तदाहं त्वां शासनशतेन योजयिष्यामि।' अथ विष्णु शर्मा तं राजान्मूचे - देव, श्रूयतां मे तथ्यवचनम् । नाहं विद्याविक्रयं शासनशतेनाऽपि करोमि। पुनरेवतांस्तव पुत्रान्मासषट्केन यदि नीतिशास्त्रज्ञान्न करोमि, ततः स्वनामत्यागं करोमि। किं बहुना। श्रूयतां ममैष सिंहनादः। नाहमर्थलिप्सुर्ब्रवीमि। ममाशीतिवर्षस्य व्यावृत्तसर्वेन्द्रियार्थस्य न किंचिदर्थेन प्रयोजनम् । किन्तु त्वत्प्रार्थनासिद्ध्यर्थं सरस्वतीविनोदं करिष्यामि। तल्लिख्यतामद्यतनो दिवसः। यद्यहं षण्मासाभ्यन्तरे तव पुत्रान्नयशास्त्रं प्रत्यनन्यसदृशान्न करिष्यामि, ततो नार्हति देवो देवमार्गं संदर्शयितुम्।'

यहाँ अपने विद्वन् मण्डलियों में समस्त शास्त्रों का पारगामी छात्रों की मण्डली में यशस्वी विष्णु शर्मा नाम का एक ब्राह्मण है। उसे इन पुत्रों को आप सौंप दें। वह आज से इनको शीघ्र ही ज्ञान वान बना देगा। राजा ने यह बात सुनकर विष्णु शर्मा को बुलाकर कहा - भगवन् ! मुझ पर अनुग्रह करने के लिए आप मेरे इन पुत्रों को शीघ्र अर्थ शास्त्र में जिस प्रकार हो सके उस प्रकार असाधाराण विद्वान् बना दीजिए। इसके बदले मैं आपको सौ गाँव का मालिक बना दुँगा। इसके अनन्तर राजा से विष्णु शर्मा ने कहा - राजन् मेरे सत्यवचन सुनिए। मैं सौ गाँव लेकर भी विद्या-विक्रय नहीं करता। तथापि आपके इन पुत्रों को यदि छः महीने में नीति शास्त्र का ज्ञाता न बनां दूँ तो मैं अपना नाम त्याग दूँगा। बहुत कहने से क्या लाभ ? आप मेरा सिंहनाद सुने। धन मिल जने की अभिलाषा से मैं ऐसा नहीं कहता ,क्योंकि अस्सी वर्ष की अवस्था तक समस्त इन्द्रियों के भोग से निस्पृह हो गया हूँ , अतः मुझे धन से कोई प्रयोजन नही है। किन्तु आपकी प्रार्थना सिद्धि के निमित्त मैं सरस्वती विनोद करूँगाs। अतः आप आज के दिन का नाम लिख लीजिए। यदि मैं छः महीने के अन्दर आपके पुत्रों को विद्या में असाधारण ज्ञाता न बनादूँ तो भगवान मुझे देवमार्ग (स्वर्ग) न दिखावें।

अथासौ राजा तां बाह्मणस्यासम्भाव्यां प्रतिज्ञां श्रुत्वा ससचिवः प्रहृष्टो विस्मयान्वितस्तस्मै सादरं तान्कुमारान्समर्प्य परां निर्वृत्तिमाजगाम । विष्णुशर्मणापि तानादाय तदर्थं मित्रभेद - मित्रप्राप्ति - काकोलूकीयलब्धप्रणाशापरिक्षितकारकाणि चेति पंचतन्त्राणि रचयित्वा पाठितास्ते राजपुत्राः । तेऽपि तान्यधीत्य मासषट्केन यथोक्ताः संवृत्ताः ततः प्रभृत्येतत्पघतन्त्रकं नाम नीतिशास्त्रं बालावबोधनार्थं भूतले प्रवृत्तम्। किं बहुना-

अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं श्रृणोति च।
न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन।।

इसके अनन्तर ब्राह्मण की इस असंभव (असाधारण) प्रतिज्ञा को सुन कर राजा मन्त्रियों सहित अत्यधिक प्रसन्न हो आश्चर्ययुक्त हुआ और उन राज कुमारों को आदर के साथ उनको समर्पित कर राजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। विष्णु शर्मा नें भी उन (कुमारों)को लेजा कर उनके निमित्त मित्र भेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरिक्षित कारक नामक इन पाँच तन्त्रों की रचना कर उन्हें पढ़ाया। वे राज कुमार भी उन तन्त्रों को पढ़कर छः महीने में जैसा कहा था, असाधारण ज्ञाता हो गये। उसी दिन से यह पंच तन्त्र नामक नीतिशास्त्र का ग्रन्थ बालकों को ज्ञान प्राप्ति के लिए संसार में प्रसिद्ध हुआ। अधिक क्या ?

अस्ति कस्मिंश्चित् पर्वतैकदेशे वानरयूथम् । तच्च कदाचिद्धेमन्तसमयेऽतिकठोरवात संस्पर्श- वेपमानकलेवरं तुषारवर्षोद्धत प्रवर्षधनधारानिपातसमाहतं न कथाञ्चिच्छान्तिमगमत् । अथ केचिद्वानरा वन्हिकणसदृशानिगुन्जाफलान्यवचित्य वन्हिवाञ्छया फूत्कुर्वन्तः समन्तात्तस्थुः । अथ सूचीमुखो नाम पक्षी तेषां तं वृथायासमवलोक्य प्रोवाच -'भोः, सर्वे मूर्खा यूयम् । नैते वन्हिकणाः गुन्जाफलानि एतानि। तत्किं वृथा श्रमेण । नैतस्माच्छीतरक्षा भविष्यति। तदन्विष्यतां कश्चिन्निर्वातो वनप्रदेशो गुहा गिरिकन्दरं वा । अद्पसि सटोपा मेघा दृष्यन्ते ।' अथ तेषामेकतमो वृद्धवानरस्तमुवाच - 'भो मुर्ख, किं तावदनेन व्यापारेण। तदगम्यताम्।'

किसी पर्वत के एक प्रदेश में वानरों का एक झुण्ड रहता था। वह वानर समूह किसी समय हेमन्त ऋतु में अत्युत्कट ठंडी वायु लगने से कम्पमान शरीर तथा तुषार (पाला) की वर्षा तुल्य बड़ी मुशलाधार जल के बरसने के कारण पीड़ित हो कर किसी तरह भी सुख नहीं पा रहा था तब उनमें से कुछ बन्दर अग्नि कण (आग की चिनगारी) के समान गुञ्जा फलों को एकत्रित कर अग्नि की अभिलाषा से फुंकते हुए उसके चारों तरफ घेर कर बैठ गये तदनन्तर सूची मुख नाम के पक्षी ने उनके उस निरर्थक परिश्रम को देखकर कहा - 'अरे, तुम सब मूर्ख हो। ये सब आग की चिन्गारीयाँ नहीं हैं। ये गुघजा फल है। इसलिये इस निरर्थक परिश्रम से क्या प्रयोजन ? इससे शीत की रक्षा नहीं होगी सो कोई वायुरहीत बना स्थान, गुहा (गुफा) या गिरी कन्दर (पर्वत की खोह) खोजों। इस समय भी बादल की घनघोर घटा (मेंघ की गर्जना) देखने में आ रही है। तब उनमें से एक वृद्ध बन्दर ने कहा - अरे मूर्ख ' तुझे इस काम से क्या प्रयोजन ? इस लिये(तू) चला जा।

उक्तं च -मुहुर्विघ्नितकर्माणं द्यूतकारं पराजितम्।
नालापयेद्विवेकज्ञो यदिच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।।

कहा भी है - बार-बार किसी कार्य में सफलता न पाने वाले और द्यूत (जुआ) खेलने में पराजित व्यक्ति से बुद्धिमान व्यक्ति को होना चाहिए कि यदि अपनी कुशलता की इच्छा हो तो उनके साथ वार्तालाप ना करें।

तथा च- आखेटकं वृथाक्लेशं मूर्ख व्यसन-संस्थितम्।
आलापयति यो मूढः स गच्छति पराभवम्।।

और भी, जो मूर्ख - आखेटक (शिकारी), निरर्थक परश्रिम करने वाले, मूर्ख और व्यसनी से वार्तालाप करता है, वह पराभव को प्राप्त होता है।

सोपि तमानादृत्य भूयोपि वानराननवरतमाह-'भोः, किं वृथा क्लेशेन ।' अथ यावदसौ न कथच्चित्प्रलपन्विरमति तावदेकेन वानरेण व्यर्थश्रमत्वात्कुपितेन पक्षाभ्यां गृहीत्वा शिलायामास्फालित उपरतश्च अतोऽहं ब्रवीमि- 'नानम्य नमते दारू' । वह भी उसके वचन की अवहेलना करता हुआ बार-बार वही बात कहता ही रहा कि - अरे ! इस निरर्थक कष्ट से क्या प्रयोजन ? सो वह जब किसी प्रकार भी अपने कहने से न रूका, तब तक व्यर्थ परिश्रम से क्रुद्ध हुए बन्दर ने उसके पंख पकड़कर शीला (पर्वत की चट्टान) पर पटक दिया जिससे वह मर गया। इसलिए मैं कहता हुँ- न झुकने वाले लकड़ी नहीं झुकती।

तथा च -

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।

पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्॥

और भी - मूर्खों को दिया गया उपदेश उनके क्रोध को बढ़ाने के लिए ही होता हैं, न कि शान्ति के लिए। जिस प्रकार सर्पों को दूध पिलाने से उनके विष का ही वर्धन होता है।

अन्यच्च-

उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने।

पश्य वानरमूर्खेण सुगृही निगृहीकृतः॥

और भी - जैसे तेसै व्यक्ति को उपदेश न देना चाहिए। देखो, मूर्ख बन्दर एक उत्तम गृहस्थ को घर से शून्य (बेघर) बना दिया।

3.4 गौरेया पक्षी की कथा

अस्ति कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे शमीवृक्षः । तस्य लम्बमानशिखायां कृतावासावरण्यचअकदम्पती वसतः स्म । अथ कदाचित्तयोः सुखसंस्थयोर्हेमन्तःमेघो मन्दं मन्दं वर्षितुमारब्धः । अत्रान्तरे कश्चिच्छाखामृगो वातासारसमाहतः प्रोद्दिध्लतशरीरो दन्तवीणां वादयन्वेपमानस्तच्छमीमूलमासाद्योपविष्टः । अथ तं तदृशमवलोक्य चटका प्राह - ' भो भद्र

किसी वन के एक प्रदेश में शमी का एक वृक्ष था। उसकी लम्बी शाखा (डाल) में घोंसला बना कर चटक-चटका (गौरैया व उसकी स्त्री) रहा करते थे। किसी समय जब वे आनन्द से बैठे हुए थे कि हेमन्त ऋतु का बादल धीरे-धीरे बरसने लगा। इसी समय हवा के झकझोर से युक्त बरसात की धारा से ताड़ित (वर्षा के जल से भीगे हुए शरीर वाला), दन्त वीणा (कटकटाते दांत रूपी वीणा) बजाता हुआ और काँपता हुआ कोई बन्दर उसी शमी वृक्ष के नीचे आकर बैठ गया। उसकी उस प्रकार की दशा देख कर चटका ने कहा - हे सौम्य !

'हस्तपादसमोपेतो दृश्यते पुरूषाकृतिः।

शीतेन भिद्यते मूढ़, कथं न कुरूषे गृहम्' ॥

तुम तो हाथ और पैर से युक्त होने के कारण पुरुष के समान देखने में आते हो। तब शीत से कष्ट क्यों पा रहे हो, अरे मूर्ख ! निवास के लिए घर क्यों नहीं बना लेता ?

एतच्छ्रुत्वा तां वानरः सकोपमाह-'अधमे कस्मान्न त्वं मौनव्रता भवसि । अहो, धाष्टर्यमस्याः । अद्य मामुपहसति-

'सूचीमुखी दुराचारा रण्डा पण्डितवादिनी।

नाशङ्कते प्रजाल्पन्ती तत्किमेनां न हन्म्यहम्''॥

उसे सुनकर बन्दर ने क्रोध पूर्वक कहा - अरे अघमे ! तू चुप क्यों नहीं रहती ? अत्यधिक आश्चर्य की बात है, इसकी धृष्टता तो देखो ! यह मेरा उपहास कर रही है।

सूई के सदृश मुँह वाली, व्याभिचारिणी, धूर्ता अपने को विदुषी कहने वाली, बकवाद करती हुई यदि यह नहीं आशंकित होती (डरती) है तो मैं क्यों न इसे मार डालूँ ?

एवं सघिचन्त्यं स आह-'मुग्धे ! किं मम चिन्तया तव प्रयोजनम् ?'

उक्तं च -

वाच्यं श्रद्धासमेतस्य पृच्छतेश्च विशेषतः।

प्रोक्तं श्रद्धाविहीनस्य अरण्यरूदितोपमम्॥

इस प्रकार विचार कर उसने कहा- अरी मुग्धे (भोली)। मेरी चिन्ता करने से तुझे क्या प्रयोजन ? कहा भी है-

विशेष श्रद्धा से युक्त होकर यदि कोई जानने की इच्छा से पुछे तो उससी बात करनी चाहिए। श्रद्धा रहित मनुष्यों से कुछ कहना वन में रोने के समान (निरर्थक) है।

तत्किं बहुना तावत्। कुलायस्थितया तया पुनरप्यभिहितः। स तावत्तां शमीमारुह्य तस्याः कुलायं शतधा खण्डशोऽकरोत्। अतोऽहं ब्रवीमि-'उपदेशो न दातव्यः' इति।

सो बहुत कहने से क्या प्रयोजन ! ज्यो ही कुलाय (घोसले) में बैठी हुई उस (चटका) ने पुनः कहा त्यों ही उस शमी वृक्ष पर चढ़कर उसके कुलाय (घोंसले) को सौ टुकड़े कर दिये। इसी से मैं कहता हूँ -'जैसे तैसे व्यक्ति को उपदेश न देना चाहिए' इत्यादि।

तन्मूर्ख, शिक्षापितोऽपि न शिक्षितस्त्वम्। अथवा न ते दोषोऽस्ति, यतः साधोः शिक्षा गुणायसम्पद्यते, नासाधोः। उक्तं च-

किं करोत्येव पाण्डित्यमस्थाने विनियोजितम्।

अन्धकारप्रतिच्छन्ने घटे दीप इवाहितः॥

सो हे मूर्ख दमनक ! उपदेश देने पर भी तू नहीं सीख सका। अथवा इसमें तेरा दोष नहीं है, क्योंकि सज्जन व्यक्ति में शिक्षा गुणदायिनी होती हैं, न कि अशिष्ट (असज्जन व्यक्ति) में। कहा भी है -अनुचित पात्र में बतलाया गया सदुपदेश क्या कर सकता है। जिस प्रकार अन्धकार से पूर्ण घड़े के उपर रखा हुआ दीपक घड़े के भीतर प्रकाश कर सकता है ?

तद्व्यर्थपाण्डित्यमाश्रित्य मम वचनमश्रृण्वन्नात्मनः शान्तिमपि वेत्सि। तन्नूनमपजातस्त्वम्। उक्तं च-

जातः पुत्रोऽनुजातश्च अतिजातस्तथैव च।

अपजातश्च लोकेऽस्मिन्मन्तव्याः शास्त्रवेदिभिः॥

सो व्यर्थ पाण्डित्य (मैं ज्ञानवान हूँ इस प्रकार का झूठा अहंकार) का अवलम्बन कर तुमने मेरा वचन नहीं सुना और जो मन की शान्ति थी उसे भी नहीं समझ पाया। सो निश्चय ही तू अपजात (अत्यन्त अधम) है। कहा भी है -

इस संसार में शास्त्र के जानने वालों को चार प्रकार के पुत्रों को मानना चाहिए,, जिनके नाम इस प्रकार है- 1. जात 2. अनुजात 3. अतिजात 4. अपजात।

मातृतुल्यगुणो जातस्त्वनुजातःपितुः समः।अतिजातोऽधिकस्तस्मादपजातोऽधमाधमः॥

उन चारों की परिभाषाएँ इस प्रकार है - माता के समान गुण वाला पुत्र "जात" पिता के समान गुण वाला " अनुजात" पिता से अधिक गुण वाला पुत्र " अतिजात " और अत्यन्त अधम पुत्र " अपजात " कहा जाता है।

अप्यात्मानो विनाशं गणयति न खलः परव्यसनहृष्टः ।

प्रायो मस्तकनाशे समरमुखे नृत्यति कबन्धः ।।

दुर्जन पुरुष दूसरों के दुःख से प्रसन्न हो कर अपने विनाश को नहीं देखता है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि मस्तक के कट जाने पर भी कबन्ध (छिन्न शिर वाला शरीर धड़) युद्ध भूमि में नृत्य करता रहता है।

अहो, साध्विवदमुच्यते-

'धर्मबुद्धिः कुबुद्धिश्च द्वावेतौ विदितौ मम।

पुत्रेण व्यर्थपाण्डित्यात्पिता धूमेन घातितः' ।।

धर्मबुद्धि और कुबुद्धि इन दोनों को मैनें जान लिया है। पुत्र (कुबुद्धि) ने अपनी निरर्थक पण्डिताई के कारण धुँए से पिता को मार डाला।

3.5 धर्मबुद्धि और पाप बुद्धि की कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने धर्मबुद्धिः पापबुद्धिश्च द्वे मित्रे प्रतिवसतः स्मः । अथ कदाचित्पापबुद्धिना चिन्तितम्- ' अहं तावान्मूर्खो दारिद्रयोपेतश्च। तदेनं धर्मबुद्धिमादाय देशान्तरं गत्वास्याश्रयेणार्थोपार्जनं कृत्वैनमपि वञ्चयित्वा सुखी भवामि ।' अथान्यस्मिन्नहनि पापबुद्धिधर्मबुद्धिं प्राह-'भो मित्र, वार्धकभावे किं त्वमात्मविचेष्टितं स्मरसि, देशान्तरमदृष्ट्वा कां शिशुजनस्य वार्ता कथयिष्यसि ? उक्तं च -

देशान्तरेषु बहुविधभाषावेषादि येन न ज्ञातम्।

भ्रमता धरणीपीठे तस्य फलं जन्मनो व्यर्थम् ।।

दमनक नें कहा -

यह कैसे ? उसने कहा - किसी नगर में " धर्मबुद्धि " और " पापबुद्धि " नाम के दो मित्र रहते थे। एक दिन पापबुद्धि ने विचार किया कि मैं तो मूर्ख और दरिद्र हूँ। सो इस धर्मबुद्धि को साथ लेकर देशान्तर में जाकर इसकी सहायता से धन उपार्जित करूँ (कमाऊँ और उसके बाद) इसे भी ठग कर सुखी हो जाऊँ । तदनुसार किसी दूसरे दिन पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा - हे मित्र ! वृद्धावस्था (बुढ़ौती) में तुम अपने-अपने कौन से कार्य को स्मरण (याद) करोगे ? दूसरे देश को देखे बिना अपने बालकों से कौनसी बातें कहोगे ? कहा भी है -

जिस व्यक्ति ने दूसरे देशों में घूमकर अनेक प्रकार की भाषा और वेष (पोशाक) आदि का नही समझा उसका भूतल पर जन्म ग्रहण करना निरर्थक है।

तथा च -

विद्यां वित्तं शिल्पं तावन्नाप्नोति मानवः सम्यक्।

यावद् व्रजति न भूमौ देशाद्देशान्तरं हृष्टः ।।

उसी तरह - कोई भी व्यक्ति भूतल पर विद्या, वित्त (धन), शिल्प (वैज्ञानिक व्यापार, कारीगरी) तब तक अच्छी तरह प्राप्त नहीं करता जब तक प्रफुल्लित मन से देश-देशान्तर नहीं जाता।

अथ तस्य तद्वचनमाकर्ण्य प्रहृष्टमनास्तनैव सह गुरूजनानुज्ञातः शुभेऽहनि देशान्तरं प्रस्थितः । तत्र च धर्मबुद्धिप्रभावेण भ्रमता पापबुद्धिना प्रभूततरं वित्तमासादितम् । ततश्च ,द्वावापि तौ प्रभूतोपार्जितद्रव्यौ प्रहृष्टौ स्वगृहं प्रत्यौत्सुक्येन निवृत्तौ। उक्तं च -

प्राप्तविद्यार्थशिल्पानां देशान्तरनिवासिनाम् ।
क्रोशमात्रोऽपि भूभागः शतयोजनवद्भवेत् ।।

इसके बाद उसकी इस तरह की बात को सुनकर धर्मबुद्धि ने प्रसन्नचित होकर गुरुजनों की आज्ञा लेकर उसी के साथ किसी अच्छे दिन में दूर देश की ओर प्रस्थान किया। वह धर्मबुद्धि के प्रभाव से भ्रमण करते हुए पापबुद्धि नें बहुत सा धन प्राप्त किया उसके बाद वे दोनों अत्यधिक धन उपार्जन से प्रसन्न होकर बड़ी उत्कण्ठा से अपने घर की ओर लौटे। कहा भी है - विद्या, धन और शिल्प (कारीगरी) प्राप्त करने के बाद देशान्तर में गये हुए व्यक्ति के लिए अपने घर की ओर की एक कोस भर की जमीन सौ योजन (चार सौ कोस) के तुल्य (अधिक दूर वाली) हो जाती है।

अथ स्वस्थानसमीपवर्तिना पापबुद्धिना धर्मबुद्धिरभिहितः-'भद्र, न सर्वमेतद्धनं गृहं प्रति नेतु युज्यते । यतः कुटुम्बिनो बान्धवाश्च प्रार्थयिष्यन्ते । तदत्रैव वनगहने क्वापि भूमौ निक्षिप्य किंचिन्मात्रमादाय गृहं प्रविशावः । भूयोऽपि प्रयोजने सञ्जाते तन्मात्र समेत्यास्मात्स्थानान्नेष्यावः । उक्तं च -

न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित्स्वल्पमप्यहो ।
मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः ।।

इसके बाद जब पापबुद्धि अपने घर के पास पहुँचा तब उसने धर्मबुद्धि से कहा - सौम्य ! सब धन ले जाना ठीक नहीं है, क्यों कि भाई बिरादर एवं जात के लोग उसे माँगने लगेंगे। सो इसी घोर जंगल में कहीं भूमि में गाड़कर और इसमें से थोड़ा सा धन लेकर हम दोनों घर चलें । फिर आवश्यकता पड़ने पर यहाँ आकर हम दोनों शेष धन ले जायेंगे। कहा भी है -

बुद्धिमान मनुष्यों का चाहिए कि अपना थोड़ा सा धन भी किसी को नहीं दिखलावें । क्योंकि उसके देखने से मुनि लोगों का भी मन चलायमान हो जाता है।

तथा च -

यथामिषं जले मत्स्यैर्भक्ष्यते श्वापदैर्भूवि ।आकाशे पक्षिभिश्चैव तथा सर्वत्र वित्तवान् ।।

और भी -जिस मांस जल में मछलियों द्वारा, पृथ्वी पर सिंह आदि हिंसक जन्तुओं द्वारा, आकाश में पक्षियों द्वारा खाया जाता है, उसी प्रकार सब जगह धनवान व्यक्ति खाया जाता है।

तदाकर्ण्य धर्मबुद्धिराह-'भद्र, एवं क्रियताम् ।' तथाऽनुष्ठिते द्वावपि तौ स्वगृहं गत्वा सुखेन संस्थितवन्तौ । अथान्यस्मिन्नहनि पापबुद्धिर्निशीथेऽटव्यां गत्वा तत्सर्वं वित्तं समादाय गर्तं पूरयित्वा स्वभवनं जगाम। अथान्यैद्यूर्धर्मबुद्धिं समभ्येत्य प्रोवाच- 'सखे' बहुकुटुम्बा वयं वित्तभावात्सीदामः । तद् गत्वा तत्र स्थाने किंचिन्मात्रं धनमानयावः ।' सोऽब्रवीत्- 'भद्र, एवं क्रियताम्' । अथ द्वावपि गत्वा तत्स्थानं यावत्खनतस्तावद्रिक्तं भाण्डं दृष्टवन्तौ। अत्रान्तरे पापबुद्धिः शिरस्ताडयन् प्रोवाच-'भो धर्मबुद्धे, त्वया हृतमेतद्धनम्, नान्येन । यतो भूयोऽपि गर्तापूरणं कृतम् । तत्प्रयच्छ में तस्यार्धम् । अन्यथाऽहं राजकुले निवेदयिष्यामि ।' स आह-'भे दुरात्मन्, मैवं वद । धर्मबुद्धिः खल्वहम् । नैतच्चौरकर्म करोमि। उक्तं च -

मातृवत्परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत् ।

आत्मवत्सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः' ।।

यह सुनकर धर्मबुद्धि ने कहा - सौम्य ! ऐसा ही करो। वैसा करने पर वे दोनों अपने-अपने घर जाकर आनन्द से रहने लगे। इसके बाद किसी दूसरे दिन पापबुद्धि आधी रात के समय जंगल में जाकर, वह सब धन लेकर गड्ढ़े को भरकर अपने घर चला आया। तदनन्तर दूसरे दिन धर्मबुद्धि के समीप जाकर कहा - हे मित्र ! हम लोग बहुत परिवार वाले हैं। और धन के अभाव से कष्ट पाते हैं। सो उस जगह पर चल कर कुछ थोड़ा सा धन ले आवें। उसने कहा - सौम्य ! ऐसा ही करो। इसके पश्चात् दोनों ने जाकर जब उस जगह को खोदा तो रिक्त भंाड (पात्र) देखा। इतने में पापबुद्धि ने मस्तक पीटते हुए कहा - हे धर्मबुद्धि ! कहीं तुम्हीं ने इस धन का हरण तो नहीं कर लिया हैं। और दुसरे ने नहीं। धन लेकर तुमने ही गड्ढ़ा भर दिया है। इसलिए मुझे उसका आधा दे दो , नहीं तो मैं राज-दरबार में जाकर निवेदन करूँगा।' उसने कहा - 'अरे दुष्ट ! ऐसा मत कह, क्योंकि मैं धर्मबुद्धि हूँ। ऐसा चोर का कर्म मैं नहीं कर सकता। कहा भी हैं -

जिनकी बुद्धि सत्कर्म में रहती है ऐसे धार्मिक लोग परायी स्त्री को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान, समस्त जीवों को अपनी आत्मा के समान देखते है।

एवं ,द्वावपि तौ विवदमानौ धर्माधिकारिणं गतौ ? प्रोचतुश्च परस्परं दूषयन्तौ । अथ धर्माधिकरणाधिष्टितपुरूषैर्दिव्यार्थे यावन्नियोजितौ तावत् पापबुद्धिराह- 'अहो, न सम्यग्दृष्टोऽयं न्यायः ! उक्तं च-

विवादेऽन्विष्यते पत्रं तदभावेऽपि साक्षिणः ।
साक्ष्यभावत्तत्तौ दिव्यं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।

इस प्रकार वे दोनों विवाद करते हुए धर्माधिकारी के समीप जाकर एक दूसरे को दोष लगाते हुए कहने लगे। इसके बाद जब धर्माधिकारी से नियुक्त राजपुरूषों ने शपथ ग्रहण के लिए कहा, तब, पापबुद्धि ने कहा - 'अहो ! यह न्याय तो उचित नहीं देखने में आता। कहा भी है -विवाद कर्म में पहले लेख-पत्र का अन्वेषण किया जाता है, उसके न मिलने पर साक्षी खोजे जाते है।, साक्षी के अभाव में शपथ-ग्रहण कराया जाता है - इस प्रकार राजनियम के अभिज्ञ लोग कहते हैं ।तदत्र विषये मम वृक्षदेवताः साक्षिभूतास्तिष्ठन्ति। ता अप्यावयोरेकतरं चौरं साधु वा करिष्यन्ति। ' अथ तैः सर्वैरभिहितम् - ' भोः, युक्तमुक्तं भवता। उक्तं च -

अन्त्यजोऽपि यदा साक्षी विवादे सम्प्रजायते।
न तत्र विद्यते दिव्यं किं पुनर्यत्र देवताः ।।

सो इस विषय में हमारे साक्षी वन देवता हैं। वे ही हम दोनों में से एक को चोर या साधु बतावेंगे।' उसके बाद उन सबों ने कहा - ' हाँ, हाँ ! तुमने बहुत ठीक कहा। कहा भी है-

विवाद में यदि अन्त्यज भी साक्षी होता है तो शपथ की जरूरत नहीं समझी जाती, फिर जहाँ देवता साक्षी हों तो क्या पूछने की बात है ?

तदस्माकमप्यत्र विषये महत्कौतूहलं वर्तते । प्रत्यूषसमये युवाभ्यामप्यस्माभिः सह तत्र वनोद्देशे गन्तव्यम्' इति । एतस्मिन्नन्तरे पापबुद्धिः स्वगृहं गत्वा स्वजनकमुवाच- 'तात, प्रभूतोऽय मयार्थो धर्मबुद्धेश्चोरितः । स च तव वचनेन परिणतिं गच्छति । अन्यथाऽस्माकं प्राणैः सह यास्यति' । स आह- - 'वत्स, द्रुतं वद येन प्रौच्य तद्द्रव्यं स्थिरतां नयामि ।' पापबुद्धिराह-'तात, अस्ति तत्प्रदेशे महाशमी । तस्यां महत्कौटरमस्ति । तत्र त्वं साम्प्रतमेव प्रविश । ततः प्रभाते यदाहं सत्य श्रावणं करोमि, तदा त्वया वाच्यं

यद्धर्मबुद्धिश्चौर इति ।' तथानुष्ठिते प्रत्यूषे स्नात्वा पाबुद्धिर्धबुद्धिपुरःसरो धर्माधिकरणकैः सह तां शमीमभ्येत्य तारस्वरेण प्रोवाच -

' आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।

अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मो हि जानाति नरस्य वृत्तम् ।।

सो हम लोगों को भी इस विषय में अत्यन्त कौतुक है। सो तुम दोनों को प्रातः काल हम लोगों के साथ वन में जाना होगा। इसी बीच मे पापबुद्धि ने अपने घर जाकर अपने पिता से कहा ' ' हे पिताजी ! मैनें धर्मबुद्धि का प्रभूत धन चुरा लिया है, और तुम्हारे कहने से वह पच जायेगा।' नहीं तो मेरे प्रणों के साथ चला जायेगा।' उसने कहा - 'वत्स ! जल्दी बताओ, जो मैं उसे कहकर उस द्रव्य को स्थिर कर दूँ।'। पापबुद्धिने कहा - ' हे पिताजी ! उस स्थान पर एक बहुत बड़ा शमी का वृक्ष है। उसमें एक बहुत बड़ा कोटर है। उसमें तुम इस समय ही जा घुसो। उसके बाद प्रातःकाल जब मैं सत्य कहने को कहूँगा तब तुम कहना कि धर्मबुद्धि चोर है।' ऐसा करने पर योजनानुसार प्रभातकाल 'पापबुद्धि' ने स्नानकर धुले हुए कपड़े पहनकर, धर्मबुद्धि को आगे कर, धर्माधिकारियों के साथ उस शमी वृक्ष के निकट पहुँचकर ऊँचे स्वर से कहा -

'सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, हृदय, यमराज, दिन-रात दोनों सन्ध्याएँ और धर्म - ये मनुष्यों के चरित्र को जानते हैं।

भगवति वनदेवते, आवर्ममध्ये-यश्चौरस्तं कथय ।' अथ पाबुद्धिपिता शमीकोटरस्थः प्रोवाच-'भो' श्रृणुत । धर्मबुद्धिना हृतमेतद्धनम्' । तदाकर्ण्य सर्वे ते राजपुरूषा विस्मयोत्फुल्ललोचना यावद्धर्मबुद्धेर्वित्तहरणोचितं निग्रहं शास्त्रदृष्ट्याऽवलोकयन्ति तावद्धर्मबुद्धिना तच्छमीकोटरं बन्हिभोज्यद्रव्यैः परिवेष्ट्य वह्निना सन्दीपितम् । अथ ज्वलति तस्मिन् शमीकोटरेऽर्धदग्धशरीरः स्फुटितेक्षणः करूणं परिदेवयन्पापबुद्धिपिता निश्चक्राम। ततश्च तै सर्वैः पृष्टः-'भो किमिदम्।' इत्युक्ते ' इदं सर्वं कुकृत्यं पापबुद्धेः कारणाद् जातम्' इत्युक्त्वा मृतः । ततस्ते राजपुरूषाः पाबुद्धिं शमीशाखायां प्रतिलम्ब्य धर्मबुद्धिं प्रशंस्येदमूचुः-'अहो' साध्विवदमुच्यते -

उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथापायं च चिन्तयेत् ।

पश्यतो बकमूर्खस्य नकुलेन हता बकाः ।।

मातः वनदेवते ! हम दोनों में से जो चार है उसे कहो।' उसके बाद शमी के खोखले में बैठा हुआ पापबुद्धि का पिता कहने लगा - 'अहो ! तुम सब सुनो, यह सब धर्मबुद्धि ने चुराया हैं।' यह सब सुनकर सब राजपुरुषों की आँखे आश्चर्य से खुल गयी औरं जब वे धर्मबुद्धि के धन-हरण के योग्य दण्ड को शास्त्र की दृष्टि से विचारने में तत्पर हो गये, तब धर्मबुद्धि ने उस समी वृक्ष के खोखले में घास-पात भरकर आग लगा दी। उस कोटर के जलने पर उसमें से आधा शरीर जला हुआ, फूटे नेत्र वाला, करूण स्वर में चिल्लाता हुआ पापबुद्धि का पिता निकला । उसके बाद उन अधिकारियों ने पूछा - ' अरे ,यह क्या हो गया ?' इस प्रकार कहने पर ' यह सब कुकृत्य पापबुद्धि के कारण हुआ,' यह निवेदन कर वह मर गया। तदनन्तर उन राजपूरुषां ने पापबुद्धि को शमीवृक्ष की शाखा मं लटकाकर धर्मबुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहा - अहो ! यह ठीक ही कहा है -

बुद्धिमान् का कर्तव्य है कि उपाय के साथ-साथ अपाय की भी चिन्ता करं। क्योंकि मूर्ख बगुले के देखते देखते नकुल ने उसके सभी बच्चे खा लियें।

3.6 बगुला और सर्प की कथा

अस्ति कश्मिंश्चिद्वनोद्देशे बहुबकसनाथो वटपादपः । तस्य कोटरे कृष्णसर्पः प्रतिवसति स्म । स च बकबालकानजातपक्षानपि सदैव भक्षयन्कालं नयति । अथैको बकस्तेन भक्षितान्यपत्यानि दृष्ट्वा शिशु वैराग्यात्सरस्तीरमासाद्य बाष्पपूरितनयनोऽधोमुखस्तिष्ठति । तं च तादृक्चेश्टितमवलोक्य कुलीरकः प्रोवाच-'मातुल, किमेवं रुद्यते भवताऽद्य। ' स आह- ' भद्र, किं करोमि । मम मन्दभाग्यस्य बालकाः कोटरनिवासिना सर्पेण भक्षिताः । तद्दुःखदुःखितोऽहं रोदिमि । तत्कथय मे यद्यस्ति कश्चिदुपायस्तद्विनाशाय ।' तदाकर्ण्य कुलीरकश्चिन्तयामास - 'अयं तावद् स्मज्जातिसहजवैरी । तथापदेशं प्रयच्छामि सत्यानृतं यथान्येऽपि बकाः सर्वे संक्षयमायान्ति । उक्तं च -

नवनीतसमां वाणीं कृत्वा चित्तं तु निर्दयम् ।
तथा प्रबोध्यते शत्रुः सान्वयो भ्रियते यथा ।।

किसी वन में अनेक बगुलों से युक्त एक वट वृक्ष था । उसके कोटर में एक काला साँप रहता था । वह पंख न निकले हुए बगुलों के बच्चों का भक्षण करता हुआ अपना समय बिता रहा था । तदनन्तर एक बगुला उसके द्वारा अपने बच्चों का भक्षण किये हुए देख कर बच्चों के मरण के शोक में जलाशय के किनारे आकर अश्रुधारा परिपूर्ण आँखों से नीचे की ओर मूँह किए हुए बैठा था । उसे उस अवस्था में देखकर एक कुलीरक ने पूछा - 'मामा ! आज आप इस तरह क्यों रो रहे है ?' उसने कहा - 'सौम्य ! क्या करूँ ? मुझ भाग्यहीन के सभी बच्चों को खोखले में रहनेवाले काले साँप ने भक्षण कर लिया है । सो उसी के दुःख से दुखी होकर मैं रो रहा हूँ । यदि उस साँप के नाश का कोई उपाय हो तो मुझसे कहो ।' यह सुनकर कुलीरक ने विचार किया कि 'यह मेरी जाति का सहज बैरी है, अतः इस प्रकार सत्य और असत्य से मिश्रित उपदेश दूँ कि दूर से सभी बगुले भी नष्ट हो जायें । कहा भी है -

वाणी को मक्खन के समान कोमल और चित्त को निष्ठुर करके शत्रु को इस प्रकार समझावे कि जिससे वह कुल-सहित विनाश को प्राप्त हो जाय' ।

आह च - 'माम्, यद्येवं तन्मत्स्यमांसखण्डानि नकुलस्य बिलद्वारात्सर्पकोटरं यावत्प्रक्षिप यथा नकुलस्तन्मार्गेण गत्वा तं दुष्टसर्पविनाशयति !' अथ तथानुष्ठिते मत्स्यमांसानुसारिणा नकुलेन तं कृष्णसर्प निहत्य तेऽपि तद्वृक्षाश्रयाः सर्वे बकाश्च शनैः शनैर्भक्षिताः । अतो वयं ब्रुमः - 'उपायं चिन्तयेद्' इति ।

उसने कहा - ' मामा ! यदि ऐसा है तो मछलियों के मांस के टुकड़े लेकर नेवले के बिल के छेद से लेकर साँप के खोखले तक डाल दो, जिससे नेवला उस मार्ग से जाकर उस दुष्ट साँप को मार डालेगा । इस प्रकार करने पर मछलियों के मांस का अनुसरण करनेवाले नेवले ने उस काले साँप को मारकर उस वृक्ष पर रहने वाले सभी बगुलों को धीरे-धीरे खा लिया । इसीलिए हम कहते हैं - ' उपाय की चिन्ता करके .....' इत्यादि ।

तदनेन पापबुद्धिना उपायश्चिन्तितो नापायः । ततस्तत्फलं प्राप्तम् ।' अतोऽहं ब्रवीमि - ' धर्मबुद्धिः कुबुद्धिश्च' इति ।

इस पापबुद्धि ने उपाय का तो विचार किया किन्तु साथ ही साथ अपाय (विनाश) का विचार नहीं किया इसी से उसका फल पाया। इसीलिए मैं कहता हूँ कि - ' धर्मबुद्धि और पापबुद्धि इन दोनों को मैंने समझ लिया' इत्यादि।

एवं मूढ़, त्वयाप्यपायश्चिन्तितो नोपायः पापबुद्धिवत् । तन्न भवसि त्वं सज्जनः, केवलं पापबुद्धिरसि। ज्ञातो मया स्वामिनः प्राणसन्देहानयनात्। प्रकटीकृतं त्वया स्वयमेवात्मनो दुष्टत्वं कौटिल्यं च। अथवा साध्विदमुच्यते -

यत्नादपि कः पश्येच्छिखिनामाहारनिः सरणमार्गम्।
यदि जलदध्वनिमुदितास्त एव मूढा न नृत्येयुः ।।441।।

इसी प्रकार ओ मूढ़! तुमने भी अपाय का चिन्तन किया किन्तु पापबुद्धि के समान उपाय का नहीं, सो तुम सज्जन नहीं हो। केवल पापबुद्धि हो। स्वामी पिंगलक के प्राणों को संकट में डाल देने से ही मुझे यह मालुम हो गया है। इससे तुमने अपने आप ही अपनी दुष्टता और कुटिलता स्पष्ट कर दी। अथवा यह ठीक ही कहा है -

यदि मेघों की ध्वनि से प्रसन्न होकर वे नादान (मयुर) अपने आप नाचने न लग जायें तो कौन यत्न करके भी मयूरों के आहार निकालने का मार्ग (गुदा) को देख सकता है ?

यदि त्वं स्वामिमेनां दशां नयसि तदस्मद्विधस्य का गणना। तस्मान्ममासन्नेन भवता न भाव्यम्। उक्तं च -

तुलां लोहसहस्रस्य यत्र खदन्ति मूषकाः।
राजंस्तत्र हरेच्छयेनो बालकं नात्र संशयः ।। 442 ।।

दमनक आह - ' कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत् -

जब तुम अपने मालिक को ऐसी अवस्था में पहुचा सकते हो, तो पुनः हमारे सदृश लोगों की क्या गणना है। इसलिए मेरे निकट तेरा रहना उचित नहीं। कहा भी है -

जब एक हजार पल लोहे की तुला को चूहे खा जाते है, तो हे राजन् ! यदि बालक को बाज पक्षी भी उड़ा ले जाय तो, इसमें सन्देह करना उचित नहीं हैं।

अभ्यास प्रश्न 1 .

बहुविकल्पात्मक प्रश्न: -

(1) महिलारोप्य नाम का नगर था -

(1) उत्तर देश में (2) दक्षिण देश में

(3) पश्चिम देश में (4) पूर्व देश में

2. महिलारोप्य नगर का राजा था -

(1) अमर शक्ति (2) शक्ति सिंह

(3) भरत (4) दशरथ

3. उस राजा के कितने पुत्र थे ?

(1) एक (2) दो

(3) तीन (4) पाँच

4. राजा के पुत्र कैसे थे ?

(1) मूर्ख (2) योग्य

(3) बुद्धिमान् (4) विद्वान्

5. राजा के पुत्रों को किसने पढ़ाया ?

(1) सोमनाथ (2) विष्णु शर्मा

(3) भरत (4) दशरथ

6. व्याकरण का अध्ययन कितने वर्षो में होता हैं ?

(1) पन्द्रह (2) बारह

(3) ग्यारह (4) दस

3.7 सारांश

सम्पूर्ण विश्व में पंचतन्त्र की उपयोगिता से परिचित है यद्यपि यह पंचतन्त्र की कथा सरल संस्कृत भाषा एवं हिन्दी भाषा में लिखा गया हैं। इस इकाई की यह विशेषता है कि मात्र हिन्दी जानने वाले भी पंचतन्त्र की कथाओं में आये हुए उपदेशों तथा नीति तत्त्वों से भली-भांति परिचित हों तथा पदे-पदे संस्कृत भाषा एवं साहित्य का आनन्द लेते हुए विषय को हृदयंगम कर सके। विद्यार्थीयों, अध्यापकों एवं साहित्य तथा नीति प्रेमियों को लाभ हो इस बात को प्रस्तुत इकाई में चार कथाओं का वर्णन किया गया हैं। पहली कथा में दक्षिण देश के महिलारोप्य नाम का एक यशस्वी प्रतापी राजा रहता था, जिसका शक्ति नाम था। वह सभी कलाओं से परिपूर्ण था। जिसके तीन परम मूर्ख पुत्र हुए। उन पुत्रों को देख कर उसे बड़ कष्ट हुआ। और उन पुत्रों को अध्ययन कराने के लिए परम यशस्वी विष्णुशर्मा नाम के विद्वान् के पास अध्ययन कराया एवं दूसरी कथा में गौरैया पक्षी की कथा का वर्णन किया गया है जिसमें किसी वन के एक प्रदेश में एक वृक्ष था, उसकी लम्बी शाखा में घोसला बनाकर चटक-चटका (गौरैया एवे उसकी स्त्री) रहा करते थे। अनावश्यक सलाह बन्दरों को देनें का नुकसान उन्हें भुगतना पड़ा। तीसरी कथा धर्मबुद्धि एवं पापबुद्धि नामक दो मित्रों की है जिसमें धर्म व अधर्म के बारे में बताया गया हैं। पापबुद्धि अपनें पाप से नष्ट हो गया तथा धर्मबुद्धि अपने से विजय को प्राप्त हुआ। चौथी कथा साँप व बगुला की कथा हैं। जिसमें बताया गया है कि किसी की भी सलाह पर अन्धविश्वास नहीं करके, परिणाम का चिन्तन भी कर लेना चाहिए।

3.8 शब्दावली

अस्ति - है।	जनपदे - जनपद में।
बभूवुः - हुए।	प्रोवाच - कहा।
मम - मेरा।	तस्मै - उसके लिए।
तदा - तब।	आकर्ण्य - सुनकर।
श्रूयतां -सुनिये।	श्रुत्वा - सुनकर।
रचयित्वा -रचनाकर।	वानरयूथम् - वानरों समूह।
फूत्कुर्वन्तु - फूँकते हुए।	वृथा - व्यर्थ (निरर्थक)।
श्रमेण - परिश्रम से।	गिरिकन्दरः - पर्वत की खोह।
अद्यापि - आज भी।	व्यापारेण - व्यापार से।
द्यूत - जुवा।	वानरेण - वानर से।
पक्षाभ्याम् - दानों पंखो से।	गृहीत्वा - पकड़कर।

शीलायाम् - चट्टान पर।	पयः - दूध।
भुजंनाम् - सर्पों का।	मेघ - जल।
शीतेन - ठण्डक से।	गृहम् - घर।
सकोपमाह - क्रोध पूर्वक कहा।	अधमे - अरे ! दुष्ट।
मौन व्रताः - चुप क्यों नही रहती	किं मम - क्या मेरा।
तव - तुम्हारा।	तावत् - तब तक।
समीमारूह्य- समी वृक्ष पर चढ़ कर।	शतधा - सौ बार।
खण्डशोकरोत् - खण्ड (टुकड़ा) कर दिये।	दातव्यः - देने पर।
द्वे मित्रे - दो मित्र।	अहम् - मैं।
वघचयित्वा - ठगकर।	कथयिष्यसि - कहोगे।
देषान्तरेषु - दूसरे देशों में।	तस्य - उसका।
तद्वचनमाकर्ण्य - उसके वचन को सुनकर।	वनगहने - घोर जंगल में।
भूमौ - जमीन में।	निक्षिप्य - गाड़कर।
स्वगृहम् - अपने घर को।	गत्वा - जाकर।
तत्र - वहाँ।	वित्तम् - धन को।
पूरयित्वा - भरकर।	गर्त - गढ्ढा।
स्वभवनम् - अपने महल में।	जगाम - गया।
चौरम् - चोर को।	करिष्यन्ति - करेंगे।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पात्मक प्रश्न: -

1. **(1) दक्षिण देश में**
2. **(1) अमर शक्ति**
3. **(3) तीन**
4. **(1) मूर्ख**
5. **(2) विष्णु शर्मा**

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रसं.	ग्रन्थ नाम	लेखक टीकाकार	प्रकाशक
1.	नितिशतकम्भतृहरि	श्री कृष्णमणि त्रिपाठी।	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन। 37/117 गोपालमन्दिर लेन,पोबानं. - 1129, वाराणसी।
2.	वाक्य पदीयम्	भतृहरि रामगोविन्द शुक्ल	चौखम्भा विद्याभवन, बनारस
3.	अनुवाद चन्द्रिका	कपिलदेव द्विवेदी कपिलदेव द्विवेदी	चौखम्भा विद्याभवन, बनारस

3.11 उपयोगी पुस्तकें

ग्रन्थ नाम - पंचतन्त्रम्

लेखक - विष्णु शर्मा

सम्पादक - बाबा गोकुलदास गुप्त। चौखम्भा विद्याभवन, बनारस

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) इन कथाओं से लाभ क्या है ? इस पर प्रकाश डालिए -

.....

.....

.....

.....

.....

(2) किसी एक कथा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

खण्ड- तीन (Section-C)
पत्र लेखन एवं निबन्ध

इकाई.1 पत्र लेखन विधि एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पत्र लेखन विधि एवं प्रकार
1.3.1 पत्र लेखन का उद्देश्य
1.3.2 पत्र लेखन के प्रकार
1.3.3 पत्र लेखन की भाषा शैली
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषीक शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

संस्कृत व्याकरण-पत्रलेखन एवं निबन्ध नामक पाठ्यक्रम के तृतीय खण्ड से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इस इकाई में पत्र लेखन विधि एवं प्रकार के विषय में चर्चा करेंगे । 'पत्र' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'पत्रम्' शब्द से हुई है। संस्कृत में इसकी परिभाषा है-'पत्रमारोप्य दीयताम।' अर्थात्-जिस पर लिखा जाए उसे पत्र कहते हैं। पत्र-लेखन एक कला है। पत्र लेखन की आवश्यकता सामान्य जीवन से लेकर सामाजिक जीवन तक, प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति में निरंतर पड़ता रहता है। वस्तुतः पत्र-लेखन दो व्यक्तियों को जोड़ने में सेतु का कार्य करता है। यह आंतरिक भावों को सजा-संवारकर दूसरे व्यक्ति तक सम्प्रेषित करता है। अपनी आवश्यक सूचनाओं को अधिकारी व्यक्ति तक पहुंचाने का कार्य भी पत्र द्वारा ही किया जाता है। यहां तक कि सत्ता भी जब अपनी बातें अपने कर्मचारियों तक पहुंचाना चाहती है तो पत्र का ही सहारा लेती है।

प्राचीन काल से ही पत्र का महत्त्व सामाजिक व्यवस्था द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। राजाओं द्वारा जरूरी सूचनाएं पत्र के माध्यम से ही भेजी जाती थीं। पत्र ने अपनी इस लम्बी यात्रा में बहुत लम्बा सफर तय किया, कभी यह रेशमी कपड़ों पर लिखा गया तो कभी पेड़ों की छालों पर, कभी पशुओं के चमड़े पर तो कभी कागज पर, परंतु पत्र लेखन का महत्त्व कभी कम नहीं हुआ। प्रिया तक अपनी कोमल भावनाएं प्रेमी गण पत्र को माध्यम बनाकर ही भेजते रहे तो माता-पिता के स्नेहिल आशीष से भरे शुभाशीर्वचन का वाहक भी पत्र ही रहा। पत्रों के माध्यम से ही मित्र गणों ने अपने अनुभव बांटे तो पत्रों ने शासकीय कठोर कर्म का निर्वहन भी किया।

आधुनिक जीवन शैली के निरंतर विकास के साथ पत्रों के स्वरूप में कई परिवर्तन हुए परंतु उनका महत्त्व अक्षुण्ण बना रहा। सम्पूर्ण व्यवस्था तंत्र ही पत्रों के माध्यम से चलाया जाने लगा और निश्चित रूप से संचार के तमाम अन्य संसाधनों के बृहत्तर विकास के बावजूद आज भी पत्रों के इस महत्त्व में कोई कमी नहीं आई है। किसी सरकारी विभाग में कोई आवेदन करना हो, किसी अधिकारी, कर्मचारी से कोई शासकीय आवश्यकता हो, अपने विद्यालय में अपने प्रधानाचार्य, कक्षाध्यापक से अवकाश प्राप्त करना हो, या फिर अन्य किसी कार्य की आवश्यकता हो, पत्रों का उपयोग हर जगह अनिवार्य है। उक्त सभी के विषय में प्रस्तुत इकाई में चर्चा की जा रही है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- पत्रलेखन विधि से अवगत हो सकेंगे।
- पत्रलेखन के स्वरूप को जान सकेंगे।
- पत्रलेखन के प्रकार से अवगत होंगे।
- पत्रलेखन की भाषा शैली के विषय में अवगत हो सकेंगे।

1.3 पत्र लेखन विधि एवं प्रकार

1.3.1 पत्र लेखन का उद्देश्य—

पत्र लेखन का हमारे जीवन में अत्यन्त महत्त्व है। पत्र दो हृदयों को जोड़ने वाले सेतु हैं। ये हृदय के दर्पण हैं, जिनमें मानव के मनोभाव एवं विचार स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं। ये हमारी अनुभूतियों के सच्चे दस्तावेज हैं। ये दूरस्थ व्यक्तियों के बीच सम्पर्क-स्थापन के सुंदर साधन हैं। जो एक दूसरे के आत्मीय भावों को एक दूसरे के पास सम्प्रेषित करने में शत-प्रतिशत सक्षम हैं। पत्रों के माध्यम से लोग एक-दूसरे तक अपना संदेश पहुंचाते रहे हैं। पत्रों द्वारा ही व्यक्तिगत, सामाजिक और पारिवारिक सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जाता है।

पत्र-लेखन वास्तव में एक अति विशिष्ट कला है। यह सम्प्रेषण का उचित माध्यम भी है। पत्र लेखन साहित्य की एक सम्पूर्ण विधा है। जिसके माध्यम से साहित्यकारों, महापुरुषों, राजनीतिज्ञों आदि के पत्र प्रकाशित होते रहे हैं। और निश्चित रूप से ये पत्र जन सामान्य के लिए अति लोकप्रिय और प्रेरणादायक भी होते रहे हैं। कुछ पत्रों का तो ऐतिहासिक महत्त्व है और आज भी ये पत्र जन-सामान्य के लिए अतिविशिष्ट श्रेणी के पत्र है। वस्तुतः पत्रों द्वारा किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व, उसके आंतरिक विचारों और उसके गहन सोच की झलक मिल जाती है।

युग में परिवर्तन के साथ-साथ कम्प्यूटर के माध्यम से भी पत्र-लेखन हो रहा है। ई-मेल के द्वारा देश-विदेश तक ये पत्र पलक झपकते ही भेजे जा रहे हैं। परंतु यह भी सच है कि टेलीफोन और इंटरनेट के प्रचलन के बावजूद कागज पर लिखे पत्रों का महत्त्व आज भी बना हुआ है। अतः इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको संस्कृत में पत्र लेखन सिखाना है। पत्र लेखन का अभ्यास हम बचपन से ही करते हुए आ रहे हैं। सम्भवतः यही कारण है कि विद्यालय स्तर पर पत्र लेखन का अभ्यास शुरू से ही कराना शुरू कर दिया जाता है। और लगभग सभी विद्यालयों में विद्यालयी स्तर के पाठ्यक्रमों में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अब आपके मन में यह चिन्तन चल रहा होगा कि स्नातक-स्तर पर आकर इसे पुनः सीखने की भला क्या जरूरत है ? इस सन्दर्भ में यह कहना है कि पत्र लेखन एक कला है। यदि हम इस कला के माध्यम से यथोचित ढंग से पत्र-लेखन कर अपनी बात को रख लेते हैं तो यही हमारी सार्थकता है।

1.3.2 पत्र लेखन के प्रकार—

पत्र व्यक्ति के सुख-दुःख का सजीव संवाहक होने के साथ यह पत्र-लेखक के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब भी होता है। निजी जीवन से लेकर व्यापार को बढ़ाने अथवा कार्यालय/संस्थानों में परस्पर सम्पर्क का साधन पत्र ही है। पत्र की इन सभी उपयोगिताओं को देखते हुए पत्रों को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है जो निम्नलिखित हैं—

1. औपचारिक पत्र

2. अनौपचारिक पत्र

1. औपचारिक पत्र—

ऐसे पत्र जो किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन लोगों के पास भेजे जाते हैं जिनसे हमारे सम्बंध मात्र औपचारिक होते हैं, वह औपचारिक पत्र कहे जाते हैं। औपचारिक पत्रों में—कक्षा-अध्यापकों, प्रधानाचार्यों, सम्पादकों, सरकारी एवं अन्य कर्मचारियों, कार्यालयों, अधिकारियों, बड़े-बड़े संस्थानों के निदेशकों आदि को लिखे गए पत्र आते हैं। औपचारिक पत्रों के भी विभिन्न भाग होते है-जैसे शिकायती पत्र, प्रार्थना पत्र, आवेदन पत्र आदि।

2. अनौपचारिक पत्र—

ऐसे पत्र जो अपने आत्मीय सम्बंधियों, रिश्तेदारों, परिचितों आदि को लिखे जाते हैं अनौपचारिक पत्रों की श्रेणी में आते हैं। माता-पिता, भाई-बहन, मित्र, बुआ, मौसी आदि विभिन्न सम्बंधियों को लिखे गए पत्र अनौपचारिक पत्र कहे जाते हैं। इन पत्रों में औपचारिकता नहीं रहती, ये पत्र निःसंकोच भाव से मन के भावों को प्रकट करने के लिए लिखे जाते हैं। प्रेम पत्र भी अनौपचारिक श्रेणी के ही पत्र होते हैं। अनौपचारिक पत्रों को भी कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। सामाजिक पत्र, जन्मोत्सव पत्र, विवाहोत्सव पत्र, गृह प्रवेश का सूचना पत्र, बधाई पत्र आदि अनौपचारिक पत्रों के विभिन्न भाग होते हैं।

पत्र लिखते समय ध्यान देने योग्य बातें निम्न हैं—

- पत्र लिखते समय प्रारम्भ में पत्र-लेखक व पत्र-प्राप्तकर्ता का नाम, पता व दिनांक के साथ लिखा जाना चाहिए।
- पत्र में अनावश्यक बातों का विस्तार न देकर संक्षिप्त में अपनी बात प्रभावपूर्ण तरीके से कही जानी चाहिए।
- पत्र का विषय स्पष्ट होना चाहिए।
- पत्र लिखते समय कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहने की कोशिश करनी चाहिए।
- पत्र की भाषा मधुर, आदरसूचक एवं सरल होनी चाहिए।
- पत्र की समाप्ति इस प्रकार होनी चाहिए कि पत्र का सन्देश स्पष्ट हो सके।
- पत्र लेखन की भाषा पूर्णतः संतुलित और स्थिर होनी चाहिए। क्लिष्ट भाषाओं का प्रयोग कभी-कभी पत्र को उसके मूल-भाव से दिग्भ्रमित कर देता है।
- पत्र लेखन में विशेष सावधानी यह होती है कि विषय सम्पूर्ण रूप से स्पष्ट हो और जिन शब्दों का चयन किया जा रहा है वह विषय के अनुकूल हो।
- जिसे पत्र लिखा जा रहा है उसकी स्थिति को ध्यान में रखते हुए पत्र में सम्बोधन दिया जाए, जैसे-किसी विशेष अधिकारी सम्मानित व्यक्ति को मान्यवर, महोदय, श्रीमान् आदि से, पिता, चाचा आदि को पूज्य, आदरणीय, पूज्यवर आदि और मित्र को प्रिय आदि सम्बोधनों से सम्बोधित करना चाहिए।
- पत्र में विषय का विस्तार निरर्थक नहीं होना चाहिए। लेखक को कम और संतुलित शब्दों में अपने पत्र के विषय की सम्पूर्ण विषय-वस्तु स्पष्ट कर देनी चाहिए।
- पत्र यदि किसी विशेष तिथि, दिन अथवा किसी विशेष घटना के सम्बंध में लिखा जा रहा हो तो उसमें तिथि, दिन और घटना का विवरण पूर्णतः स्पष्ट होना चाहिए जिससे कि पाठक उपरोक्त घटना आदि के संदर्भ में ठीक तरह से परिचित हो सके।
- व्यावसायिक पत्रों में 'संदर्भ' पूर्णतः स्पष्ट होना चाहिए। जैसे यदि किसी प्रकाशक से पुस्तकें मंगा रहे हैं तो पुस्तक का नाम, लेखक आदि स्पष्ट हों, अगर प्रकाशक की पत्रावली में मूल्य उल्लिखित है तो मूल्य भी स्पष्ट हो। कभी-कभी कुछ फर्मे विभिन्न मूल्यों में एक ही रचनाकार की वही पुस्तकें प्रकाशित करती हैं। हार्ड बाउंड और पेपर

बैक का मूल्य भी पृथक-पृथक ही होता है। ऐसे में आपको माल मिलने में विलम्ब हो सकता है।

- किसी सरकारी कार्यालय में भेजे जा रहे पत्र में 'संदर्भ' का स्पष्ट उल्लेख कर देना चाहिए।
- किसी समाचारपत्र के कार्यालय में भेजे जा रहे पत्र में उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। यदि आप पत्र को सम्पादक के पास प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं तो वह विज्ञापन नहीं लगना चाहिए।

औपचारिक पत्र लेखन के लिए आवश्यक निर्देश—

- पत्र लिखते समय ऊपर और बाएं थोड़ी जगह अवश्य रिक्त रखें।
- पत्र को प्रारम्भ करते समय बाईं ओर 'सेवा में' या 'सेवायाम्' लिखना चाहिए।
- 'सेवा में' लिखने के पश्चात उस व्यक्ति के पद को लिखना चाहिए जिसे पत्र लिखा जा रहा है- जैसे—सम्पादक, प्रधानाचार्य, प्रबंधक, कक्षा अध्यापिका आदि।
- उसके बाद थोड़ा-सा रिक्त स्थान छोड़कर जिसे पत्र लिखा जा रहा है उसके कार्यालय, समाचार-पत्र, संस्थान आदि का नाम लिखें-जैसे-जिला अधिकारी महोदय, जनपद कार्यालय।
- इसके बाद पुनः थोड़ी जगह छोड़कर सम्बोधन का प्रयोग-श्रीमान्, मान्यवर, महोदय: आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- सम्बोधन से पूर्व पहली पंक्ति में पत्र लिखने का कारण 'विषय' लिखना चाहिए। 'विषय' का विस्तार लम्बा न हो और यह एक दो वाक्यों में ही समाप्त हो जाए, लेखक को इसका पर्याप्त ध्यान रखना चाहिए।
- उसके बाद से अनुच्छेद शुरू करते हुए पत्र के सम्बंधित विषय को पूर्ण विस्तारपूर्वक स्पष्ट कर देना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि विषय को स्पष्ट करते हुए न तो कहीं विषय का अनावश्यक विस्तार हो और न ही विषय से सम्बंधित कहीं कोई बात छूट जाए। इसके लिए शब्दों का चयन बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिए। एक अच्छा पत्र लेखक ऐसे पत्रों को लिखते समय सर्वप्रथम एक कच्ची-ड्राफ्टिंग कर लेता है और फिर उसमें काट-छांट करके पत्र लिखता है। इससे पत्र ज्यादा सटीक और स्पष्ट बनता है।
- अगले अनुच्छेद में सम्बंधित विषय के सम्बंध में कार्यवाही करने का अनुरोध करना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि सम्बंधित विषय में कार्यवाही का अनुरोध करते समय अथवा किसी समस्या के निदान का अनुरोध करते समय आपके शब्दों में आज्ञाकारक शब्द, जैसे- आपको ऐसा करना चाहिए, आप ऐसा ही करें जैसे वाक्य न आने पाएं। अनुरोध का अर्थ ही होता है, 'विनम्रतापूर्ण आग्रह'।
- पत्र समापन के अंतिम अनुच्छेद में धन्यवाद ज्ञापन अथवा उचित कार्यवाही की आशा व्यक्त करनी चाहिए।
- उसके बाद थोड़ा-सा रिक्त स्थान छोड़ते हुए पत्र के बाईं ओर 'सधन्यवाद!' का प्रयोग करना चाहिए।

- तत्पश्चात पत्र के दाईं ओर पत्र के विषयानुसार भवदीय, भवदीया, आपका आज्ञाकारी शिष्य, आपकी आज्ञाकारिणी शिष्या आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- पुनः अपना नाम, पद आदि लिखना चाहिए। जैसे यदि ग्राम प्रधान जिला अधिकारी को पत्र लिखते हैं तो- उदाहरण-भवदीय रमेश शर्मा, ग्राम-प्रधान-रामनगर, जनपद-नैनीताल, उत्तराखण्ड यदि पत्र लेखक विद्यार्थी है तो उसे पत्र के विषयानुसार अपना पता और कक्षा लिखना चाहिए।
- दिनांक लिखने के लिए दो पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। कुछ लोग दिनांक नीचे लिखते हैं। नीचे लिखने के लिए दिनांक बाईं ओर लिखना चाहिए। और यदि आप दिनांक के लिए ऊपर जगह ले रहे हैं तो पत्र के दाईं ओर थोड़ा रिक्त स्थान छोड़कर ही दिनांक लिखें।

अनौपचारिक पत्र लेखन के लिए आवश्यक निर्देश—

- अनौपचारिक पत्र लेखन की शुरुआत में ऊपर एवं बाईं ओर थोड़ा जरूर छोड़ना चाहिए।
- पत्र लिखने वाले का पता बाईं ओर शुरुआत में ही लिखना चाहिए।
  जैसे- साई कॉलोनी, रामनगर, पिन नम्बर- 263136 ।
- पते के नीचे थोड़ा-सा स्थान छोड़ते हुए नीचे जिसे पत्र लिखा जा रहा है उसके लिए सम्बोधन अगली पंक्ति में बाईं ओर लिखा जाता है-जैसे- 'प्रिय अनुजा'
- जिसे पत्र लिखा जा रहा है उसके अनुरूप सम्बोधन का अभिवादन अगली पंक्ति में लिखा जाता है। जैसे—प्रणाम, नमस्कार, सादर चरण स्पर्श आदि।
- अनौपचारिक पत्रों में अलग से कारण लिखने की आवश्यकता नहीं रहती है। पत्र के पहले अनुच्छेद में बहुत कम शब्दों में पत्र से सम्बंधित विषय और कारण को स्पष्ट कर दिया जाता है।
- द्वितीय अनुच्छेद में विषय को सरल शब्दों में विस्तार दिया जाता है। इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि पत्र की भाषा जितनी सरस और सम्वेदनायुक्त हो पत्र पढ़ने वाले पर वह उतना ही प्रभाव डालती है।
- तीसरे अनुच्छेद में परिवार के अन्य व्यक्तियों से सम्बंधित बातें और उन्हें अभिवादन लिखा जाता है।
- अगली पंक्ति में बाईं ओर थोड़ी-सी जगह छोड़कर जिस व्यक्ति को पत्र लिखा जा रहा है उससे सम्बंध लिखा जाता है; जैसे- तुम्हारा मित्र, आपका प्रिय पुत्र, तुम्हारी सहेली आदि।
- उसके नीचे पत्र लेखक का नाम होता है। जैसे- तुम्हारा मित्र, राम भाई, रामनगर, उत्तराखण्ड।
- अनौपचारिक पत्रों में दिनांक का अक्सर प्रयोग ऊपर दाईं ओर किया जाता है।
- विवाहोत्सव आदि निमंत्रण पत्रों को लिखते समय शुभ के लिए दोहों या श्लोकों का भी प्रयोग किया जाता है।

1.3.3 पत्र लेखन की भाषा शैली—

पत्र लेखन सम्प्रेषण का एक उचित माध्यम है। हम पत्र के माध्यम से अपने मानस पटल पर आने वाले विचारों को, अपने सम्बन्धों को और अधिक सुदृढ बनाते है। उचित ढंग से पत्र लिख पाना एक कला है। यदि आप अपने मनोभावों का सम्प्रेषण समुचित रीति से कर पाने में सफल होते हैं तो आपका पत्र-लेखन सार्थक होता है।

पत्र लेखन की भाषा शैली सरल, सुबोध, विषयानुकूल होनी चाहिए। जिससे उसकी भाषा में विषयानुकुल, गरिमा, शालीनता, शिष्टता प्रकट हो सके और लेखन सुंदर एवं सुवाच्य हो जिससे विचारों एवं भावों में स्पष्टता आ सके। पत्र को पूर्ण रूप से प्रभावशाली बनाने के लिए, उसमें विषयोचित योग्यता, स्वास्थ्य दृष्टिकोण का भाव होना आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखते हुए आगे हम अनौपचारिक एवं औपचारिक पत्रों की शैली के बारे में अध्ययन करेंगे। पहले औपचारिक पत्रों के स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।

औपचारिक पत्र की शैली एवं स्वरूप—

औपचारिक पत्र हम उसे लिखते हैं जिनके साथ हमारा कोई भी पारिवारिक संबंध या निजी संबंध नहीं होता इसके अंदर हम किसी भी प्रकार की बातचीत या आत्मीयता का समावेश नहीं करते। औपचारिक पत्र लेखन में हम नीचे बताए गए कुछ मुख्य बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

औपचारिक पत्रों को हम आधिकारिक या व्यावसायिक उपयोग के लिए लिखते हैं। इस पत्र को लिखने की शैली स्पष्ट, औपचारिक और सटीक है। कोई भी व्यावसायिक पत्र या तो ऑर्डर देने या पूछताछ के लिए, संपादकीय पत्र, नौकरी आवेदन पत्र इस प्रकार के पत्र के अंतर्गत आता है। किसी को औपचारिक पत्र संक्षिप्त और सारगर्भित रखना चाहिए। यद्यपि इसमे भी समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। औपचारिक पत्र लिखने से पहले यह ध्यान में रखना चाहिए कि पत्र लिखने वाला व्यक्ति लेखक या प्रेषक है।

औपचारिक पत्रों में सक्षिप्तता एवं स्पष्टता परमावश्यक है। ऐसे पत्रों में प्रमुख मुददों का उल्लेख मात्र होता है, उनका विस्तार से विश्लेषण नहीं किया जाता, क्योंकि पढ़ने वाले व्यक्ति के पास अधिक समय नहीं होता है। इनका आकार प्राय: एक से दो पृष्ठों तक का ही होता है। यह पत्र कई तरह के हो सकते है। परन्तु सभी आवेदन पत्रों की शुरुआत बायी और ऊपर से की जाती है।

औपचारिक पत्र के अंग—

- औपचारिक पत्र वह होता है, जिनसे हमारा कोई संबंध नहीं होता है। प्रधानाचार्य को आवेदन पत्र, प्रार्थना पत्र, आवेदन पत्र, बधाई पत्र, शुभकामना पत्र, धन्यवाद पत्र, संपादकीय पत्र, व्यवसायिक पत्र, सरकारी विभागों को लिखे गए पत्र आदि औपचारिक पत्र के उदाहरण हैं।
- औपचारिक पत्र में लिखी बात संक्षिप्त होनी चाहिए।
- पत्र का आरंभ व अंत प्रभावशाली होना चाहिए।
- भाषा और वर्तनी शुद्ध तथा लेख-स्वच्छ होना चाहिए।
- पत्र प्रेषक व प्राप्त करने वाले का पता साफ व स्पष्ट लिखा होना चाहिए।

- सर्वप्रथम सेवयाम् लिखा जाता है।
- अगली पंक्ति में उस अधिकारी का पदनाम तथा उससे अगली पक्ति में पता लिखा जाता है जिसके नाम पत्र भेजा जा रहा है।
- सम्बोधन के रूप में 'महोदय' शब्द का प्रयोग होता है।
- मुख्य विषय का आरम्भ निवेदन के रूप में किया जाता है। अतः वाक्य प्रायः निवेद्यते या निवेदनम् इदम् जैसे शब्दों से शुरू किया जाता है।
- पत्र के अन्त में शिष्टाचारवश सधन्यवाद लिखकर स्वनिर्देश के रूप में दायीं ओर भवदीय प्रार्थी भावत्क विनीत" जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है।
- अन्त में पत्र-लेखक अपने हस्ताक्षर करके अपना पता लिखता है। यहाँ तिथि नीचे बायीं ओर लिखी जाती है।
- व्यावसायिक पत्रों प्रायः संस्था के लेटर हेड पर लिखे जाते हैं।
- बायीं ओर शुरु में ही पत्रांक लिखा जाता है।
- द्वितीय पंक्ति में उस व्यक्ति या संस्था आदि का नाम और पता लिखा जाता है जिसे पत्र लिखा जा रहा हो।
- दायी और तिथि लिखी जाती है।
- सम्बोधन-हेतु प्रिय अथवा महोदय शब्द का प्रयोग होता है।
- इसके बाद मुख्य विषय लिखा जाता है।
- अन्त में भवदीय शब्द का व्यवहार होता है।
- उसके नीचे हस्ताक्षर किए जाते है

औपचारिक-पत्र का प्रारूप—

औपचारिक-पत्र के निम्न सात अंग होते हैं—

(1) पत्र प्रापक (प्राप्त करने वाला) का पदनाम तथा पता।

(2) विषय- जिसके बारे में पत्र लिखा जा रहा है, उसे केवल एक ही वाक्य में शब्द-संकेतों में लिखें।

(3) संबोधन- जिसे पत्र लिखा जा रहा है- महोदय/ महोदया/ माननीय आदि ।

(4) विषय-वस्तु-इसे दो अनुच्छेदों में लिखें ।

पहला अनुच्छेद - अपनी समस्या के बारे में लिखें।

दूसरा अनुच्छेद - आप उनसे क्या अपेक्षा रखते हैं, उसे लिखें तथा धन्यवाद के साथ समाप्त करें।

(5) हस्ताक्षर व नाम- भवदीय/भवदीया के नीचे अपने हस्ताक्षर करें तथा उसके नीचे अपना नाम लिखें।

(6) प्रेषक का पता- शहर का मुहल्ला/इलाका, शहर, पिनकोड।

(7) दिनांक।

प्रधानाचार्य को प्रार्थना-पत्र

1. सेवामें,

प्रधानाचार्य,

2. विद्यालय का नाम व पता.....
3. विषय : (पत्र लिखने के कारण)।
4. माननीय महोदय,
5. पहला अनुच्छेद .....
   दूसरा अनुच्छेद .....
6. आपका आज्ञाकारी शिष्य,
   क० ख० ग०
   कक्षा.....
7. दिनांक .....

पत्रलेखन प्रारूप—01

अवकाश के लिये प्रधानाचार्य को प्रार्थना-पत्र

परमादरणीयाः प्रधानाचार्यमहोदयाः !
डी.ए.बी. कालेज, रामनगर।
श्रीमन्तः !

सेवायां सविनयं निवेदनम् इदं यद् अहम् अद्य अकस्माद् ज्वर-पीड़ितः ज्ञातः अस्मि । अत एव विद्यालयम् आगन्तुं सर्वथा असमर्थः अस्मि । कृपया त्रयाणां दिवसानां (पञ्चदशाद् आरभ्य सप्तदश-तारिका-पर्यन्तं) अवकाशं स्वीकृत्य मां अनुग्रहीतुं अर्हन्ति भवन्तः ।

दिनाङ्कः — भवदीयः प्रियशिष्यः
15-02-2024 — राजेन्द्र
दशम-कक्षायां 'अ' वर्गः

पत्रलेखन प्रारूप—02

अवकाश के लिए आचार्य को प्रार्थनापत्र

श्रीमन्तः प्रधानाचार्य महोदयाः,
आर० डी० कालेज, रामनगर।
मान्याः !

सेवायां सविनयं निवेदनमिदम् यदहं दिनद्वयात् रुग्णोऽस्मि । विद्यालयमागन्तुं कथमपि न शक्नोमि । अतोऽहमष्टानां दिवसानामवकाशं याचे । आशासे, यत् निवेदनं स्वीकृत्य मामनुग्रहीष्यन्ति श्रीमन्तः । इति ।

दिनाङ्कः — श्रीमतामाज्ञाकारी शिष्यः
10-01-2024 — विश्वनाथः सप्तमकक्षास्थः

पत्रलेखन प्रारूप—03

विवाह हेतु अवकाश के लिये प्रार्थना-पत्र

परमश्रद्धेयाः प्रधानाचार्यवर्याः !

भवदीयेषु चरणकमलेषु सादरं प्रणिपत्य विनिवेद्यते यन्माघमासस्थ शुक्लैकादश्यां (दशदिवसानन्तरं) मम ज्येष्ठायाः भगिन्याः शुभपाणिग्रहणोत्सवः सम्पत्स्यते । यतोहि वैवाहिके

कार्य संरम्भेऽहमपि सर्वथा व्यस्तोऽस्मि, अतः न शक्नोमि विवाहसमाप्तिपर्यन्तं विद्यालयमागन्तुम्। तस्मादहं दशानांदिवसानामवकाशं याचे । आशासे, मम निवेदनं स्वीकृत्य मामनुग्रहीष्यन्ति श्रीमन्तः ।

दिनाङ्कः
10-02-2024

श्रीमतामाज्ञाकारी शिष्यः
तापश गर्ग
द्वादशकक्षायां 'अ' वर्गः
डी.ए.बी. कालेज, देहरादून।

पत्रलेखन प्रारूप—04

पुस्तक के लिए प्रकाशक को पत्र

श्रीप्रबन्धकमहोदयः,
चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।
श्रीमन् !

भवत्प्रकाशितं 'संस्कृत साहत्यि का इतिहास' नाम पुस्तकं मया दृष्टम् । कृपया पुस्तक-त्रयमधोल्लिखतस्थाने वी० पी० पी० द्वारा शीघ्रमेव प्रेषणीयम् ।

दिनांकः 01-01-2024

भवदीयः –प्रेमकश्यप
221, आर्यनगरम्, रामपुरम् ।

अनौपचारिक पत्र के अंग—

- अनौपचारिक पत्रों में काफी विविधता होती है। इनकी शैली और स्वरूप पर भी कोई विशेष नियम लागू नहीं होता।
- सर्व प्रथम पत्र के ऊपर बांई ओर पत्र प्रेषक का पता और पत्र-लेखन की तिथि पत्र के सबसे ऊपर दायीं ओर लिखी जाती है।
- जिस व्यक्ति को लिखा जा रहा हो- जिसे 'प्रेषिती' भी कहते हैं- उसके प्रति, सम्बन्ध के अनुसार ही समुचित अभिवादन या सम्बोधन के शब्द लिखने चाहिए। यह सम्बोधन अत्यन्त व्यक्तिगत होता है। माता-पिता या अन्य सम्मान्य व्यक्तियों के लिए प्रायः "श्रद्धेय "पूज्य", "पूजनीय", "आदरास्पद" "मान्य", "माननीय" जैसे विशेषणों का प्रयोग होता है। समान उम्र अथवा छोटों के लिए प्राय 'प्रिय" विशेषण का प्रयोग होता है। अभिवादन के रूप में "प्रणाम" नमो नम", "नमस्कार" स्नेहाशीष "शुभाशीर्वाद". "चिर जीव" "शुभ भूयात् आदि शब्दों का प्रयोग होता है। यह पत्रप्रेषक और प्रेषिती के सम्बन्ध पर निर्भर है कि अभिवादन का प्रयोग कहाँ, किसके लिए, किस तरह किया जाय।
- पिता को पत्र लिखते समय हम प्रायः 'पूज्य पिताजी' लिखते हैं।
- शिक्षक अथवा गुरुजन को पत्र लिखते समय उनके प्रति आदरभाव सूचित करने के लिए 'आदरणीय' या 'श्रद्धेय'-जैसे शब्दों का व्यवहार करते हैं।

- यह अपने-अपने देश के शिष्टाचार और संस्कृति के अनुसार चलता है।
- अपने से छोटे के लिए हम प्रायः 'प्रियवर', 'चिरंजीव'-जैसे शब्दों का उपयोग करते हैं।
- पत्र के अन्त में प्राय: एकबार फिर अभिवादन होता है।
- पत्र के सबसे नीचे दाहिनी ओर पत्र का लेखक अपना हस्ताक्षर करता है। परन्तु हस्ताक्षर के पूर्व स्वनिर्देश लिखता है। यह स्वनिर्देश "भावत्क" भवदीय

अनौपचारिक-पत्र का प्रारूप—

प्रेषक का पता.....
दिनांक .....
संबोधन .....
अभिवादन .....
पहला अनुच्छेद ..... (कुशलक्षेम).....
दूसरा अनुच्छेद .....(विषय-वस्तु-जिस बारे में पत्र लिखना है).....
तीसरा अनुच्छेद .....(समाप्ति).....
प्रापक के साथ प्रेषक का संबंध
प्रेषक का नाम .....

अनौपचारिक पत्रलेखन प्रारूप—01

पिता को पत्र

हल्द्वानीतः
तिथिः चैत्रशुक्ला-पंचमी
वि० सं० 2069

श्रीमत्सु माननीयेषु पितृपादपद्मेषु ! सादरं प्रणतिः ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । अत्र उ0मु0विश्वविद्यालये मम प्रवेशो जातः । प्रवेशदिवसे पितृव्य: मया सह विश्वविद्यालयं गत्वा शुल्कन्यासमकरोत् । आचार्येनिदिष्टानि पाठ्यपुस्तकानि क्रीत्वा अहमध्ययने प्रवृत्तोऽस्मि । झटिति गृहस्य वृत्तं लेख्यम् । मातरं प्रति मे प्रणामः ।

भावत्कः आज्ञाकारी पुत्रः
कृष्णराज:

पत्रलेखन प्रारूप—02

मित्र को पत्र

उ0मु0विश्वविद्यालयः हल्द्वानीतः
दिनाङ्कः 02-05-2023

प्रियमित्र जगदीश ! नमस्तेऽस्तु ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । पत्रं प्राप्तम् । एतदवगत्य सर्वेऽपि हर्षमनुभवन्ति यद् भवान् एम.ए. संस्कृतपरीक्षामुत्तीर्णः । सर्वे छात्राः साधुवादान् वितरन्ति । शेषमन्यत् कुशलम् । त्वरितं पत्रोत्तरं देयम् ।

अभिन्नहृदयः
शिव:

पत्रलेखन प्रारूप—03

निमन्त्रणपत्र

श्रीमन्महोदय !

भवन्त एतद् विदित्वा नूनं हर्षमनुभविष्यन्ति यत्परमात्मनः महत्यानुकम्पया मम ज्येष्ठपुत्रस्य श्रीराजेशकुमारस्य शुभपाणिग्रहसंस्कारः रघुगर्गस्य श्रीनअखिलचन्द्रस्य ज्येष्ठपुत्र्या सरोजिनीदेव्या सह आगामिन्यां ज्येष्ठमासस्य शुक्लपक्षस्य नवम्यां तिथौ रविवासरे रात्रौ अष्टवादनसमये सम्पत्स्यते । तदर्थमिदं निमन्त्रणपत्रं प्रेषयित्वा आशास्महे यद् भवन्तः सपरिवारमस्मिन् मङ्गलकार्ये निदिष्टसमये समागत्य शुभाशीर्वादप्रदानेन बरवधूयुगलमनुग्रहीष्यन्ति ।

111, रामविहार, रामपुरम् दर्शनाभिलाषी
दिनाङ्कः 02-05-2023 रमेशचन्द्रः

पत्रलेखन प्रारूप—04

पिता से पुस्तक क्रय करने हेतु धन मागने के लिए पत्र

पूज्यवर पिताश्री: स्थानः रामनगरम्
चरणस्पर्शः दिनांकः 10-10-2023

अहम् अत्र कुशलं तत्रास्तु। अस्मिन पत्रेण कथनीयं अस्ति यत् अहं विद्या अध्ययने मनोयोगेन लीनः अस्मि। च अहं आशां करोमि यत् अस्मिन् वर्षे परीक्षायां सर्वप्रथम क्रमांके उत्तीर्ण: भविष्यति। अतः पुस्तकादिव्ययस्य कृते धनं प्रेषयतु। मातृचरणयोः मम प्रणाम:। श्रेष्ठेभ्योः नमः कनिष्ठेभ्योः स्नेहः।

भवतां पुत्रः
रमेश

पत्रलेखन प्रारूप—05

पिता से भ्रमण पर जाने हेतु धन मागने के लिए पत्र

परमपूज्य पितृमहाभागः रामनगर
चरणेषुप्रणामः 10– 02– 2024

अत्र कुशलं तत्रास्तु। अस्मिन् पत्रेण कथनीयं अस्ति यत् मम वार्षिक परीक्षा समाप्तिं गता। अस्माकं विद्यालयस्य सर्वे छात्राः शिक्षकैः सह शैक्षिक भ्रमणार्थं गमिष्यन्ति। अहमपि

अस्यां भ्रमणार्थं गंतुम इच्छामि। एतदर्थं भवतः मम मार्ग व्ययार्थं रूप्यकानि संप्रेषयन्तु। च मातृचरणयोः मम प्रणामः। श्रेष्ठेभ्योः प्रणामः कनिष्ठेभ्योः स्नेहः।

भवतां पुत्रः
महेश:

पत्रलेखन प्रारूप—06

जन्मदिवस हेतु निमन्त्रणपत्र

प्रिय मित्र दीपेशः स्थान: रामनगरम्
नमोनमः दिनांक: 10- 02-2024

अत्र कुशलं तत्रास्तु। तव पत्रं मया प्राप्तं कुशलतां ज्ञात्वा प्रसन्नता जाता। विशेषरूपेण अनुरोधं अस्ति यत् मम जन्मदिवस उत्सवः स्वः भविष्यति । अस्मिन् अवसरे भवान् पञ्च दिवस पूर्वमेव आगत्य अस्य कार्यक्रमस्य शोभां वर्धस्व।

भवतः मित्रम्
महेश

पत्रलेखन प्रारूप—07

मित्र को निमन्त्रणपत्र

प्रिय मित्र – महेश: रामनगर
सप्रेम नमस्ते! 10–02–2024

अत्र कुशलं तत्रास्तु। तव पत्रं मया प्राप्तम् कुशलतां ज्ञात्वा प्रसन्नता जाता। विशेषरूपेण अनुरोधं अस्ति यत् मम भागिन्या विवाहः अग्रे मासे भविष्यति। अस्मिन् अवसरे भवान् पञ्च दिवसः पूर्वमेव आगत्य अस्य कार्यक्रमस्य शोभां वर्धस्व।

भवतः मित्रम्
प्रियांशु:

पत्रलेखन प्रारूप—08

यज्ञोपवीतसंस्कार का निमन्त्रणपत्रम्

(श्रीमङ्गलमूर्तये नमः)

गजाननं भूतगणादिसेवितम्, कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकम्, नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ।।

श्रीमन्महोदये !

परमात्मनः महत्यानुकम्पया ज्येष्ठमासस्यागामिन्यां नवम्यां तिथौ तदनुसारं जूनमासस्य अष्टाविशति-तारिकायां गुरुवासरे मम पुत्रयोः चिरं- जीविनोः अनिलकुमार-सुनीलकुमारयोः (अनूप-मृदुलयोः) शुभयज्ञोपवीत- संस्कारः सम्पत्स्यते । - एतस्मिन् मङ्गलकार्य सपरिवारं समागत्य श्रीमन्तः शुभाशीर्वादप्रदानेन वटुकद्वयमनुग्रहीष्यन्ति - इत्याशास्महे ।

दर्शनाभिलाषी-
रमेशकुमार कश्यप
कश्यपनिलयम्' रामनगरम्।

पत्रलेखन प्रारूप—09

परीक्षापरिणा के सन्दर्भ में पिता को पत्र

दिनाङ्क: 11.01.2024

आदरणीय पितृमहोदय !

शुभं समाचारम् अस्ति यत् मम अर्धवार्षिक्या: दिल्लीनगरात् परिणाम: आगत: । अहं परीक्षाया: अशीति: प्रतिशतं अङ्कानि प्राप्तवान् , किन्तु इदं अहं भवानपि चिन्तित: भविष्यति यत् संस्कृतविषये परीक्षायाम् सुष्ठु अङ्कान् प्राप्तुं समर्थ: न अभवम् । अद्यत: अहं अधिकम् अभ्यासम् करिष्यामि ।

आशा अस्ति यत् ज्ञात्वा भवत: अशीर्वादेन आगामि-वार्षिक-परीक्षायाम् अपि प्रतिशतं नवति: अङ्कान् प्राप्स्यामि । मातरम्-अग्रजं प्रति अपि मम चरणस्पर्श: कथनीय: ।

भवत: पुत्रः
राहुल:
नमो नम:

अभ्यास प्रश्न—

1. पत्रों को मुख्यतः कितने वर्गों में विभाजित किया जाता है ।

   क. दो वर्गों में
   ख. तीन वर्गों में
   ग. चार वर्गों में
   घ. पांच वर्गों में

2. औपचारिक पत्रों के अन्तर्गत आते हैं।

   क. सरकारी पत्र
   ख. प्रधानाचार्य को पत्र
   ग. सम्पादक को पत्र
   घ. उक्त सभी

3. औपचारिक पत्रों के अन्तर्गत आते हैं।

   क. आत्मीय सम्बंधियों को पत्र
   ख. सामाजिक पत्र
   ग. जन्मोत्सव पत्र
   घ. उक्त सभी

1.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पत्र लेखन के विविध प्रकारों के विषय में जाना की विचारों और भावों के आदान-प्रदान करने के लिए पत्र प्रमुख माध्यम है। हमारे जीवन में अनेक ऐसे अवसर होते हैं। जब हम पत्र लिखने को तत्पर हो जाते हैं। पत्र की अपनी एक विशेषता भी है कि जिन भावों को हम प्रत्यक्ष रूप से अथवा दूरभाष (टेलिफोन) के माध्यम से भी नहीं कह सकते हैं उन्हें पत्र के माध्यम से भेज सकते हैं। दूर रहने वाले अपने सबन्धियों अथवा मित्रों की कुशलता जानने के लिए तथा अपनी कुशलता का समाचार देने के लिए पत्र एक साधन है। इसके अतिरिक्त अन्य कार्यालयी कार्यों के लिए भी पत्र लिखे जाते है। विभिन्न पत्रों के लेखन की पृथक-पृथक् पद्धति भी आपकी समझ में आ गई है। अनौपचारिक एवं औपचारिक स्थितियों में शैली का रूप तथा भाषा का स्वरूप किस तरह भिन्न-भिन्न होता है, यह भी आप जान गए हैं। साथ ही विभिन्न प्रकार के पत्रों का अन्तर भी आपने जान लिया है।

1.5 पारिभाषीक शब्दावली

शब्द	**-**	**अर्थ**
औपचारिक पत्र	-	ऐसे पत्र जो किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन लोगों के पास भेजे जाते हैं जिनसे हमारे सम्बंध मात्र औपचारिक होते हैं
अनौपचारिक पत्र	-	ऐसे पत्र जो अपने आत्मीय सम्बंधियों, रिश्तेदारों, परिचितों आदि को लिखे जाते हैं अनौपचारिक पत्रों की श्रेणी में आते हैं।
प्रापक	-	पत्र प्राप्त करने वाला।
संबोधन	-	जिसे पत्र लिखा जा रहा है।
प्रेषक	-	पत्र भेजने वाला।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.क

2.घ

3.घ

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गिरधर रावत,कार्यालयीन हिन्दी,आशा बुक्स, सोनिया विहार, दिल्ली।

2. गहन हिन्दी शिक्षण - ठाकुरदास तथा बी०रा०जगन्नाथन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस दिल्ली

1.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. प्राज्ञ-पाठमाला राजभाषा विभाग, गृह मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पत्र लेखन के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

2. पत्र लेखन की भाषा शैली को अपने शब्दों में लिखिए।

3. पत्रलेखन विधि पर प्रकाश डालिए।

4. औपचारिक पत्रों से आप क्या समझते हैं, विरूतार से समझाएँ।

5. पत्र लेखन क्या है, रूपरूट कीजिए तथा उसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

6. अनौपचारिक पत्रों के किन्ही दो प्रारूपों में पत्र लिखिए।

इकाई.2 निबन्ध लेखन विधि एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 निबन्ध लेखन विधि एवं प्रकार
2.3.1 निबन्ध का अर्थ एवं स्वरूप
2.3.2 निबन्ध लेखन के प्रकार
2.3.3 निबन्ध लेखन विधि
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषीक शब्दावली
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

संस्कृत व्याकरण-पत्रलेखन एवं निबन्ध नामक पाठ्यक्रम के तृतीय खण्ड से सम्बन्धित यह द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने पत्र लेखन विधि एवं प्रकार के विषय में विस्तार से जाना। प्रस्तुत इकाई में निबन्ध लेखन विधि एवं प्रकार के विषय में चर्चा करेंगे।

किसी विषय पर अपने विचारों और भावों को सुन्दर, क्रमबद्ध भाषा में लिखने को निबन्ध कहते हैं। 'निबन्ध' साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने मौलिक चिंतन तथा गम्भीर विचारों को तार्किकता के साथ कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है।

इस इकाई में आप जानेंगे कि 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य क्या है ? इसका स्वरूप कैसा होता है ? निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं, तथा उनकी विवेचना कैसे की जाती है। इसके साथ ही आप यह भी जान सकेंगे कि निबन्ध लेखन, साहित्य की अन्य विधाओं से किस तरह भिन्न है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- निबन्ध का अर्थ एवं स्वरूप क्या है ? इस विषय से अवगत हो सकेंगे।
- निबन्ध लेखन प्रकार के के विषय में जान सकेंगे।
- निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन से हैं ? इससे परिचित होंगे।
- निबन्ध साहित्य अन्य विधाओं से भिन्न क्यों है ? सह जानने में समर्थ हो सकेंगे।

2.3 निबन्ध लेखन विधि एवं प्रकार

2.3.1 निबन्ध का अर्थ एवं स्वरूप—

नि उपसर्ग पूर्वक बधि (बन्धने) धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करने पर निबन्ध शब्द की उत्पत्ति हुई है इससे अभिप्राय है किसी विषय पर अपने विचार या भावों को विशेष रूप से निबद्ध करना। संस्कृत में इसकी व्याख्या **"निःशेषेण बध्यन्ते विचारा अस्मिन् इति निबन्धः"** इस प्रकार की जा सकती है। सुबन्धु की वासवदत्ता में भी कहा गया है— **"प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिं निबन्धं चक्रे"** । शब्दकल्पद्रुम में निबन्ध शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी गयी है— **"निबध्नातीति निबन्धः"** । अतः निबन्ध शब्द का अर्थ हुआ कसा हुआ, गंठा हुआ, बंधा हुआ। प्राचीन काल में हस्तलिखित ग्रन्थों को सीकर रखा जाता था। सीने की इस क्रिया का नाम ही निबन्ध था। निबन्ध अर्थात् संवार कर सीना। वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत हिन्दी शब्द कोष में निबन्ध का अर्थ दिया है— बांधना, जोड़ना, आसक्ति, रचना, संयम, श्रृंखला आदि। संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त निबन्ध शब्द विशेष रूप से बन्ध, तथा कसाव और संगठन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

शब्दिक अर्थ में 'निबन्ध' का अर्थ है— पूर्ण रूप से बंधा हुआ, अर्थात् एक ऐसी साहित्यिक विधा जिसमें लेखक द्वारा अपने मनोभावों एवं विचारों को सम्यक रूप से एकत्र करके कलात्मक शैली में स्वछन्दता पूर्वक अभिव्यक्त किया जाता है। संस्कृत साहित्य में

स्मृतियों की व्याख्याओं तथा भोजपत्रों में लिखित मौलिक रचनाओं को सँवारकर ग्रंथित करने या बाँधने के लिए 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग मिलता है।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने 'प्रबन्ध पारिजात' में निबन्ध की परिभाषा इस प्रकार दी है— **"यं कंचन विषयमवलम्ब्य युक्तिप्रमाणोदाहरणैस्तत्स्वरूप तदुपयोग तन्महत्त्वादिप्रतिपादनपुरः सरं सरसशैली-निबद्धो, वाग्गुम्फ एव सम्प्रति संस्तूयते शिक्षितैर्निबन्धनाम्ना"।** निबन्ध के लिए 'प्रबन्ध' व 'प्रस्ताव' शब्द का प्रयोग भी किया गया है। **'प्रकर्षेण बध्यन्ते विचाराः अस्मिन्निति प्रबन्धः'** अर्थात् जहाँ विचारों को प्रकृष्ट रूप से बाँधा जाये प्रबन्ध कहते है तथा **'प्रस्तूयते विशिष्टो विचारोऽस्मिन्निति प्रस्तावः'** अर्थात् जहाँ विचारों को विशिष्ट रूप प्रस्तुत किया जाये, उसे प्रस्ताव कहते है। इस प्रकार निबन्ध शब्द के लिए व्यवहृत तीनों शब्द एक ही अर्थ को अभिव्यक्त करते है। वर्तमान में निबन्ध विधा का प्रयोग जिस अर्थ में हो रहा है सामान्यतः वह अंग्रेजी के Essay के पर्याय अर्थ में हो रहा है। इसमें लेखक एक विषय विशेष, एक अंग विशेष या विचार बिन्दु को लेकर अपने विचार निबद्ध करता है। निबन्ध विद्या गद्य की मौलिक एवं सर्जनात्मक विद्या है। इस विधा को मौलिक व सर्जनात्मक इसलिए माना गया है क्योंकि इसमें मौलिक एवं वैयक्तिक विचार लेखक की अपनी शैली में अभिव्यक्त होते है। एक ही विषय पर दो भिन्न लेखकों के विचार भिन्न-भिन्न तथा विपरीत शैली में निबद्ध हो सकते है। निबन्ध किसी एक विषय पर लिखी गई लघु आकार की गद्य-रचना होती है। वस्तुत निबन्ध-लेखन एक कला है। **"गद्य कवीना निकष वदन्ति"** अर्थात् गद्य-लेखन कविता की कसौटी माना गया है। इसमें लेखक के विचारों, भावों की क्रमबद्धता रहती है तथा विषय से सम्बन्धित विभिन्न बिन्दुओं का विस्तार किया जाता है।

पाश्चात्य विद्वानों के मत में निबन्ध की परिभाषा—

1. मान्ते के अनुसार—

फ्रांसीसी विद्वान् तथा प्रथम निबन्धकार मान्ते के शब्दों में निबन्ध निबन्धकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होनी चाहिये। मैं अपने निबन्धों में स्वयं को चित्रित करता हूँ और अपनी पुस्तकों का मैं स्वयं ही विषय हूँ।

2. बेकन के अनुसार—

बेकन के शब्दों में निबन्ध विचारों का वह संक्षिप्त विवेचन है जिसमें बुद्धि तत्व की प्रधानता होती है।

3. डॉ. जानसन के अनुसार—

डॉ. जानसन के शब्दों में निबन्ध मस्तिष्क की स्वच्छंद सूझ अव्यवस्थित कड़ी और मुक्तक प्रयास है।

4. श्री जे.बी. प्रीस्टले के अनुसार—

श्री जे.बी. प्रीस्टले के शब्दों में सच्चा निबन्ध रहस्यालय या प्रेम से किये हुए संलाप के समान होता है और सही मायने में जो निबन्ध होते हैं, पाठकों से उनकी हित वार्ता चतुराई से भरी तथा प्रभावोत्पादक होती है। निबन्धकार एक-एक शब्द अपने हृदय के अंतरंग से बोलता है। उसका लेखन अन्तः स्थल की आकुलता को व्यक्त करता है।

5. एडिसन के अनुसार—

एडिसन के शब्दों में निबन्ध में विचार धारा तरल और मिश्रित होती है। उसका प्रवाह कभी साधारण उपदेशात्मकता की ओर उन्मुख रहता है, कभी वैयक्तिक आत्माभिव्यंजन की ओर।

हिन्दी विद्वानों के मत में निबन्ध की परिभाषा—

1.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबन्ध को गद्य की कसौटी मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा 'एस्से' के बताए गए लक्षणों के आधार पर वे, निबन्ध के विषय में कहते हैं- "निबन्ध उसी को कहना चाहिये, जिसमें व्यक्तित्त्व अर्थात् व्यक्तिगत विषेषता हो।"

2. डॉ. गुलाबराय—

निबन्ध उस गद्य रचना को कहते है जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वछन्दता, सौष्ठव और सजीवता साथ ही आवश्यक संगति और सुसंबद्धता के साथ किया गया हो।

3. डॉ. भागीरथ मिश्र—

प्रायः वह गद्य रचना जिसमें किसी विषय का श्रृंखलित विवेचन अथवा वैयक्तिक या विचारधारा को क्रमबद्ध रोचक प्रकाशन प्रस्तुत किया जाता है, निबन्ध कहलाता है।

4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—

आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिये जिसमें व्यक्तित्व अथवा व्यक्तिगत विशेषता हो।

5. नन्ददुलारे वाजपेयी—

जब लेखक अपनी सारगर्भित अभिव्यक्ति को किसी विषय के साँचे में ढालकर तथा अपने व्यक्तित्व की सामर्थ्यानुसार परिमार्जित भाषा से उसे गद्य में प्रस्तुत कर देता है, तब एक अच्छे निबन्ध का जन्म होता है।

उपर्युक्त परिभाषाएं को पढ़कर आप यह जान ही चुके होंगे कि सभी विद्वानों ने निबन्ध के विषय में कुछ-न-कुछ विषेष बात अवश्य कही है। आइये, अब यह भी जानें कि संस्कृत साहित्य में निबन्ध लेखन का शुभारम्भ कब से हुआ, और संस्कृत के प्रमुख निबन्धकार कौन-कौन हैं।

संस्कृत निबन्ध लेखन की परम्परा—

संस्कृत साहित्य में निबन्ध लेखन की प्राचीन परम्परा विद्यमान है। इसमें विमर्शात्मक निबन्ध तथा प्रबन्ध आदि आते हैं। धर्मशास्त्र के इतिहास में गद्यबद्ध विवेचनात्मक प्रबन्ध हेमाद्रि आदि को निबन्ध के नाम से ही जाना जाता है। यह ग्रन्थों भाष्य ग्रन्थों आदि के रूप में मिलते है जिन्हें 'सन्दर्भ' भी कहा जाता है। यह दस व पन्द्रह से प्रारम्भ होकर सौ पृष्ठों तक का भी हो सकता था। पं. जगन्नाथ ने रसगंगाधर को 'संदर्भ' कहा है तथा श्रीमद्भागवत पर लिखे गद्य ग्रन्थों को भी भागवतसंदर्भ कहा गया है। ललित निबन्ध हमारे भारतीय साहित्य में बहुत कम मिलते है परन्तु पं. बलदेव उपाध्याय कहते है कि 'यदि ललित निबन्धों के उदाहरण प्राचीन साहित्य में खोजे तो उन्हें भी अलंकृत शैली में लिखे गये स्तुतिपरक 'दंडकों तक भी ले जाया जा सकता है किंतु वैसा निबन्ध साहित्य सही अर्थो में पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क का परिणाम है, यह मानने में संकोच करना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

संस्कृत निबन्ध लेखन की उत्पत्ति—

संस्कृत में आधुनिक निबन्ध लेखन पर पाश्चात्य प्रभाव माना जाता है। वर्तमान में प्रचलित व्यक्तिव्यंजक या ललित निबन्ध का उद्भव फ्रांस में हुआ। फ्रांसिसी साहित्यकार मान्तेन इसके प्रवर्तक है। इनका पूरा नाम Moniaigne, Michel de है, इनका जन्म 1533 में तथा मृत्यु 1592 में हुई। मान्ते का 1580 में पेरिस से निबन्धों का संकलन प्रकाशित हुआ जिसे Essais नाम दिया गया। इस संकलन में धर्म, नागरिकता, सभ्यता तथा मानव जीवन से सम्बंधित विविध विषयों पर विचार अभिव्यक्त किये गये। यह विधा विद्वानों में इतनी लोकप्रिय हुई कि इग्लैंड में इसे Essay नाम से अपनाया गया। वेकन, एडिसन, ए.जी. गार्डिनर आदि अनेक विद्वान निबन्ध लेखन की विधा में प्रसिद्ध हो गये।

धीरे-धीरे यह विधा विश्व की समस्त भाषाओं में लोकप्रिया हो गयी तथा सर्जनात्मक गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा माने जाने लगी। इस विधा के प्रचार-प्रसार में भी पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा। साहित्य के क्षेत्र में यही विधा ललित निबन्ध' है।

संस्कृत में विमर्शात्मक गद्य का इतिहास तो बहुत पुराना है। ब्राह्मण ग्रन्थ, स्फोट सिद्धान्त, वैदिक विज्ञान आदि पर जो शास्त्रीय विमर्श है वह शास्त्रीय निबन्ध की श्रेणी में आते है। सर्जनात्मक निबन्ध इनसे भिन्न है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य निबन्ध लेखन में पत्र पत्रिकाओं का विशेष भूमिका रही। प्रारम्भ में ललित निबन्ध या सर्जनात्मक निबन्धों की अपेक्षा विवेचनात्मक व विमर्शात्मक निबन्ध अधिक थे। इसके दो कारण माने गये।

1. साहित्यिक पत्रिकाओं में ऐसे निबन्धों की आवश्यकता महसूस हुई जो पाठकों को रोचक जानकारी दे।
2. कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के विभिन्न पाठ्यक्रमों में शास्त्रीय विषयों के साथ-साथ, निबन्ध लेखन, रचना, अनुवाद आदि अभ्यास के पाठ्यक्रम रखे गये अतः निबन्ध संकलनों की आवश्यकता महसूस हुई और इनमें विमर्शात्मक निबन्ध ही अधिक थे।

संस्कृत में विमर्शात्मक निबन्ध लेखन में विद्योदय व संस्कृतचन्द्रिका आदि पत्रिकाओं व उनके सम्पादकों का महत्पूर्ण स्थान है। विद्योदय के सम्पादक 'हृषीकेशभट्टाचार्य का बंगाल के कवि चंडीदास के कृतित्व पर चंडीदासस्य' तथा अप्पाशास्त्री जी का धारावाहिक निबन्ध 'कालिदासः' पत्रकारिता के क्षेत्र में गणनीय निबन्ध है। हृषीकेश भट्टाचार्य के 'आत्मवायोरूदगारः' शीर्षक से लिखे गये निबन्ध ललित निबन्ध थे जिनमें लेखक ने रूढ़िवादिता व स्वार्थपरता पर प्रहार किया है। काल्पनिक पात्र दुर्गानन्द स्वामी की आत्मकथा का रूप देकर उदर को ब्रह्मा बताते हुए 'उदरसूत्र लिखे।

2.3.2 निबन्ध लेखन के प्रकार—

निबन्ध से तात्पर्य ऐसे लेखों से है जिनमें विचार-परम्परा के साथ-साथ लेखक अपने विचारों, भावों और मनोवृत्तियों का प्रकाशन अपनी भाषा एवं शैली में कर सके। निबन्ध अर्थात् नि (भली प्रकार) बन्ध (बाधना)। किसी विषय पर सुन्दर गठा हुआ सुव्यवस्थित लेख निबन्ध कहलाता है।

वर्तमान समय में निबन्ध आत्मनिष्ठता से वस्तुनिष्ठता की ओर उन्मुख हुए हैं, यही कारण है कि आज वे केवल आत्माभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रह गए हैं, वरन् उसका फलक

अत्यन्त विस्तृत हो गया है। निबन्ध की विविध शैलियों व विविध विधायें होने के कारण निबन्ध को मुख्यत: चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । साथ ही अन्य विधाओं का वर्णन भी क्रमश: किया जा रहा है।—

1. वर्णनात्मक निबन्ध (वर्णन-प्रधान निबन्ध)—

वर्णन-प्रधान निबन्धों में किसी मेले का वर्णन, किसी उत्सव की विधि आदि का वर्णन, किसी सुरम्य स्थान का वर्णन, किसी दृश्य का वर्णन, किसी यात्रा का वर्णन, किसी नदी, पर्वत, पशु पक्षी, नगर, ग्राम, समुद्र, सूर्योदय, सूर्यास्त यात्रा एवं त्यौहार आदि का आदि विषयों के स्वरूप, गुण-दोष आदि का वर्णन करना 'वर्णनात्मक' निबन्ध कहलाता है। वर्णनात्मक निबन्ध में दृष्ट, श्रुत या पठित विषयों का संक्षेप में रोचक शैली में वर्णन किया जाता है।

2. विवरणात्मक निबन्ध (चरित-प्रधान निबन्ध) —

चरित-प्रधान निबन्धों में किसी धार्मिक नेता, राजनीतिक नेता, साहित्यस्रष्टा, आदि के जीवन की विविध घटनाओं पर प्रकाश डालना और उसके कृत्यों की समालोचना करना, ऐतिहासिक घटनाओं, महापुरुषों के जीवन-चरित्रों एवं यात्राओं आदि के निबन्ध आते हैं।

3. आलोचनात्मक निबन्ध (साहित्यिक निबन्ध)—

साहित्यिक निबन्धों में साहित्य के किसी ग्रन्थ पर, साहित्यकार की सामान्य कृतियों पर, साहित्य की किसी धारा के इतिहास पर, साहित्य सम्बन्धी मान्य परम्पराओं में से किसी एक राह पर किसी कवि या लेखक के विचारों एवं ग्रन्थों या किसी प्राचीन साहित्य पर आलोचनात्मक ढंग से विवेचन करना 'आलोचनात्मक निबन्ध कहलाता है। इसमें कवि के सम्बंध में या उसके काव्य में प्रचलित सूक्तियों पर भी विवेचन किया जाता है। इसके अन्तर्गत सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक लेख भी आते हैं।

4. विचारात्मक निबन्ध (भावात्मक निबन्ध) —

भावात्मक निबन्धों में भाव और विचारों की ही प्रधानता रहती है। यथा- मोक्ष, आस्तिक-नास्तिक वाद, प्रेम, ईर्ष्या, कलह, विराग, आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, उपदेशात्मक आदि। इनके अन्तर्गत ऐसे निबन्ध भी आते हैं जिनमें किसी अमूर्त विषयों का चित्रण (भाव मनोविकार) इनमें प्राय गुण, दोष-लाभ एवं हानि आदि का चिन्तन होता है। क्रोध, धैर्य, दया, परोपकार एवं स्वदेश-प्रेम आदि इसी कोटि में आते हैं। विचारात्मक निबन्ध में पहले विषय की स्थापना करनी चाहिये फिर उसके गुण दोषों का विवेचन करते हुए उपसंहार करना चाहिये।

5. समस्या-प्रधान निबन्ध —

सामयिक समस्याओं पर लिखे गये निबन्धों का भी अपना विशेष महत्त्व है। यथा- निर्धनता, निष्कर्मण्यता, साम्प्र- दायिकता, सामाजिक बन्धन, शिक्षा-चिकित्सा आदि ।

6. उपदेश-प्रधान निबन्ध —

ऐसे निबन्धों की संख्या बहुत है। बच्चों और सामान्य विद्यार्थियों के लिये इनका विशेष महत्व है, क्योंकि इनके उनके चरित्र निर्माण के लिये पर्याप्त प्रेरणा मिलती है। यथा-परोपकार, हिंसा, सेवा, देश-प्रेम, सत्संगति, उद्योग, धैर्य आदि ।

7. विज्ञान-सम्बन्धी निबन्ध —

विज्ञान के विविध चमत्कार, उनसे प्राप्त सुख- सुविधायें, हानि आदि पर विचार आदि ।

8. आख्यानात्मक निबन्ध—

किसी ऐतिहासिक महापुरूष, विद्वान्, प्रचारक, समाजसुधारक आदि के चरित, घटना आदि पर विवेचन करना आख्यानात्मक निबन्ध कहलाता है। आख्यानात्मक निबन्धों में आत्मकथा का परिगणन भी किया जाता है।

9. भावात्मक निबन्ध—

किसी वस्तु दृश्य या भाव का भावुकतामय शैली में वर्णन करने को ही भावात्मक निबन्ध कहते है। इस कोटि के निबन्धों में भावों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति लेखक का निजीपन, काव्यात्मकता, सजीवता आदि गुण विशेष रूप से देखे जाते हैं।

10. विविध निबन्ध —

ऊपर बताये गये विषयों के अतिरिक्त भी अनेक विषयों पर निबन्ध लिखे जा सकते हैं। यथा-किसी व्यक्ति, किसी परम्परा, किसी वाद, किसी गीत आदि पर व्यंग्य, बच्चों के लालन-पालन सम्बन्धी, गर्भरक्षा आदि, बागवानी, मनबहलाव के साधन या किसी के जीवन की कोई घटना आदि।

निबन्ध-सामग्री संग्रह के मुख्य साधन—

निबन्ध-सामग्री एकत्र करने के तीन साधन है— (1) निरीक्षण, (2) भ्रमण, (3) स्वाध्याय

(1) निरीक्षण— इससे हमारे ज्ञान-कोष की वृद्धि होती है। इसमें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक,जिल्ला, त्वचा) सहायक होती हैं। अतः लेखक को अपनी ज्ञानेन्द्रियाँ सदैव जागरूक रखनी चाहिए।

(2) भ्रमण— भ्रमण और निरीक्षण कार्य दोनों साथ साथ चलते हैं। जहाँ हम भ्रमण करने जाते हैं, वहाँ ज्ञानेन्द्रियों द्वारा नई चीजें ग्रहण करते हैं।

(3) स्वाध्याय— इसके लिए हमें भाषा और भाब की दृष्टि से उच्चकोटि के साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। इससे हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है।

2.3.3 निबन्ध लेखन विधि—

निबन्ध लेखन कि भाषा शैली—

सामान्यतः भाषा संप्रेषणीयता, अर्थात् अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाने का सहज माध्यम है, किन्तु निबन्ध लेखन में भाषा का महत्त्व इससे कुछ अधिक है, क्योंकि इसमें निबन्धकार के लिए भाषा, केवल अपने भावों एवं विचारों को पाठक तक पहुँचाने का साधन मात्र नहीं होती। इसमें लेखक विषय को प्रभावशाली बनाने के लिए शब्द-चयन, वाक्य-रचना तथा भाषा में नवीनता लाकर निबन्ध को निखारने का प्रयास भी करता है। यही कारण है कि निबन्ध में हमें, कहीं सरल शब्द और छोटे वाक्य दिखाई देते हैं, तो कहीं कठिन शब्दों तथा अनेक उपवाक्यों से मिलकर बने लम्बे वाक्यों का प्रयोग मिलता है। यह सत्य है कि निबन्ध की भाषा और शैली के माध्यम से ही हम, निबन्ध- लेखक के व्यक्तित्त्व से भी परिचित होते हैं, किन्तु निबन्ध की लोकप्रियता के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा ऐसी हो, जो विषयवस्तु को सहजग्राह्य बनाने में सफल हो सके।

प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्त्व दूसरे से भिन्न होता है, यही कारण है कि एक लेखक की निबन्ध-शैली दूसरे से भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त निबन्धकार अपने भावों एवं विचारों को जिस रूप में प्रस्तुत करता है, अभिव्यक्ति के उस तरीके को ही निबन्ध की शैली कहा जाता

है। कुछ लोग अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए किसी लोकोक्ति-मुहावरे, दोहे-चौपाई, श्लोक, अथवा जीवन- अनुभवों के उदाहरणों का सहारा लेते हैं, तो कुछ सीधे-सपाट तरीके से अपनी बात कहते हैं, कुछ अपनी बात इतनी आत्मीयता से कहते हैं कि पाठक भी उस भाव-प्रवाह में बहता चला जाता है. और कुछ लेखक इतना गहन वैचारिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं कि हम उनके चिंतन-मंथन और अत:दृष्टि का लोहा माने बिना नहीं रहते। निबन्ध बोधगम्य बन सके इसके लिए आवश्यक है कि निबन्धकार शब्द-चयन करते समय, तथा वाक्य-संरचना समय इस बात ध्यान रखे कि वे दुरूह व जटिल न हो, क्योंकि भाषा-शैली ही वह संजीवनी है जो निबन्ध को जीवन्तता प्रदान करती है।

प्रायः देखा जाता है कि विद्यार्थी अपने निबन्धों में सन्तुलन नहीं रख पाते। अनावश्यक प्रसंगों को खूब बढ़ा कर लिख डालने में और फिर समयाभाव आदि के कारण आवश्यक प्रसंगों को भी छोड़ देते हैं या फिर अत्यन्त संक्षेप कर देते हैं। इस प्रकार निबन्ध सुन्दर नहीं बन पड़ता। बस्तु भली प्रकार विचार करके ही यदीप्सित रूप से कलम चलानी चाहिये। निबन्ध कोई उपन्यास नहीं कि लिखते ही चले जाओ, कविता नहीं कि बहक जाओ, फिलासफी नहीं कि उलझ जाओ। निबन्ध के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी बाते निम्न प्रकार है—

1. निबन्ध को व्यवस्थित करने के लिए सर्वप्रथम रूपरेखा बनानी उचित होती है।
2. उसके बाद निबन्ध कि प्रस्तावना या भूमिका के स्वरूप को सुनिश्चित कर लेना चाहिए।
3. उसके बाद निबन्ध के प्रतिपाद्य विषय का विवेचन करना चाहिए। इसके अन्तर्गत निबन्ध के प्रमुख अवयव उनके गुण धर्म, उपयोगिता, अनुपयोगिता आदि का विचार किया जाता है। तथा यथोचित संवाद करते हुए विभिन्न सूक्तियों, दृष्टान्तों का भी उल्लेख किया जा सकता है।
4. अन्त में निबन्ध का सार लिखते हुए निबन्ध का समापन किया जाता है। जिसे उपसंहार भी कहते है। आइए, अब निबन्ध लेखन की प्रक्रिया एक उदाहरण के द्वारा समझे।

निबन्ध लेखन का प्रारूप—

आइए, अब निबन्ध लेखन की प्रक्रिया एक उदाहरण के द्वारा समझे। निबन्ध प्रारम्भ करने के पूर्व सबसे पहले भूमिका लिखें। यह संक्षिप्त होनी चाहिये। संक्षिप्त होने के साथ ही इतनी स्पष्टता भी होनी चाहिये कि इस बात की सूचना मिल जाय कि अमुक विषय पर अमुक प्रकार से निबन्ध लिखा जायगा। यथा- महाकवि कालिदास पर निबन्ध लिखने के पूर्व इस प्रकार भूमिका बाँधो - **"अपारे काव्यसंसारे कविः एकः प्रजापतिः। तस्मै यथा रोचते तथैव विश्वं रचयति।** अस्माकं देशे अनेके महाकवयः प्रादुर्भवन्। तेषु बाल्मीकिः आदिकविः अभूत्। द्वितीयश्च कालिदासः देशप्रसिद्धो महाकविः अभूत्। यस्य काव्यानां तुलनायां लोकस्थ कानिचिदपि काव्यानि समानानि न भवन्ति।'

इसके पश्चात् प्रस्तुत विषय पर सम्पूर्णता से दृष्टिनिक्षेप करके उसका सम्यन् विभाजन कर लेना चाहिये। किसी विषय पर जितनी भी रचना सम्भव बातें लिखी जा सकती हैं, उन सब का वर्गीकरण करके प्रमुख शीर्षक बना लेना चाहिये। कोई शीर्षक इतना बड़ा न हो कि उस पर चार पृष्ठ लिखा जाय और उसकी तुलना में दूसरे शीर्षक पर आधा पृष्ठ भी न लिखा जा सके।

अब एक-एक शीर्षक को लीजिये और उससे सम्बन्धित तथ्यों को लिखते जाइये। ऐसा न हो कि लिखने के क्रम में तारतम्यता का ध्यान न रहे।

निबन्ध के भाव को प्रस्तुत करते समय यह भी स्मरण रहे की निबन्ध के विस्तारिकरण को समेटना भी है। निबन्ध जब अपने चरम बिन्दु पर पहुँच जाय तो धीरे-धीरे उतार की दिशा में सचेष्ट हो जाना चाहिये। अन्यथा निबन्ध अनावश्यक रूप में बढ़ता चला जायगा।

अन्त में उपसंहृति संक्षेप में लिखनी चाहिये। इस स्थल पर हो सके तो ऊपर कही हुई सभी बातों को सूत्ररूपेण दोहरा देना असंगत न होगा। या उसके बाद समाप्तिसूचक कुछ वाक्यों में अपने सम्पूर्ण कथन का निष्कर्ष देकर उपसंहार पूरा कर कर देना चाहिये। उपसंहार लिखते समय इस बात का ध्यान रहे कि उसे पढ़ने वाले पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जायें। उनके तोष और विश्वास में ही निबन्ध की कुशलता निहित है।

निबन्ध लेखन की विशिष्ट युक्तियाँ—

1. भाषा कोमल और सुन्दर प्रवाहयुक्त होनी चाहिये।

2. शब्दों की सुन्दरता के साथ ही भावों की सुन्दरता भी हो। भावों की स्पष्टता भी नितान्त आवश्यक है। जो भी लिखा जाय, वह सत्य की नींव पर। हो सके तो अपने कथन की पुष्टि में कोई उद्धरण या सुभाषित पद या उक्ति आदि भी देवें। इस प्रकार पढ़ने वाले पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जहाँ तक हो सके अलंकारों का प्रयोग न्यूनता से करना चाहिये।

3. व्यञ्जना और लक्षणा नाम की शब्द और अर्थशक्तियाँ भी निबन्ध की दृष्टि से अनुपादेय सी हैं। निबन्ध में तो अभिधा शक्ति का ही आश्रय लेना चाहिये। ताकि जो कुछ कहा या लिखा जाय, उसका वही अर्थ हो, तदन्य कोई अर्थ न निकले। अन्यथा पढ़ने वाले को समझने में कठिनाई होगी।

4. भाषा को सुबोध करने के लिये यथासम्भव सन्धि और समास का भी प्रयोग करना चाहिये। किन्तु इनका इतना अधिक प्रयोग न हो कि उच्चारण में, विग्रह करने में या समझने में कठिनाई पड़े।

5. शीर्षकों का चुनाव भी परमावश्यक है। जिससे किसी भी विषय का सम्यक् प्रतिपादन हो सके क्योंकि इस प्रकार विषय का एक स्पष्ट चित्र आँखों के समक्ष होगा तो विषय सामग्री को पूर्ण ढंग से सजाकर प्रस्तुत करने में सहायता होगी।

6. जहाँ तक हो सके व्याकरण की अशुद्धियाँ न हो, अन्यथा प्रथमतया यह समझने में ही समस्या होगी कि आप कहना क्या चाहते हैं और फिर विरसता भी आ जाने की सम्भावना है।

7. इस बात का मी ध्यान रहे कि जो कुछ हम लिख रहे हैं, उससे हमारी संस्कृति और मर्यादा आदि का उल्लंघन न होने पावे। अन्यया प्रशंसा के स्थान पर वचनीयता ही प्राप्त होगी।

9. विद्यार्थियों का सामान्य ज्ञान इतना परिर्वाधत होना चाहिये कि पहले से तैयारी किये बिना भी वे किसी विषय पर निबन्ध लिख सकें। यथा- कालिदास पर कुछ लिखते समय अंग्रेजी के कवि शेक्सपियर आदि के संगत प्रसंगों का उल्लेख।

10. परीक्षक विद्यार्थी के स्वतन्त्र चिन्तन से सर्वाधिक प्रभावित होता है। इसलिये इस विषय पर कौन क्या कह गया है या किसने क्या लिखा है- इस बात को छोड़ कर अपने स्वतन्त्र चिन्तन के बल पर लिखना चाहिये। निबन्ध पर निबन्ध-लेखक के व्यक्तित्व की अमिट छाप होती है। वह स्वेच्छया स्वतन्त्रतापूर्वक निबन्ध लिख सकता है। वस्तुत निबन्ध-लेखन में लेखक किन्हीं विशेष नियमों में नहीं बधता है। निबन्ध लेखन के समय जिस तरह के भाव उद्वेलित होते हैं, लेखक उन्ही के अनुसार भाषा में लिखता चला जाता है।

इसके अतिरिक्त अन्य सामान्य बातों का ध्यान भी रखना चाहिये। जैसे—

1. निबन्ध न बहुत बड़ा हो, न बहुत छोटा।
2. प्रायः ऐसा निबन्ध लिखने में कम अंक मिलते हैं जिसे अधिकतर विद्यार्थियों ने लिखा हो। इसलिये लिखने के लिये दिये गये निबन्धों में ऐसे निबन्ध का चुनाव करना चाहिये जिसे बहुत विद्यार्थी न लिखेंगे-ऐसी सम्भावना हो।
3. जो भी लिखिये शुद्ध लिखिये। वर्ण आदि की अशुद्धियाँ न हो पायें।
4. एक ही बात को बार-बार दोहरा कर पिष्टपेषण न करना चाहिये।
5. हस्तलेख सुन्दर और सुस्पष्ट हो।
6. यत्र-तत्र प्रासंगिक उद्धरण अवश्य दें।
7. निबन्ध को शीर्षकों में बाँट कर लिखें।

निबन्ध की शैली के विषय में इन बातों का ध्यान रखें—

1. निबन्ध की भाषा व्याकरणसम्मत, शुद्ध, सरल, सर्वजनहृदय-सवेरा होनी चाहिए।
2. भाषा प्रारम्भ से अन्त तक एक सी हो।
3. भाषा में प्रवाह व स्वाभाविकता हो।
4. उपयुक्त और असंदिग्ध शब्दों का प्रयोग करें।
5. भाषा सरल, सुबोध और आकर्षक हो
6. लोकोक्ति एवं अलंकारों को भी स्थान दें।
7. निबन्ध की शैली सुस्पष्ट एवं रोचक हो, विचारों में तादात्म्य तथा भाषा शुद्ध एवं मधुर हो।
8. शैली स्पष्ट रमणीय विचारों से पूर्ण, सरल एवं सरस होनी चाहिए।
9. यदि सस्कृत का अभ्यास कम हो तो पहले हिन्दी भाषा में लिख ले। बाद में संस्कृत भाषा में रूपान्तरण कर लें। सस्कृत लेखन का अभ्यास करते रहना चाहिए।

बोध प्रश्न—

1. निबन्ध के लिए संस्कृत में प्रयुक्त शब्द है-

    क. गद्य
    ख. सन्दर्भ
    ग. निबन्ध
    घ. ललित निबन्ध

2. फ्रांस में वर्तमान निबन्ध विधा के प्रवर्तक लेखक है-

    क. बेकन
    ख. डॉ. जानसन
    ग. मॉन्तो
    घ. एडिसन

3. आधुनिक संस्कृत में व्यक्तिव्यंजक व ललित निबन्धों के प्रवर्तक लेखक है-

    क. पं. हृषीकेश भट्टाचार्य
    ख. गणेशराम शर्मा
    ग. भट्ट मथुरानाथ शास्त्री

घ. कलानाथ शास्त्री

4. पं. हृषीकेश भट्टाचार्य पत्रिका के सम्पादक थे-

क. संस्कृत भारती

ख. संस्कृत सुधा

ग. सूर्योदयः

घ. विद्योदयः

5. नीचे लिखे कथनों में से सही और गलत को छाँटिये -

(क) निबन्ध का जनक मांतेन को माना जाता है। (सही/गलत)

(ख) एस्से और निबन्ध के अर्थ में अन्तर होता है। (सही/गलत)

(ग) निबन्ध में व्यक्ति की आत्मकथा होती है। (सही/गलत)

(घ) निबन्ध गद्य-पद्य दोनों शैलियों में लिखे जाते हैं। (सही/गलत)

(ङ) आत्मनिष्ठता निबन्ध का अनिवार्य तत्त्व है। (सही/गलत)

2.4 सारांश

किसी विषय पर अपने विचारों या भावों को विशेष रूप से निबद्ध करना ही निबन्ध है। प्रस्तुत इकाई में आपने निबन्ध की शाब्दिक व्युत्पत्ति तथा उसकी परिभाषा के विषय में जाना। इस इकाई को पढ़कर आप जान चुके हैं कि निबन्ध का अर्थ क्या है. साथ ही साथ आप यह भी जान चुके होंगें कि निबंध का तात्पर्य और उसकी प्रमुख परिभाषाएं क्या हैं। इसके साथ ही आपने यह भी जाना कि निबन्ध कितने प्रकार के हो सकते हैं, निबंध का स्वरूप क्या है तथा निबन्ध के तत्व कौन-कौन से हैं।

निबन्ध शब्द Essay का पर्याय है तथा फ्रांसीसी विद्वान् मान्ते इसके प्रवर्तक माने जाते है। 1580 में पेरिस में उनका निबन्ध संकलन प्रकाशित हुआ। इसके बाद बेकन, एडिसन आदि विद्वानों की निबन्ध के विषय में परिभाषाओं हिन्दी विद्वानों की परिभाषाओं को जाना। इन परिभाषाओं के आधार पर व्यक्तिव्यंजक व सर्जना एक निबन्ध ही साहित्य का हिस्सा हो सकते है। संस्कृत निबन्ध के उद्भव व विकास में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष योगदान है। संस्कृत में हृषीकेश भट्टाचार्य व्यक्तिव्यंजक निबन्धों के प्रवर्तक माने गये है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निबंध लेखन विधा का सम्पूर्ण परिचय भी प्राप्त कर चुके हैं।

2.5 पारिभाषीक शब्दावली

शब्द	**-**	**अर्थ**
विवरणात्मक	-	व्याख्या संबंधी
निबन्ध	-	बंधा हुआ, कसा हुआ या गंठा हुआ। साहित्य में निबन्ध एक विधा है। किसी विषय पर लेखक गद्य में अपने विचार व्यक्त करता है।
संदर्भ	-	भाष्य ग्रन्थ
प्रस्ताव	-	जहाँ विचारों का विशिष्ट रूप में प्रस्तुत करना
व्यक्तिव्यञजक	-	यदि लेखक किसी विषय में अपने विचार अपनी ही शैली में अभिव्यक्त करें।
प्रबन्ध	-	निबन्ध के लिए प्रयुक्त शब्द

तारतम्यता - क्रमबद्धता

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. क
4. घ
5. क-सही, ख- सही, ग- गलत, घ- गलत, ड- सही

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, (सप्तम खण्ड) सं. बलदेव उपाध्याय, पं. जगन्नाथ पाठक राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. कलानाथ शास्त्री, साहित्यागार, जयपुर
3. अर्वाचीन संस्कृत साहित्यः दशा व दिशा, सं. मंजुलता शर्मा परिश्रम प्रकाशन, दिल्ली
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. बहादुर सिंह माधव, प्रकाशन यमुना नगर, हरियाणा

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. हिन्दी साहित्य कोश

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निबन्ध शब्द का अर्थ एवं स्वरूप स्पष्ट कीजिये।
2 निबन्ध कितने प्रकार के होते हैं।
3. निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन-कौन से हैं।
4. निबन्ध से अभिप्राय व परिभाषा पर एक लेख लिखे।
5. निबन्ध लेखन की विविध शैलियों पर लेख लिखे।

इकाई – 3 संस्कृत लघु निबन्ध

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 निबन्ध:
3.4 भारतीयसंस्कृतेः स्वरूपम्
3.5 विद्याधमनं सर्वधनप्रधानम्
3.6 वेदानां महत्वम्
3.7 कालिदासभारती – उपमा कालिदासस्य
3.8 कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते
3.9 धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्
3.10 प्रजातन्त्रशासनपद्धति:
3.11 सारांश
3.12 पारिभाषिक शब्दावली
3.13 संदर्भ सूची ग्रंथ एवं अन्य सहायक पुस्तकें
3.14 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई संस्कृत लघु निबन्ध लेखन से संबंधित है। निबन्ध को गद्य साहित्य की प्रमुख विधा कहा जाता है। निबन्ध के बारे में तो यह तक कहा जाता है कि "निबन्ध गद्य की कसौटी है।"निबन्ध शब्द नि+बन्ध+ल्युटनिबध्यते अस्मिन् इति निबन्धनम्। नि का अर्थ होता है भली – भांति और बन्ध अर्थात् बांधना। ऐसी रचना जिसमें निबन्धकार अपने भाव या विचार को सुसंगठित, व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करता है। निबन्धकार निबंधों के माध्यम से अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। निबन्ध में विषय और आकार में एक रूपता होती है। मुख्यतः निबन्ध तीन प्रकार के होते है आख्यानात्मक, वर्णात्मक, और विवेचनात्मक। निबन्ध की भाषा सरल, सुगम सुबोध होनी चाहिये। निबन्ध की भाषा अत्यधिक जटिल भी नहीं होनी चाहिये। निबन्ध के इसी क्रम में आप संस्कृत के अतिपय लघु निबन्धों का अध्ययन इस इकाई के माध्यम से करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे –

- निबन्धमे किस प्रकारभाषा का प्रयोग करना चाहिये इसके बारे में जानेंगे।
- आपमे निबन्ध लिखने का कौशल विकसित होगा।
- निबन्ध के माध्यम से आप आपने विचारों को भली-भांति लिखित रूप में व्यक्त कर पायेंगे।
- संस्कृत के कतिपय निबन्ध का आप इस इकाई में अध्ययन करेंगे, जिनके अध्ययन से आप संस्कृत भाषा में निबन्ध लिख सकेंगे।

3.3 निबन्धः

निबन्धः, प्रस्तावः, प्रबन्धः, सन्दर्भ इमे सर्वेऽपि शब्दाः स्मानार्थकाः सन्ति। निबन्धो हि नामोपपत्युपसंहारानुबन्धि सरल, सुगमकान्तपद विन्यासः अनुज्झितार्थ संबन्धो भवति। अथ कति विधा भवन्ति प्रबधाः ? खलु मुख्य तिस्र विधा भवन्ति आख्यानात्मकः, वर्णात्मकः, विवेचनात्मकाश्च। आख्यानात्मक: प्रबन्धस्तावत् यत्रोपाख्यान – कथा – गाथाचारित – चित्राणां वर्णनं भवति। वर्णात्मके प्रबन्धे गिरि- निर्झर – नदी नदकाननानां नगराणामैतिहासिक स्थलानां च वर्णनं भवति। तथा च विवेचनात्मके प्रबन्धे कमपि गम्भीर विषय मादाय तस्य गुण दोषोहापोह निरुपणं तथा च वैज्ञानिकं दार्शनिकं वा विषयमवलम्ब्य विवेचनं क्रियते। निबन्धानां भाषा सामान्यततिस्र विधा हि भाषा भवति। सरला, जटिला, प्रौढा च। तत्र सरला भाषा पञ्च तन्त्र, हितोपदेशादिषु सन्दर्भेषु दृश्यते। प्रौढा दशकुमारचरित, वासवदत्ता कादम्बरी प्रभृतिषु सन्दर्भेषु दृश्यते। जटिला च नलचम्पू, यशतिलकचम्पू युदिष्ठिर विजयादिषु रचनाषु समवलोक्यते। सौन्दर्य, माधुर्य, गाम्भीर्यादिभाषागुणा न केवलं क्लिष्ट श्लिटासु प्रौढरचनाषु दृश्यन्ते। अपितु सरलायामपि भाषायां ते सम्भवन्ति। निबन्धेषु तावत् महाकवे: कालिदासस्य शैली समवलम्बनीया न तु बाणस्य सुबन्धोर्दण्डिनो वा प्रलम्बसमासा। तेन महाकविना स्वीयरचनाषु वैदर्भि शैली अनुसृता या खलु प्रबन्ध काव्येषु सर्वश्रेष्ठा भवति। या

भाषानुवाचकानां समकालमेव भावान्नावबोधयति सा दुरुहा निरवबोधा च भवति, सा कस्यापि सहृदयस्य हृदयङ्गा न भवति । अतः सरला – बोध गम्या च भाषा प्रबन्धरचनाषु अनुसरणीय सन्धि विषयका अपि केचन नियमाः सन्ति, ते हि निबन्धे पालनीला भवन्ति ।

सन्धिरेकपदे नित्यो नित्यो धातूपसर्गयोः ।

सूत्रेष्वपि तथा नित्यः स चान्यत्र विकल्पितः ।।

समासयुक्तेषु वाक्येषु उपसर्गधातुषु च सन्धिर्नित्यः, अतः सन्धिस्तत्रावश्यमेव कर्तव्यः । समासादन्यत्र सन्धेर्वैकल्प्यं वर्तते । यत्र सन्धिना जटिलता, अर्थदुर्बोधत्वं जायेत तत्र सन्धि रुपेक्षणीयः । यदि कर्णकटुत्वं न भवेत् उच्चारणसौकार्यं च स्यात्तदा सन्धिर्विधेयः ।

निबन्ध लेखने पठकैरवधेयं यत् यद्विषयको निबन्धस्तद्विषयमुद्दिश्यैव निबन्ध आरम्भणीयः । तत्र 1 प्रतिभा, 2 हेतुः, 3 निदर्शनम्, 4 उपसंहार श्चेति चत्वारो मुख्यावयवाः ।

ये विषया निबन्धे निवेशनियास्ते खलु निबन्धस्य समारम्भणात् पूर्वमेव सम्यक् विचारणीयाः । एको हि भावः एकस्मिन् वाक्य परिच्छेदे सन्निवेशनीयः । एवं त्रय चत्वारो वा वाक्य परिच्छेदा निबन्धे कल्पनीयाः । द्वितीय वाक्य परिच्छेदे विषयानुसारं यत्किञ्चिदपि वक्तव्यं भवति तत् सन्निवेशनीयम् । ततः स्वविषयोपपत्यर्थं प्रमाणत्वेन सुप्रसिध लेखकानां मतानि समुद्धरणीयानि । उपसंहारे च विहंगमदृष्टया स्वविषय परिपोषणार्थम् ओजस्विभिर्भावपूर्णैः सहृदयाकर्षकैर्वायैः स्व निबन्धः सनापनीयः ।

3.4 भारतीयसंस्कृतेः स्वरूपम्

अथ का नाम संस्कृतिः ? किं तस्याः स्वरूपं ? तत्रोच्यते । संस्कृतिः संस्करणम् मनसः आत्मनो वेति संस्कृतिः। सम् पूर्वक कृ धातु 'क्तिन्' प्रत्ययेन रूपमिदं सिद्धयति । संस्कृतिः मानवमनसोऽज्ञानमपनयति, संस्कृतिः चित्तभ्रममपहरति, संहरति चाविद्यातमः, प्रकाशयति च ज्ञान ज्योतिः, संस्थापयति च सत्य वृत्तिम्, दारयति च दुर्गुणाततिम्, प्रसादयति च निर्मलं चेतः, समादधाति च शान्तिम् । संस्कृतिः खलु मानवस्य, राष्ट्रस्य अखिलविश्वस्याप्युपकर्त्री । संस्कृतिमन्तरा न कोऽपि मानवः समाजो वा शान्तिमधिगन्तुं समर्थः, संस्कृतिरेव मानव हृदयेषु विश्वबन्धुत्व सद्भावनामुत्पाद्य अखिललोक हिताय कल्पते । भारतीय संस्कृतिः खलु निखिलातिशायिगरिष्ठगुणगरिम्णा समस्तविश्व संस्कृतिवियन्मण्डले सावित्रं ज्योतिरिव देदीप्यते ।

धार्मिकी भावना- मानवेषु धर्मभवनैव तान् पशुभ्यः व्यवच्छेदयति उक्तञ्च-

" धर्मो हि तेषामधिको विशेषी धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः" इति

" धारणाद्धर्म इत्याहुधर्मो धारयते प्रजाः ।

यः स्याद्धरणासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।"

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" इति वैशेषिकदर्शनकृता महर्षिकणादेनापि ऐहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेमकरं धर्म इति पदेन व्यवस्थापितम् । सा एव धर्म भावना मानवेषु विशेषा, सा च पशुषु नैव विद्यते ।

सदाचारः –सदाचारोऽपि मानवेषु तान् पशुभ्यः पृथक करोति । '**आचारः परमो धर्मः**' इति वचनात् आचारः सर्वोत्तमं तपः । सदाचारः ब्रह्मचर्यादि नियमानां पालनम्, तेन इन्द्रियाणांनिग्रहो भवति । तथाचोक्तं महाभारते –

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत वित्तमेति च याति च ।

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हृतोहतः ।।

पारलौकिकी भावना –सर्वेषां धर्मशास्त्रणामधययनेन परिज्ञायते यत् जगदिदं विनश्वरं कीर्तिरेव कल्पान्तस्थायिनी वा । भौतिकाश्च विषयाः परिभोगरम्भ्याः किन्तु अन्ते परितापिनः सन्ति । भौतिक पदार्थानामुपभोगेन सुखावाप्तिः सुलभाः, किन्तु मानवपतनमप्यदुर्लभं न । अतएव धीरा मनस्विनः कर्तव्य प्राधान्यं जानन्तः भौतिक विषयेषु विरता अभूवन्, कर्त्तव्यपालनं च कुर्वन्तस्ते न कदापि प्राणानपि गणयामासुः । अद्यापि तेषामेव विमला कीर्तिः प्रसरति तराम् संसारे ।

अध्यात्मिकी भावना - निखिलमपि संस्कृतवाङमयं विशेषतश्चोपत्साहित्यं व्याप्तमनया भावनया । आध्यात्मविद्या प्रधानासु उपनिषत्सु संवादरुपेण अतिमनोहरा उपदेशाः समुल्लसन्ति । सर्वेषां संवादानां तात्पर्यविषयीभूतोऽर्थः आत्मानमधिकृत्यैव प्रस्तुतः। छान्दोग्योपनिषद बृहदारण्यकोपनिषद उपनिषद्द्वयम् अतीव महत्वपूर्णं बृहदारण्यकञ्च । तत्र छान्दोग्योपनिषद तृतीय भागे घोराङ्गिरसनाम्नो महर्षेः श्री कृष्णेन ब्रह्मविद्योपार्जितेति वर्णितम् । षष्ठे च भागे उद्दालकारुणोयात् तदात्मजेन श्षेतकेतु – आरुणेयेन ब्रह्मविद्याप्राप्ति विवेचनम् । एवमुपनिषन्नाम अध्यात्मविद्या परमतीवोज्ज्वलं मनस आत्मनश्च अतीव शान्तिप्रदं ब्रह्मविद्यातन्त्रम् ।

वर्णव्यवस्था –वेदपर्यालोचनेनेदं विज्ञायते यत् वर्णाश्चत्वारः सन्ति । ब्राहमण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रभेदात् । यथाऽस्माकं शरीरे मुखं, बहु, ऊरु, पदश्चेति चक्षुः, संख्यकानि अङ्गानि सन्ति तथैव समाजशरीरे ब्राहमणादयः चत्वारः अङ्ग विशेषाः सन्ति कार्यभारसंचालनार्थम् । सुप्रसिद्धे पुरुषसुक्तेः **"**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहुराजन्यः" इत्यस्मिन् वर्ण व्यवस्थायाः निर्देशो विहितः । यदा सर्वेऽमी ब्राहमणदयो वर्णाः संभूय कार्यं स्वस्वधर्मं वानुतिष्ठन्ति तदानीमेव विश्वसमुन्नतिः संभवानान्यथा ।

आश्रमव्यवस्था –संस्कृत वाङ्मयाध्यनेन ज्ञायते यत् मानव जीवनं चतुर्षु विभागेषु विभक्तं । ते विभागाश्चत्वारः आश्रमा अप्युच्यन्ते । आश्रम्यते स्थीयते यस्मिन् स आश्रमः । चत्वार आश्रमाः – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास संज्ञकाः । पञ्चविंशति वर्ष पर्यन्त एकस्मिन् आश्रमे विश्रम्य चत्वारोऽपि आश्रमाः सेव्याः तत्रापि प्रथमाश्रमः ब्रह्मचर्याश्रमः सर्वैरपि मानवैः अपरिहार्यत्वेन परिपालनीयः । गृहस्थादि त्रयः आश्रमास्तु एच्छिकाः । आश्रमाणां सर्वोत्कृष्टः ब्रह्मचर्याश्रमः मानव जीवनस्य आधारभूतः स एव मानसीं शारीरिकीं च शक्तिं विकासयति । अस्मिन् आश्रमे ब्रह्मचारिणः गुरुकुलाश्रमे निवसन्तः गुरोः सकाशात् विविधा विद्याः, विज्ञानानि शिक्षन्ते निःशुल्कम् ।

वैदिकधर्मनिष्ठा –वेदप्रतिपादितो धर्मः वैदिकधर्मः । वैदिकधर्मे ईश्वर एव सर्व शक्तिमान्, सृष्टिस्थितिप्रलयकर्त्ता, व्यापकः, अजरः, अमरः, शुद्धः, बुद्धः, जगन्नियन्ता, जीवेभ्यः शुभाशुभकर्मफ़लप्रदाता, सर्वज्ञः, न्यायशीलश्च वर्तते । भारतीय-संस्कृतौ मानवस्य वैदिकधर्म प्रति नितरां निष्ठा वर्तते ।

पुनर्जन्मवादः –पुनर्जन्माधिकृत्य अतिरोचकं तत्त्वम् ऋचो वर्णयन्ति । तत्र परमात्मैव हिरण्यगर्भःतदुपाधिभूतानां पृथिव्यादीनां भौतिकानां ब्राह्मणाः सकाशादुपत्तेः तदुपहिततत्वात् तदुपन्नत्वव्व्यपदेशो वर्तते । **"भूतस्यजातः पतिरेक आसीदिति"** सन् भूतस्य विकारजातस्य ब्रह्माणडादेः पतिरासीत् । यश्च पुनः पृथ्वीं पुनर्द्याञ्च धारयतीति ।

मोक्षावाप्तिः –मोक्षानन्दस्य वर्णनं वेदेषु दृश्यते –

"यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षत इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।। ऋक्।
स खलु मोक्षानन्दानुभव: सत्येन, श्रद्धया, तपसा च आध्यात्मिक ज्योतिष्प्रदीप्त्या एव सम्भवः। यस्य ज्योतिषा योऽयमात्मा ज्योतिष्मान् भवति विश्वं चैतद् विभाति स एव ज्योतिषां ज्योतिः स्वरूपः परमेश्वरः स्तूयते।

अभयत्वभावना –प्राणभृतां निर्भयता सर्वोत्कृष्टो गुणाः। निर्भयो जनः विलक्षणानि लोकोत्तराणि कार्याणि कर्तुं समर्थः न हि भीरः। भीरवो हि मरणात् पूर्वमेव बहुशो म्रियन्ते, ते हि शरीरेण घृता अपि मृता एव जीवन्ति। अत एव श्रुतौ प्रार्थना – "अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरोयः।" अपि च –

"यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्यः अभयं पशुभ्यः ।।" इति।

मन्त्रे स्पष्टं ध्वनितं भवति यत् यो बिभेति स विनश्यति। भयमेव च प्रायशः विनाश काराणां जायते। विजिगीषुभिर्जनैर्महत्यां संकटावस्थायाम् उपस्थितायां कदापि भयापन्नैर्न भवितव्यम् इति निर्देशः।

वेद्प्रतिपादिताखिलकर्मप्रतिपत्यर्थं ब्राह्मणग्रन्थानामुदयः। तेषु वर्णितानां वस्तुतत्वानां विशदी करणार्थं कल्पसूत्राणां विन्यासः। इति हेतोरेव तेषामपि वेदाङ्गत्वेन अङ्गीकारः। एषु प्रतिपादितो धर्मः वैदिकधर्मः। वैदिक धर्मः खलु विश्वहिताय मानवहिताय च प्रवर्तितः। विश्वहितस्य विश्वोन्नतेश्च सर्वा भावना भारतीय संस्कृतावेव उपलभ्यन्ते।

3.5 विद्याधमनं सर्वधनप्रधानम्

परमेश्वरेण जगति समुत्पादितेषु सर्वद्रव्येषु विद्यैव सर्वश्रेष्ठं द्रव्यम्। विद्याद्रव्येणा विहीनः यो मानवोऽस्ति सः असभ्यः मूर्खः ग्रामीणः कथ्यते। ज्ञानेन विना यथा पशु धर्माधर्मयोर्विचारं कर्तुं न शक्नोति तथैव मनवोऽपि विद्यया विहीनः पापपुण्ययोः कर्त्तव्याकर्त्तव्ययोर्विचारं कर्तुं न पारयति। विद्याविहीनो मानवोऽन्ध एव निगद्यते। उक्तञ्च-

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ।। (आचार्यप्रवरः दण्डी)

अत्र शब्दाह्वयं ज्योतिर्विद्यैव। यदि नामेयं विद्याज्योतिरस्मिन् जगति न भवेत् तर्हि जगदिदमखिलमपि अन्धकारावृतं सम्पत्स्येत। विद्ययैवास्य जगतः यावज्ज्ञेयं तत्वं तावदखिलं सम्प्रकाश्यते। किं नाम तद्वस्तु यद्विद्यया न साध्यते। यत्कार्यमन्येन द्रविणादिनापि न साध्यते तत्कार्यं विद्याद्रविणोनानायासेन साध्यते। अत एव विद्याधनस्य सर्वेतरधनेभ्यः प्रधानतोक्ता कविभिः। यथा हि **"विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।"**

इयं च विद्याधनस्य प्रधानता यदन्यापि धनानि व्ययीकृतानि क्षयं यान्ति, किन्तु विद्याधनं व्ययेन सवर्द्धते। एतद्वैशिष्टयं विद्याधनस्य यद्दानात्प्रवर्द्धते।

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारती।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात् ।।

विद्याधनस्य इयमपि विशेषता यदिदं धनं न केनापि चोरयितुं शक्यते। क्रूरोऽपि कोऽपि नरपतिः विद्याधनं हर्तुं न प्रभवति। न कोऽपि विद्वान पण्डितः राजाज्ञया विद्याविहीनः कर्तुं

शक्यते। नापि विद्याधनं भ्रातृभाज्यं भवति । धनस्य राशि: पुनर्भारयुक्तो भवति, परं विद्याधनं न कदापि भारकारि भवति । समीचीनमुक्तं केनापि सुकविना-

न चौर्यहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।
व्यये कृते वर्धते एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ।।
विद्ययाऽमृतमश्नुते

विद्ययैव कालिदास – भवभूति – बाणप्रभृतयः महाकवयः अमरत्वं प्राप्नुवन् । तेषां सरसपदावली इदानीमपि सहृदयानां कर्णकुहरेषु पियूषधारां क्षरति । विद्यावन्तो जना: सर्वत्र प्रतिष्ठां लभन्ते पूजनीयाश्च भवन्ति । राजानः विद्यावतां पुरस्तात् नतमस्तका जायन्ते । विद्या नामैकः खलु प्रदीपोऽस्ति । यदा मानवः जीवनस्य जटिल समस्यापाशेन व्यामोहान्धतमसि निमज्जितो भवति तदा विद्याप्रदीप एव कमपि सरलमार्गं प्रदीपयति । **"घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्" ।** चतुर्वर्गस्य फ़लप्राप्तिसाधनमपि विद्यैव । विद्या विनयं ददाति, विनयेन मानवः पात्रता याति, पात्रत्वात् धनमाप्नोति । एवं चतुर्वर्गस्य प्रथमो वर्गः धनरूपः विद्ययैव प्राप्यते । अनेन मानवो दानं ददाति, तेन च पुण्यार्जनं करोति।

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मः ततः सुखम् ।।

घनेनैव कामस्यापि प्राप्तिर्भवति- धनेन जनोऽभ्रंकषं प्रसादं निर्माति, नानाऽऽस्वादजनकानि भोजनानि भुङ्क्ते एवं तृतीयवर्गस्य कामस्य अर्जनं करोति । विद्यैव मानवः आत्मपरमात्मनोरभेदं पश्यति, स ब्रह्म जानाति, अतः तद्रूपो भवति। **"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ।**

एतदप्यवधारणीय यत् या विद्या क्रियान्विता न भवति सा खल्वनर्थायैव कल्पते । कर्मकलाप समुच्चिता हि विद्या फ़लवती भवति न खलु तद्विरहिता । यः क्रियावान् सदाचारसंपन्नः स एव विद्वान कथ्यते । विद्यावान् कर्मविहीनो नरः मूर्ख एव निगद्यते । विद्याया आचरणप्रचारणयोश्च ज्ञानं धर्मणैव भवितुमर्हति अतएव कथ्यते –

विद्यामधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः,
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।

यद्येवं तर्हि सा विद्या कथमुपार्जनीया । उच्यते । विद्यामभीप्सुना मानमेव सुख-दुखे मनसापि न चिन्तनीये । अविश्रान्तश्रमम् अनवरतं गुरुणा वितरिता विद्या सर्वात्मना आत्मसात्करणीया। सुखाभिलाषुकाश्छात्रा विद्यामृतं न पिबन्ति । तथा च सम्यगुक्तम् –

सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम् ।
सुखार्थी चेत्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्यजेत्सुखम् ।।

आलस्यं सुखेहा च विद्यार्थिनां निसर्गजः शत्रुः । ताभ्याममिभूतोऽन्तेवासी न कदापि स्वेष्टं फलं लभते । विद्यया मानवः त्रिपुलां कीर्तिं धनञ्च लभते । को न जानाति यद् दिवंगतः रवीन्द्रनाथठाकुरः, वेङ्कटेशरमण:, राधाकृष्णो वा विद्ययैव विपुलं यशः प्रभूतं च धनं प्राप्नुवन्तः। विद्यायाः प्रशंसायां केनचित् कविना समुचितमेवाविहितम् –

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम् ।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ।।

3.6 वेदानां महत्वम्

"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा धर्मादिपुरुषार्थाएभिरिति वेदाः ।" ज्ञानार्थकाद् विद् धतोर्घञि प्रत्यये रूपमिदं सिद्धयति। सायणेन पुनः कृष्णयजुर्वेदीयभाष्यभूमिकायाम् उपन्यस्तम् –

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ।।"

एवं वेदो हि नाम अशेषज्ञानविज्ञानराशिः । आम्नायः, आगमाः, श्रुतिः, वेद इति समानार्थकाः शब्दाः । **"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयते स वेदः"** इति सायणेन प्रतिपादितम्। अतः वेदः खलु अशेष विश्वविज्ञान विशेष परिज्ञानप्रदं शाश्वतिकमपौरुषेयं शास्त्रम्।

वर्णाश्रमधर्मः –वेदेषु मनुष्याणां कर्मादिभेदतः पञ्च श्रेणि विभागा दृश्यन्ते – ब्राह्मणः, क्षत्रियः, वैश्यः, दासः, दस्युश्च। दस्युः खलु अनार्यः। आर्याश्चत्वारः। ते भेदाः पञ्चाजातिपदेन प्रवलिताः। परं सर्वैजनैः परस्परं प्रीतिभावेन वर्तितव्यम् –

"प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यतः उत शूद्र उतार्ये।। (अथर्व ०)

चत्वार आश्रमाः –मानवजीवनं चतुर्षु विभागेषु विभक्तं विद्यते । चत्वारो विभागः चत्वार आश्रमा उच्यन्ते –ब्रह्मचर्य–गृहस्थ–वानप्रस्थ–सन्यासलक्षणाः । पञ्चविंशतिवर्ष पर्यन्तम् एकस्मिन् आश्रमे विश्रम्य चत्वारोऽप्याश्रमाः सेव्याः, तेषु प्रथमः सवैरपारिहार्यत्वेन सेव्यः । गृहस्थादित्रयः आश्रमास्तु ऐच्छिकाः । सोऽयं प्रथमः ब्रह्मचर्याश्रमः मानवजीवनस्याधारभूतः, यतः स एव शारीरिकीं मानसीं च शक्ति विकासयति।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येन देवेभ्यः स्व राभरत्।।

ब्रह्मचर्यकाले ब्रह्मचारिणो गुरुकुलाश्रमे निवसन्तः आचार्यसकाशात् विविधा विद्याः, शिल्पकलाः, विज्ञानानि च शिक्षन्ते स्म निःशुल्कम्। ब्रह्मचर्याश्रमानन्तरं गृहस्थाश्रमस्य चोपक्रमः विवाह संस्कारेण सञ्जायते।

स्त्रीपुरुषयोः समानाधिकारः – वेदेषु स्त्रीपुरुषयोः समानाधिकारः उपदिष्टः । उभयोः शिक्षा दीक्षा च पितृभ्यां समानभावेन संपादनीया । षोडशसंस्कारेषु विवाहः खलु प्रधानतमः । अयं संबन्धः अविच्छेद्योऽग्निसाक्षिकः मैत्रीभावरूपः मन्त्रैर्नियन्त्रितः । पाणिग्रहणानन्तरं वधूवरो जगदतुः –

समञ्जन्तु विश्वे देवा समायो हृदयानि नौ।
सम्मातरिश्वा सं धातु देष्ट्री दधातु नौ ।।

पाणिग्रहणसंस्कारे प्रथमं तावत् पाणिग्रहणाम्, ततो यज्ञाग्निपरिक्रमा, ततो लाजाहोमः, ततः शिलारोहणम्, ध्रुवदर्शनम्, सूर्यदर्शनम्, सप्तपदी च । ततः परस्परं समानं सौहार्दम् जायते । पतिकुलमपि परिणीताया देव्याः गौरवास्पदं पदम् –

साम्राज्ञीश्वशुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रवां भव ।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु।।

विवाहसम्बन्धस्याविच्छेद्यत्वं वेदे वर्तते । एष विवाह संबन्धः न तात्कालिकोऽपितु नित्यः यावज्जीवनस्थायी च । तथा च वेदेऽयमादेशः यदेकः पतिः एकामेव पत्नीं परिणायेत् पत्न्यपि एकमेव पतिं वृणुयात् । अपि च वेदे भगिनी – भ्रातृविवाहः सर्वथा निषिद्धः ।

वेदानामपौरुषेयत्वं नित्यत्वं च प्रायः सर्वेऽपि प्राचीनाचार्याः स्वीचक्रुः । **"प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेदराशिः स्थितः"**इति भगवता कुल्लूकभट्टेन वेदानां नित्यत्वं प्रदर्शयतोक्तम् । वस्तुतः सृष्टयुत्पत्तिसमकालमेव आदिमहर्षीणां हृदयेषु वेदज्ञानं प्रादुरभूत् ।

वैदिकधर्मस्य स्वरूपम् –वेदप्रतिपादितः धर्मः वैदिकधर्मः । वैदिक धर्मे ईश्वरः अजरः,अमरः,शुद्धः, व्यापकः,सर्वशक्तिमान्, जगन्नियन्ता, सर्वज्ञः, न्यायशीलः शुभाशुभकर्मफ़लदाता, सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्त्ता च ।

"तमेकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति ।"

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन् त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।

वेदे मोक्षस्यानन्दः- वेदे मोक्षानन्दस्वरूपस्य वर्णनं दृश्यते-

"यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम् । तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव" । ऋक् ।

स खलु मोक्षानन्दः सत्येन, तपसा, श्रद्धया तथा च आध्यामिकज्योतिष्प्रदीप्त्या एव सम्भवः । यस्य च ज्योतिषा आत्मायं ज्योतिष्मान् भवति तं स्तौति –

"एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः । एकैवोषा सर्वमिदं विभात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम्" । ऋक् ।

वेदे पुनर्जन्म –पुनर्जन्मसम्बन्धि अतिरमणीयं तत्वं ऋचो वर्णयन्ति-

" आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुते पुरूणि । धास्युर्योनि प्रथम आविवेश यो वाचमनुदितां चिकेत ।" अथर्व ० ।

"भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्" ।

"यः देवेषु अधिदेव एक आसीत्" ।

अत्र परमात्मैव हिरण्यगर्भः तदुपाधिभूतानां पृथिव्यादीनां भौतिकानां ब्रह्मणः सकाशादुत्पत्तेः । स एव एकोऽद्वितीयः सन् भूतस्य विकारभूतस्य ब्रह्माण्डादेः पतिरासीत् ।

वेदे राष्ट्र भावना –वेदेऽखिलमेव विश्वं राष्ट्रत्वेनाभिमतम् । तादृशराष्ट्रस्य राजा तादृशो भवेत् यं सर्वाः प्रजाः वाञ्छेयुः।

"ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।

"ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्" । ऋक् ।

"भद्रमिच्छन्त ऋषय स्वर्विदस्तपो दिक्षामुप निषेदुरग्रे ।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ।।" अथर्व० ।

एतादृशस्य एकच्छत्रवतो राज्ञः राष्ट्रं जनकल्याणकारि भवेदत्र न संदेहो भावितु महति, एवं विधो नृपः पर्वतः इवाचलः सन् राष्ट्रं धारयति ।

वेदे मांसभक्षणनिषेधः –वेदे गोमांस-मनुष्यमांस-अश्वादिमांसभक्षणस्य निषेधः ।

यः पौरुषेयेणा क्रविषा समङ्के यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्णाणि हरसा वि वृश्च । ऋक् ।

पुरुषः- अश्वादिमांसभक्षयितुः शिरश्छेदो दण्डरूपेण विहितः । गोदुग्धपरिहर्तुश्चापि शिरश्छेदो व्यवस्थितः ।

वेदे द्यूतनिषेधः कृषिप्रशंसा च –ऋग्वेदस्य दशमण्डले 'अक्षाख्य-द्यूतक्रीडाया' निन्दा निन्दा निषेधश्चोपदिष्टः ।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः । ऋक् ।

प्रसविता अयमीश्वरः आचष्टे द्यूतं मा कुरु । कृषिमेव कृषस्व, तत्सम्पादिते धने रिति कुरु । द्यूते पराजितस्य का दशा भवति ?

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः कस्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति । ऋक् ।

कितवस्य भार्या तप्यते । मातापि संतप्ता भवति । अक्षपराजयात् ऋणवान् कितवः भयमापन्नः कस्यचिद् धनिनः गृहे रात्रौ चौर्यमुपगच्छति, इति कीदृशः स शोच्यः ।

एवं विधाः जनकल्याणाकारिणा उपदेशाः परामर्शाश्च वेदेषु निर्दिष्टाः सन्ति । तेषामनुष्ठानेन मानवसमाजस्य नितरां कल्याणं भवति ।

3.7 कालिदासभारती – उपमा कालिदासस्य

कविकुललालामभूतः कालिदासः संस्कृत साहित्यमहाकाशे अम्बमणिरिव प्रकाशते इति सुविदितमेव काव्यकलानुशीलनपराणां विद्वद्वराणाम् । चरित्रचित्रेणे प्रकृतिवर्णनेऽयं कवि कुलशिरोमणिः सर्वानपि कवीन्द्रानतिशेते । अस्य प्रसाद गुणालंकृता वाणी, गम्भीरार्था च कल्पना अस्य सिद्धवाग्विभवस्यैव प्रखरप्रतिभाप्रसूतेषु काव्येषु विलोक्यते । अस्य सुललितपद विन्यासगुम्फितानिमाधुर्यगुणोपेतानि काव्यकुसुमानि कस्य सहृदयस्य मनः प्रीति नोपजनयन्ति ।

अयं कविकुलगुरुः कदा कतमञ्च जनपदमलङ्गकृतवान् स्वजन्मनेति विवादास्पदमद्यापि । तथापि अस्य ग्रन्थानां सूक्ष्मपरीक्षणेदं वक्तुं शक्यते यदेष महाकविः स्वजनुषा काश्मीरभुवमलञ्चकार । अस्य कविरस्य मेघदूत उज्जयिनीवर्णनेन कुमारसम्भवे च हिमालयवर्णनेन ज्ञायते यदयं प्रौढे वयसि उज्जयिनीं गतो भवेत् तत्र च महीभुजो विक्रमाङ्कस्य सभायां प्रतिष्ठां लेभे तरुणे च वयसि काश्मीरानेवाविजगाहे । कालिदासस्य कीर्तिकौमुदी नूनमचिरेणौवाभूत् दिग्दिगन्तरालव्यापिनी

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते ।।

अयं महाकविः विक्रमादित्यभपतेः राजसभायां नवरत्नेषु मुख्यतमः आसीत् । इतिहासविदो मनीषिणः प्रायः निश्चिन्वते यत्तस्य प्रादुर्भावकालः खैस्तप्राग्वतीं सप्तपञ्चाशत्तमो वर्षः ।

अस्य महाकवेः काव्येषु भाषाया रमणीयता, भावनां गाम्भीर्यम्, रसानां परिपाकः, छन्दसामौचित्यम्, मानवीयप्रकृतेः स्वाभाविकं विश्लेषणं, प्राकृतदृश्यानां सजीवचित्रणम् यादृशं सुलभं न तादृशमन्यत्र । अस्य कवेः रूपनिरुपणचातुरी, तच्चित्रनिर्माणकौशलं च लोकोत्तरं हृदयम् आनन्दनिमग्नं करोति । तथा हि कुमारसम्भवे पार्वतीसौन्दर्य वर्णम् –

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथा प्रदेशं विनिवेशितेन ।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ।।

अस्मिन् पद्ये पार्वतीसौन्दर्यवर्णनव्यतिरिक्तमर्थान्तरमपि ध्वनितं भवति । तथा हि अत्र मदीये काव्ये सर्वोपमाद्रव्याणां यथा प्रदेशं सन्निवेशितानां समुच्चयो हि मया प्रयत्नतो विहितः काव्यविश्वसृजा एकत्रैव काव्यसौन्दर्यदिदृक्षयेवेति भावः। कुमारसम्भवे रतिविलापवर्णनं कीदृशं स्त्रीमनोभावानुगुणं स्वाभाविकं चित्रणम् –

गत एव न ते निवर्त्तते स सखा दीप दृवानिलाहतः ।
अहमेव दशेव पश्य मामविसह्य व्यसनेन घुमिताम् ।।
आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी ।
हारोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियलोकफ़लो हि वेषः ।।

उपमा कालिदासस्य- उपमाविषये त्वयं कविकुलगुरुरितरान् अखिलान् कवीश्वरानतिशेते । उपमा त्वस्य निसर्गसिद्धा प्रेयसीव प्रतीयते । अस्य काव्येषु उपमालता यादृशी पुष्पिता पल्लविता च न तादृशी कवीश्वराणामन्येषां काव्येषु । विस्तृतिभयादिह कानि चिदेव निदर्शनानि चोदाहरामः।

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव संध्या ।।रघु०।

अवसानोन्मुखे दिवसे एकतः पश्चिमायाशायामुपेयुषि दिनकरे अपरतश्च समायान्त्यां रात्रौ तदुभयमध्यगतां सन्धिवेलां नरेन्द्रतत्पत्न्योश्च मध्यगतां धेनुं दिनक्षपामध्यगतया सहोपमिमानः कवीश्वरोऽयं किमुपमासौष्ठवस्य परां कोटि न गतवान् ?

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते ।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ।। रघु०।

यथेदं भौतिकं जगत् उष्णरश्मेः सूर्यात् चैतन्यमाप्नोति तद्वत् त्वयापि हे ब्रतिन् सूर्यतुल्यगुरोरशेषं ज्ञानमधिगतं कच्चित् तव गुरुदेवः कुशली खलु ? किञ्च –

पितुः प्रयत्नात्स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने ।
पुपोष वृद्धि हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ।। रघु०।

स रघुः पितुर्दिलीपस्य मनोहरैः शरीरावयवैः सूर्यरश्मेरनुप्रवेशात् बाल चन्द्रमा इव वृद्धि पुपोष । अहो कीदृशी पूर्णा मनोहारिणी चेयमुपमा ।

भारतीयसंस्कृतिपरम्परानुकूलां रघूणां जीवनपद्धति कविरित्थं वर्णयति –

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराघदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ।।
त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ।।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्द्धके मुनिवृतीनांयोगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।
(रघूणामन्वयं वक्षे तनुवाग्विभवोऽपिसन्)

अहो ! भारतीयपरम्परोपनतस्त्रीजनस्य भर्तृजनं प्रति प्रेम्णः कीदृशमादर्शभूतं प्रदर्शनं विहितम् ।

किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।

स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ।।
साऽहं तपःसूर्यनिविष्टदृष्टिरुर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूया यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः ।।
नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।
निर्वासिताऽप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमपेक्षणीया ।।

ईदृशं हृदयद्रावकं चित्रणं कस्य सचेतसो मनः नाश्चर्यचकितं करोति ।

गीतिमयं काव्यं मेघदूतं हि काव्याम्बुधौ समुपगतं परमोज्ज्वलं रत्नम् । अस्मिन् विरहसंतप्तस्य यक्षस्य मानसी व्यथा अतीव मार्मिकतया कविकुलगुरुणा वर्णिता । आज्ञाभंगापराधक्रुद्धेन अलकाधीश्वरेण कुबेरेण यक्षः वर्षमात्रकालाय निर्वासितः । स मेघद्वारा प्रेयसीं हृदयवल्लभां प्रति प्रति प्रणयसंदेशं प्रेषयामास ।

मेघदूतस्य भाषा अतीव प्राञ्जला, प्रवाहवाहिनी, सुमधुरा, प्रसादगुणशालिनी च । मेघं प्रति याचनाप्रकारः कियान् रोचकः ।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशात् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।।
धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हिप्रकृतिकृपणाश्चेतनाऽचेतनेषु ।।

यक्षस्य तादृगौचितीं कविवरः कियञ्चारुतया उपपादयति इति विचारणीयम् ।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रुरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ।।

मानवीयान्तः प्रकृतेः मार्मिकं स्नेहस्यन्दनं चित्रार्पितमिव प्रतिभाति । कविकालिदासः खलु शृङ्गाररसस्याद्वितीयः कविः, शृङ्गारे नान्यः कोऽपि कविस्तस्य तुलां स्पृशति ।

अस्य महाकवेश्चत्वारि महाकाव्यानि ऋतुसंहार – कुमारसंभव – रघुवंश –मेघदूताभिधानानि तथा त्रीणि विश्वविश्रुताति नाटकानि- मालविकाग्निमित्र-विक्रमोर्वशीय-अभिज्ञानशाकुन्तलाभिधानि, तेषु शाकुन्तलं परमोत्कृष्टम् । इदं नाटकं कालिदासस्य सर्वस्वमभिधीयते । शकुन्तलावलोकनसमकालमेव दुष्यन्तः विस्मयापन्नः व्याजहार –

'अहो माधुरमासां दर्शनम् । लब्धमद्य नेत्रनिर्माणफ़लम् ?'
मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।।
अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिवलोभनीयंयौवनमंगेषु सन्नद्धम् ।।
सरसिजमनुविद्धंशैवलेनापिरम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।।

कालिदासस्य काव्यकलायाः अतिशयलोकप्रियत्वं सर्वश्रेष्ठत्वञ्च सर्वैः सहृदयहृदयैः स्वीकृतम् । तस्य वर्णविन्यासमाधुर्य, भाषायाः प्राञ्जलता च नान्यत्राभिलक्ष्यते । कियत्तावद्वर्णयेत तस्य कविकुलचूडामणेः भारती ।

अमृतेनैव संसिक्ता चन्दनेनैव चर्चिता ।
चन्द्रांशुभिरिवोद्भृष्टा कालिदासस्य भारती ।।

महाकवेरस्य सुधा धवलाकीर्तिः अमान्तीव भारतवर्षे पाश्चात्यानपि देशान् स्वकीयैरमलैर्गुणैर्नितरां मुखरयाम्बभूव । न हि सन्ति संस्कृतभाषाविदः केचनापि धरातले ये विश्ववन्दनीयं महाकविमेनं सबहुमानं न स्मरन्ति ।

3.8 कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

संस्कृतसाहित्ये भवभूतिप्रसूतानि त्रीणि नाटकरत्नानि विलसन्ति – वीरचरित-मालतीमाधव – उत्तररामचरिताख्यानि । तानि खल्वसाधारणगुणगरिम्णा रसिकानां चेतांसि समाकर्षन्ति । तदेषां पदविन्यासेन भावभङ्गया चानुमीयते यद् वीरचरितमेव प्रथमा रचना तदनु मालतीमाधवं ददनन्तरं चोत्तररामचरितम्, उत्कर्षदृषा च सर्वोत्कृष्टकृतिस्तूत्तररामचरितमेव ।

कविरोऽयं श्रीकण्ठः रत्नखेटकः कोटिसार इत्येतैर्नामभिः प्रख्यातः । कविरसौ उत्तररामचरिते सूत्रधारमुखेन स्वपरिचयमेवं दत्तवान् – "एवमत्रभवन्तो विदाकुर्वन्तु अस्ति खलु तत्र भवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्य प्रमाणाज्ञो भवभूतीर्नाम जातुकार्णीपुत्रः ।" तथा चायं वीरचरिते मालतीमाधवे चात्मानं परिचाययति –"अस्ति दक्षिणापथे पद्मंपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरियिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्रयो घृतव्रताः उदुम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रविशन्ति । तदामुष्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्र कीर्त्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम जातुकर्णी पुत्रः कवि मित्रधेयमस्माकमित्यत्रभवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु –

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिराः ।
यथार्थानामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ।।

एवं हि ज्ञायते यत् जतुकर्णगोत्रसंभवत्वात् कविवरस्य जननी जातुकर्णीति नाम्ना प्रसिद्धा गुरुश्चास्य ज्ञाननिधिनामा यथार्थनामा ज्ञाननिधिरेव बभूव ।

भवभूतिर्जन्मना विदर्भदेशमलञ्चकार । मालतीमाधवस्य पर्यालोचनेन ज्ञायते यत् विदर्भदेशस्य राजधानी कुण्डिनपुरमासीत् । यत्र पद्मपुरे भवभूतिर्जन्मपरिग्रहमकरोत् तदधुना जनशून्यं बृहद्वनं सञ्जातम् ।

केचन् मन्यन्ते यत् कालिदासः भवभूतिश्च समसामयिकावासताम् । परं तयोः रचनापर्यालोचनेन ज्ञायते यन् नैतौ समसामयिकौ । कालिदासस्य रचना शैली प्रसादबहुला, सरला निसर्गजा च, भवभूतेस्तु जटिला, प्रलंबसमासबहुला च प्रतिभाति ।

भवभूतेः कालविषये राजतरङ्गिण्याश्चतुर्थेऽङ्के पद्यमिदं महत्वपूर्णम् –

कविर्वाक्यपति-राजश्री-भवभूत्यादिसेवितः ।

जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ।।

एतेन पद्येन विज्ञायते यत् भवभूतिः कान्यकुब्जाधिपतेः यशोवर्मणो राज्यपण्डित आसीत्। यशोवर्माऽसौ काश्मीरकेणा राज्ञा ललितादित्येन पराजितः । ललितादित्यस्य शासनकालः खैस्त ६९३ अब्दात् ७२९ पर्यन्तमासीत् । अतः भवभूतेः समयः अष्टम शताब्दयाः प्रारम्भ एवेति सुनिश्चितम् ।

भवभूतिः कालिदासस्य समसामायिकः इति प्रचारितः प्रवादोऽपि विचारणीयः । अस्य प्रवादस्य मूलं भोज प्रबन्धोल्लिखितमाख्यायिकमिदं वर्तते यदेकदा भवभूतिः उत्तररामचरितं विरच्य कालिदासस्य सविधं गतस्तच्छावणाय। शतरञ्जनक्रीडासक्तः कालिदासो भवभूतिं प्राह यदुच्चैः श्रावय । आद्यन्तं च सर्वं निशम्य कालिदासः परमसन्तुष्टोऽभूत्, उक्तवांश्च यद्रूपकमतिरमणीयं संपन्नम्, परन्तु –

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलितपरिरम्भव्यापृतैकैदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत् ।।

इत्यस्य श्लोकस्य चतुर्थे चरणे "एवं" इत्यत्र अनुस्वरोऽधिकः सञ्जातः । भवभूतिना कालिदासस्येतन्निर्देशं स्वीकृत्य 'रात्रिरेव' व्यरंसीत्' इति पाठभेदेऽनुस्वरोऽपाकृतः । परमस्य प्रवादस्य कोऽपि आधारो नास्ति यतः भोजप्रबन्धे पठ्यते – 'वाराणासीतः समागतः कोऽपि भवभूतिर्नाम कविः द्वारि तिष्ठति ।' भूजानेर्भोजदेवस्य शासनसमयस्यां वृत्तान्तः। श्रीभोजदेवश्च भुञ्जभ्रातृजः । यदि भोजदेवस्य शासने भवभूतेः विद्यमानात स्वीक्रियते तर्हि भवभूतेः समयः एकादशशताब्द्याम् भवेत एतञ्च प्रमाणान्तरैर्भवितुं नार्हति । अतः भवभूतेः समयः अष्टमशताब्द्याः प्रारम्भ एवेति सुनिश्चितम् ।

नाटककारेषु भवभूतेः स्थानं सर्वोतकृष्टमित्यत्र न काप्यत्युक्तिः । 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' अस्याभाणकस्यापि चरितार्थ्यमेव । अस्य कवेः करुणरसः सर्वस्वभूतः तस्य रसस्य च प्राधान्यं कविः स्वयमेवोद्घोषयति–

एको रसः करुणः एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक पृथगिव श्रयते विवर्तान् ।
आवर्त्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा –
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ।।

स्वयं भवभूतिस्तमसामुखेन करुणरसस्य प्राधान्यं रससार्वभौमत्वं च सूचयति तथा चान्ये रसास्तु तद्विकृतय एव ।

उत्तरचरिते तु करुणरसः पराकाष्ठां गत इव प्रतिभाति । तद्यथा –

हा हा देविस्फुटति हृदयंस्त्रंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्जवलामि ।
सीदन्नन्धे तमसिविधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ।।

भवभूतिना यद्यपि यत्रतत्र स्वनाटकेषु वीरकरुणबीभत्सादिरसानां प्रयोगः कृतस्तथापि करुणरस एव शिखरायते तस्य रचनायां । संस्कृत साहित्ये भवभूतेः उच्चतमं स्थानम्, न केवलं

भाषासौष्टवदृशा, अपितु तस्य रचनासु भारतीय संस्कृते: परम्परा, रीतिनीतिव्यवहारा, अध्यात्मज्योतिश्च परिदीप्यमानं वर्तते।

वीरचरिते तृतीयाङ्के समाजपरिपाटीम् च चित्रयन् कविरयं ब्रह्मऋषि वसिष्ठमुखेन जामदग्न्यं ब्राह्मणधर्मम् अवबोधयति–

"अयि वत्स, किमनया यावज्जीवनमायुधपिशाचिकया। श्रोत्रियोऽसि जामदग्न्य पूतं भजस्व पन्थानम् आरण्यकश्चपि तत्प्रचिनु चित्तप्रसादनाश्चतस्रो मैत्रयादि भावनाः। प्रसीदतु हि ते विशोका ज्योतिष्मती नाम चित्तवृति: । समायतु परशुं च। तत्प्रसादजमृतम्भराभिधानमबहिः सधनोपाधनोपाधेयसर्वार्थसामर्थ्यमपविद्धल्पवोपरागमूर्जस्वलमन्तर्ज्योतिषो दर्शनं प्रज्ञानमपि सम्भवति। तद्धि आचरितव्य ब्राह्मणेन तरति येन मृत्युं पाप्मानं।"

उत्तरचरिते चतुर्थाङ्के जनकेन लववेशवर्णनव्याजेन कियन्नैपुण्येन चित्रितानि क्षत्रियान्तेवासिनां लक्षणानि –

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतः
भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौर्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकम्
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डः परः पैप्पलः ।।

भवभूतिना स्वरचनायां प्राचीनसमाजस्य यत् प्रकृतिचित्रणं कृतं तत्खलु तथा वैशिष्टयम्। तद्रचनायां तदानीन्तनशास्त्रीयाचार व्यवहारस्यापि सम्यक् प्रतिबिम्बस्तच्चा तुरीम् प्रदर्शयति। भवभूतिर्नाटयकलायां कालिदासस्य तुलना तु नाधिरोहति किन्तु स स्थाने–स्थानेऽसाधारणकवित्वशक्ति दर्शयति-

"स्नापयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनि ते धवलबहुलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः" कीदृङ्मर्मस्पृग्वर्णनमेतत्। अयं हि कविः लब्धप्रतिष्ठ: श्रेष्ठश्चासीत्। श्री हरिहरेण कविवरेण स्थान् एवोक्तम्-

जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा।
ग्रावाप्यरोदीत् पार्वत्या हसतः स्म स्तनावपि ।।

कालिदास-भवभूत्योस्तुलना –उभावपि कविश्वरौ संस्कृत साहितस्य मूर्द्धाभिषिक्तौ नाटयकारौ। कालिदासः शृङ्गाररसस्य आचार्यः भवभूतिश्च करुणरसस्य। उभावपि स्वस्वविषये निरुपमौ नाटयकलाकारौ। यद्यपि महापुरुषयोस्तुलना नौचितीमर्हति तथापि समालोचकाः स्वदृष्टिविन्दुमुद्दिश्यैव एवं विदधति। कालिदासस्य रचनायां कल्पनावृत्तिरेव मुख्या भूवभूतेः रचनायामभिधावृतिरेवमुख्या। दुष्यन्तः शकुन्तलाप्रथमदर्शन एव चमत्कृतो निगदति-

'अहो लब्धं-नेत्रनिर्वाणाम्।'

भवभूतिः मालतीमाधवे मालतीमवलोक्य माधवः –

"अविरलमपि दाम्ना पौण्डरेणेव नद्धः स्नपित इव च दुग्धस्त्रोतसा निर्भरेण।"

यत्र कालिदासः संकेतमात्रं तनुते तत्र भवभूतिः विशदवर्णनं करोति कालिदासस्य भाषा मधुरा शैली च प्रसादगुणोपेता भवभूतेस्तु भाषा प्रौढा किञ्चित् कृत्रिमा, समासाम्बरशालिनी च। यद्यपि काव्यकलानाटयपाटवं भावावेशसंश्लेषश्चोभयोः कवीश्वरयोरलौकिकः मार्मिकश्च तथापि तारतम्यदृशा तु स्थिरीक्रियते यद्भवभूतिः कालिदासस्य तुलनां नारोहत्येव।

3.9 धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्

धर्मो हि नाम प्राणभृतां कल्याणाय, प्रेयसः श्रेयसश्च परमसाधनभूतं नितरांनुष्ठेयं वस्तुतत्त्वम्। आह च महर्षिकणादः धर्मतत्त्वं लिलक्षयिषुः।

"यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः" इति।

अभ्युदयः लौकिकोन्नतिः निःश्रेयसश्च पारलौकिकी सिद्धिः। येनानुष्ठितेन खल्वैहि कोन्तिरलौकिकेष्टसिद्धिश्च सम्पद्यते स एव धर्मपदव्यपदेश्य इति निष्कृष्टोऽर्थः।

शास्त्रकारैः धर्मस्य विविधानि लक्षणानि कृतानि दृश्यन्ते।

चोदनालक्षणो धर्मः इति जैमिनिः।

यत्त्वार्याः क्रियमाणम् प्रशंसन्ति स धर्मः।

यद् गर्हन्तं सोऽधर्मः। इत्यापस्तम्बाचार्याः।

तत्रभवान् भगवान् मनुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणमाह-

"वेदः स्मृतिसदाचारः स्वस्य च प्रियात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।"

सर्वेषामेषां लक्षणानां निष्कृष्टोऽर्थः समानार्थे एव पर्यवस्यति। इदमत्र बोध्यम् यद्धर्मो हि नाम शुभाशुभकर्मानुष्ठानम्, यत्समुपस्थिते हि धर्मार्थनिर्णये क्वचित्सन्देहसंशयादिव्याकुलितेऽर्थे सर्वतः प्राग्वेदस्य स्वतः प्रमाणभूतस्यैव प्रमाण्यं, तदनु स्मृतेः, ततो धर्मशास्त्रस्य ततः सतामाचारस्य, तदनु रवात्मानः प्रियस्य स्वान्तःकरणनिर्देशस्य प्रामाण्यं स्वीकरणीयं भवति। यतो वेदानुसारिण्य एव स्मृतयो भवन्ति, वेदानन्तरं तासामेव प्रमाण्यं खलु योक्तिकं सुसमञ्जसञ्चेति विदुषामभ्युपगमः।चेन्नाम श्रुतिस्मृतयोः कचिद्विरोधो समापद्येत तदा स्मृत्यर्थं परित्यज्य श्रुत्यर्थ एव सम्मान्यो भवति,समादरणीयश्च। एवमेव स्मृत्याचारयोर्विरोधे प्रतिपन्ने स्मृतिरेव बलीयसीति। निर्णीतोऽयमर्थो महर्षिकात्यायनेनापि-

"स्मृतेर्वेदविरोधे तु परित्यागो यथा भवेत्।

तथैव लौकिकाचारं स्मृतिबाधात् परित्यजेत्।"

परं विद्यमामानेष्वपि एतादृशेषु संख्यातीतेषु धर्माधर्मतत्त्वनिर्णायकेषु शास्त्रप्रमाणेषु धर्मस्वरुपप्रतिपत्तिसमस्याया अद्यापि किञ्चित्साधुतरं सार्वभौमं समाधानन्तु नैव प्रतीतिपथमुपयाति । प्रतिव्यक्ति प्रतिस्थिति च धर्मतत्वस्य विभिन्नतया अधुना यावन्न समभ्युपपन्नः प्रतिभाति। भगवता मनुना प्रतिपादितम् यत् –

आर्षं धर्मोपदेशश्च वेदशास्त्राविरोधिना।

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः।।

वेदशास्त्रप्रतिपादितस्यार्थस्य अविरोधिना तर्केण धर्मो विनिश्चेयः न खलु स्वतन्त्रेण । इति तर्कस्योपरि अङ्कुश एव कृत तर्कस्य निरङ्कुशता प्रसिद्धचरा एवेति नोपपत्तिमपेक्षते । अत एवोक्तमभियुक्तैः-

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः

नैको मुनिः यस्य वचः प्रमाणम्।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां

महाजनो येन गतः स पन्थाः।।

तदत्र समुपस्थिते येतादृशे व्यतिरेके महताम् आचार एव तर्हि प्रमाणत्वेनाङ्गीकरणीयः । परं तत्रापि यथार्हावबोधमगृहन्तो व्याकुलीभवन्तश्च तार्किका एवं व्याजहुः -

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं न च मे निवृतिः ।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।। इति ।

कविकूलचूडामणिः कालिदासोऽपि शाकुन्तले तादृशमेव किञ्चिदिव निगदति-

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।" इति ।

परन्तु अन्तः करणामपि यदा तमस्तोमसमावृतं भवति तदा तदपि श्वासान्धदर्पणमिव न यथार्हरूपं प्रतिबिम्बीकरोति, तदा किं करणीयमिति प्रश्नः सुतरामुदेति । तत्राह बोधायनाचार्यः-

"धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ।
क्रीडार्थमपि यद्ब्रुयुः स धर्मः परमः स्मृतः ।।"

एवं बहुधर्मभिन्नेषु धर्मलक्षणेषु किञ्चिदेकमेव सर्वङ्कषं सर्वाभिनन्दितञ्च लक्षणा भवेत् येन धर्मतत्वं यथार्थतया सुविज्ञातं भवेत् तच्च अस्मन्नयेन भगवज्जैभिनिमुनिपादसूत्रितं "चोदनालक्षणो धर्मः" इत्येव सर्वश्रेष्ठं लक्षणम् । चोदना शब्दोऽत्र विधिवचनः । यो वै वेदविधिः स एव धर्मः, यश्च तन्निषेधः स एवाधर्मश्चेति निष्कृष्टं लक्षणम् ।

तत्र विधिर्यथा- अध्येतव्या नित्यं वेदाः, अनुष्ठेयो वेदोदितकर्मनिकरः । प्रविलापनीया प्राक्कर्मपटली । संसेव्या विद्वांसस्तपस्विनः । प्रतिपालनीयमहिंसाव्रतम् । भाषणीयं सात्यमेव नित्यम्। प्रदेयं पात्रेभ्यो विद्याद्रविणम् । चिकित्सितव्यो जरामरणव्याधिः सर्वथा त्रिविधदुःखात्यन्तविप्रमोक्षः मोक्षः इत्यादिकम् ।

अथापि निषेधस्तावत्- न भाणितव्या मृषा वाणी । अधर्मे रतिर्नैव विधेय । न च वाञ्चनीयाः प्राणिनः । हिंसा न कर्तव्या । अक्षैर्मादीव्यः । गुरवो नावहेलनीया इत्यादि ।

एवं विधिनिषेधरूपेण विहितो निषिद्धो वा तत्तद्भावेन सर्वदैव अनुष्ठेयो धर्मः परित्यक्तव्यश्चाधर्मः सर्वथेति । यतः श्रूयते तैत्तिरीये –

"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठेति" । अतः सोऽवश्यमेवानुष्ठातव्यः कल्याणम भीप्सुभिः । आह न भगवान् बादरायणोऽपि महाभारते-

"न धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः" इति ।

जीवितमपि तृणीकृत्य सुकृतिभिः धर्मस्तु सर्वात्मना परिपालनीय एवेति भावः । इदमप्यत्र अवधेयम् भवति यत् यस्य यो धर्मः स तस्य निरतिशयगरीयानेव भवति, **"स्व धर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"** इति स्थान एवोक्तं योक्तिकैः । यतो दृश्यते हि लोके यदेकस्य धर्मः तदन्यस्य अधर्मः । ब्राह्मणस्य यो धर्मः न स क्षत्रियस्य । वैश्यस्य ये धर्माः न ते शूद्रस्य । ब्रह्मचारिणो ये धर्मा न ते गृहमेधिनामित्येवं प्रस्थानभेदात् धर्मा अपि सुतरां बेभिद्यन्तेतमाम् । एतादृशं धर्माधर्मलक्षणं विपुलजाटिल्यजालसंवलितं प्रबुध्यैव भगवता मनुना अतीव सरलं सुगमावबोधञ्च विस्पष्टं समुपदिष्टं धर्मतत्वनिणिनीषयेति-

"श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।

अस्यायमाशयः यदात्मनः प्रतिकूलं भवेत्तदन्येषां न कदापि समाचरणीयम् । तथा चरणमेव परमोधर्म इति प्रबोध्यम् ।

अथापि यद् यजनाध्ययनदानादीनि धर्मतत्वानि यत्रतत्रोपदिष्टानि, तत्रापि धर्मचारिणा सक्षणेन खलु भवितव्यम् ।

इज्याध्ययनदानानि

तपः सत्यं धृति क्षमा ।

तेषु पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते ।

उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ।।

तत्रापि सत्यन्तु सर्वेतरानतिशेते । तदेतेनाकूतं भवति यत्सत्यमेव परमोधर्म इति । तच्च सत्यं मनसा वाचा कर्मणानुष्ठितमेव धर्मपदवीमधिरोहति । अतएव कविभिरुदाहृतम् **"सत्यान्नास्ति परोधर्मः ।" "सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्"** इत्यनेकाः शास्त्रोपपत्तय : विलसन्ति । सत्यप्येवं विद्वद्भिः धर्मस्वरुपनिर्णयार्थे भगवती श्रुतिरेव आलोडनीया भवति । "धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति" इति ।

एवं यथाकथञ्चिद् बुद्धिपद्धतिमवतरितेऽपि धर्मतत्वे तदाचरणं तत्क्रियान्वयीकरणंत्वतीव कठिनम् । विरला एव सत्पुरुषा धर्मानुष्ठाने प्रवर्त्तन्ते । ये धर्ममाचरन्ति त एव दिजयिनो भवन्ति खलु संसारसंघर्षे । अत्र **'यतो धर्मस्ततो जयः'** इत्युक्तिः अक्षरशः सत्यसम्भृता विलसति । महाभारताख्यसङ्गरे धर्मकल्पद्रुमारूढानां योगीश्वरश्रीकृष्णचन्द्रदर्शितपथा सञ्चरमाणानांधर्मराजयुधिष्ठिरप्रभृतिपाण्डवानां यो विजयः कुत्सितासितकर्माचारिणां दुर्विनीतानां परसम्पदामपहनतृणाम् अधर्ममाचरताम् कायराणां कौरवाणां विद्यमानेषु संख्यातीतेषु सैन्यदलेषु अनल्पकल्पसमग्रसाधनसामग्रीसम्पन्नेश्वपि पराजयः समपद्यत तं प्रति तेषां धर्मवैमुख्यमेवापराध्यति । तदेव च खलु मुख्यकारणत्वेनोन्नीयते नयज्ञैः । पाण्डवानां विजये तेषां भूयसी सुदृढधर्मनिष्ठिता एव विजयस्य हेतुरिति ध्रुवं मन्यन्ते चक्षुसमन्तो विचक्षणाः । कारणान्तरन्तु सुभृशं मृग्यमाणमपि न लोचन गोचरी भवति । इत्थमेव रामरावणयोर्युधेऽपि हेतुता किल धर्माधर्मावेव संलक्षितव्यौ । अतः यद्यपि धर्मस्य पन्था अतिगहनो दुरूहश्च तथापि स ससभारम्भं समाश्रयणीय एव । रक्षितो धर्मः अवश्यमेव रक्षिष्यतीति निर्विशङ्कम् । यद्यपि सत्यमेवोक्तं केनापि अभियुक्तेन –

मानुष्ये सति दुर्लभा पुरुषता पुंस्त्वे पुनर्विप्रता

विप्रत्वे बहुविद्यताऽतिगुणता विद्यावतोऽर्थज्ञता ।

अर्थज्ञस्य विचित्रवाक्यपटुता तत्रापि लोकज्ञता

लोकज्ञस्य समस्तशास्त्रविदुषो धर्मे मतिः दुर्लभा ।।

धर्मस्य विशुद्धस्वरुपमधिजिगांसुभिः सर्वमपि शास्त्रजातं सुविदितं कार्यम् । तदानीमेव ते धर्माधर्मस्वरूपं विज्ञातुं प्रभविष्यन्ति । मनुष्याणां परमकत्तव्यत्वेनोद्दिष्टम् यत्पुरुषार्थचतुष्टयं धर्मार्थकाममोक्षाख्यं तत्रापि धर्मस्य प्राथम्यं समुपदिष्टमभियुक्तैः । धर्मसाहचर्येण परिपालिताः कामार्थमोक्षा: सिद्धा भवन्ति । न तद्विधुरा इत्याशयः । अतः तादृशः उक्तलक्षणलक्षित एव धर्मः महता प्रयत्नेन सर्वेः पालनीय: ऐहिकाष्मिकसाध्यसिद्धं कामयमानैः यतः धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।

शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद् धि गच्छति ।। इति

धर्मानुष्ठानेनैव मनुष्याः परमं पद्मापनुवन्ति नान्यथेति।

3.10 प्रजातन्त्रशासनपद्धतिः

अथ किं नाम प्रजातन्त्रशासनम् ? उच्यते। प्रजायाः शासनं, प्रजया शासनम्, प्रजायै वा शासनं प्रजातन्त्रम् इत्युच्यते । प्रजातन्त्रशासने खलु वस्तुतः प्रजैव राजा भवति, अतः प्रजातन्त्रसंविधानपि प्रजायाः संविधानं संपद्यते। प्रजया निर्वाचिताः प्रतिनिधयः प्रजातन्त्रशासने अधिकारिणोः भवन्ति। तत्र प्रजा स्वमताधिकारेण लोकसभाराजसभाप्रभृतिसंसदा निर्माणं करोति। अखिलमपि च शासन-निर्वहणयन्त्रं स्वयमेव रचयति। प्रजैव प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरुपनिर्वाचनपद्धत्या प्रातिनिधिसरणया शासनचक्रं संसृजति संगृहाति च । योग्या प्रजा सर्वाङ्गसुन्दरशासनंशासन विधानं च निर्मिमीते अयोग्या चायोग्यम्। पाश्चात्यविशारदा अपि प्रजातन्त्रलक्षणमेवं विदधति यत् प्रजायाः प्रशासनं, प्रजायै प्रशासनं प्रजया वा प्रशासनं प्रजाशासनमिति। **"यथा राजा तथा प्रजा"** इत्यासीत् प्राचां प्रवादः। परं प्रजातन्त्रे स एव न्यायः विपर्यासं भजते। 'इदानीं' तु यथा प्रजा तथा राजा इत्येवोचितं प्रतिभाति। प्रजातन्त्रशासनस्य तदैव साफ़ल्यं भवितुं शक्नोति यदा प्रजाः सुशिक्षिताः शिष्टाः, धर्मपरायणाः, कर्तव्यनिष्ठिताः, परोपकारव्रताः, नीतिनिपुणाश्च स्युः नान्यथा।

तदिदं प्रजातन्त्रशासनं कदा कथं वा प्रादुर्बभूव इति प्रश्नः निसर्गतयैवोदेति । पुरावृत्तानुशीलनेन ज्ञायते यत् कालानुसारं परिस्थितिवशंवदतया च नैका राजपद्धतयः प्रचलिता यथा कुलीनतन्त्रम्, क्रूरतन्त्रम्, अल्पजनतन्त्रम्, मूर्खजनतन्त्रम्, राज्यतन्त्रम्, प्रजातन्त्रम्, इत्यादीनि विविधानि राजतन्त्राणि यथासमयं प्रादुरभूवन् । एतासु शासनपद्धतिषु सर्वोत्कृष्टा प्रजातन्त्रपद्धतिरेव इत्यत्र न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। अस्याः पद्धतेः प्रादुर्भावः इटली देश एव समभवद् इति भूयसामितिहाससज्ञानां सम्मतिः । तत्र गेरिबाल्डी महोदयं मेजिनीमहोदस्य प्रचारकमेव मन्यन्ते। भवतु परमिटली देशः अस्याः पद्धतेः प्रसवभूमिरिति तु निर्विवादमेव। भारतीयशास्त्रनुशीलनेन ज्ञायते यत् इयं पद्धतिः प्राचीनभारतेऽपि प्रचलिता आसीत्। ऋग्वेदे राज्ञः प्रजातन्त्रत्वमुपन्यस्तम्-

"विशस्त्वा सर्वा वाञ्च्छन्त । मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्" अर्थात् सर्वाः प्रजाः त्वां कामयन्ताम् त्वदीयराष्ट्रञ्च प्रजातन्त्रमपि स्वराज्यसंवलितं भवेत्।

तैत्तिरीयब्राह्मणे च –

"विशि राजा प्रतिष्ठितः।"

विशि प्रजायामेव राज्ञः प्रतिष्ठानं भवति। प्रजया निर्वाचनपद्धत्या राजा प्रतिडापितो भवतीत्यर्थः। स्वराज्यं हि नाम राष्ट्रस्य परामोत्कर्षधायकं तत्त्वम् । सर्वेषां स्वराष्ट्रियप्रजाजनानां सम्मत्या प्रातिनिध्यविधया प्रवर्तितं यद्राज्यं तत्स्वराज्यपदेन व्यपदिश्यते । तादृशस्वराज्योपलब्ध्यर्थमेव जनैः प्रयतितव्यम् इति ऋग्वेदेऽपि समुपदिष्टम्। बेदे स्वराज्यमहिमा वर्णनार्थमेकमखिलं सूक्तमेव पठ्यते, तद्धि स्वराज्यसूक्तमिति नाम्ना कथ्यते। अन्यत्रापि बहुत्र स्वराज्यगुणगरिमाऽवलोक्यते-

यदजः प्रथमं संबभूव सह तत्स्वराज्यमियाय।

यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्। ऋक्॥

कस्यापि राष्ट्रस्य कृते स्वराज्यसदृशमन्यत् भूतं प्रभूतं वैभवं नास्ति। एतेन ध्वन्यते प्रस्फुटं यत् प्रजातन्त्रं शासनमपि तदेवोत्कृष्टं यत्स्वराज्यसंवलितं भवेत्।

एष प्रजातन्त्रप्रसङ्गः अन्यत्रापि संस्कृतसाहित्ये दरीदृश्यते। प्रायशः वर्षाणां सहस्रद्वयी व्यतीयाय यदा राजनीतिनिपुणः कौटल्यापरनामधेयः आचार्यचाणक्यः बभूव । तेन कूटनीतिधुरंधरेण एकायत्तं नन्दवंशप्रशासनमिच्छिद्य मौर्यकूलभूषणं चन्द्रगुप्तं राज्यसिंहासने प्रतिष्ठापयामास। महान राजनोतिज्ञ: कौटल्य: चन्द्रगुप्तस्य कृते साम्राज्यधुरं निर्वोढमर्थशास्त्रविधं लोकविश्रुतं राजनीतितन्त्रं प्रणिनाय । यत्र प्रजातन्त्रपद्धतिमेवावलम्ब्य राज्यतन्त्रं सञ्चालयितव्यमिति सर्वं सुनिपुणां प्रतिपादितम्। शास्त्रमिदं राज्यचक्रसञ्चालनौपयिकान् अर्थान् अनुबध्नाति राजाप्रजाऽनुबन्धिनः समस्तानप्यावश्यकान् विषयान् संस्पृशति । ग्रन्थरत्नमिदवलोक्य पाश्चात्या अपि नितिविशारदा विस्मिता भवन्ति यद्भारतेऽपि ईदृशा नीतिनिपुणाः पण्डिताः समजायन्त।

अस्याः पद्धते: दोषाः - अस्यामनेके गुणाः सन्ति दोषा अपि नैके। यदि दोषा अस्याः पद्धते: सावधानतया न दूरीकृता: स्युः तदेयं पद्धतिरभिशापतां व्रजति । प्रथमो दोषस्तावत् दलगतबन्धनस्य । प्रजातन्त्रशासने केनापि दलविशेषेण न भवितव्यम् । प्रजातन्त्रीयनियमानाश्रित्यैव निष्पक्षपातेन निर्वाचनादिकार्यजातं भवेत्। अधिकारिणां नियुक्तिरपि योग्यताधारे स्यात्। दलविशेषस्य शासनं न कदापि निर्दोषं भवति। एवं विधं शासनं प्रजातन्त्रस्य महान् दोषः । शासनारुढम् दलं स्वपरिपुष्टये दलान्तरस्य निराकरणाय च सदैव यतते । विशुद्धप्रजातन्त्रीयशासने इमे दोषा न निर्वहणीयाः । द्वितीयो महान् दोषः अयोग्या निर्वाचक: निर्वाचनयोग्या एव जनाः सुयोग्यान् सदस्यान् अधिकारिणश्च निश्चिन्वन्ति। परप्रत्ययनेयबुद्धयस्तु जनाः सदैव निर्वाचनपद्धतेः कलङ्का एव जायन्ते।

3.11 सारांश

इस इकाई में आपने निबन्ध के बारे में अध्ययन किया आपने जाना कि निबन्धलेखन किस प्रकार से होता है। निबन्ध की भाषा किस प्रकार की होनी चाहिये। जो की पाठक को सरलता से समझ में आये। आपने जाना कि निबन्ध को गद्य साहित्य की प्रमुख विधा कहा जाता है। निबन्ध के बारे में तो यह तक कहा जाता है कि "निबन्ध गद्य की कसौटी है।" निबन्ध शब्द नि+बन्ध+ल्युट निबध्यते अस्मिन् इति निबन्धनम्। नि का अर्थ होता है भली – भांति और बन्ध अर्थात बांधना। ऐसी रचना जिसमें निबन्धकार अपने भाव या विचार को सुसंगठित, व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करता है। निबन्धकार निबंधों के माध्यम से अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। निबन्ध में विषय और आकार में एक रूपता होती है। मुख्यतः निबन्ध तीन प्रकार के होते है आख्यानात्मक, वर्णात्मक, और विवेचनात्मक। निबन्ध की भाषा सरल, सुगम सुबोध होनी चाहिये। साथ ही आपने जाना कि निबन्ध की सामान्यतः तीन प्रकार की भाषा होती है सरल, जटिल और प्रौढ। सरल भाषा में पंचतंत्र , हितोपदेशादि ग्रंथों के संदर्भ में देखि जा सकती है। प्रौढ भाषा दशकुमार चरित , वासवदत्ता, कादम्बरी आदि ग्रंथों में देखि जा सकती है। जटिल भाषा नलचम्पू, यशतिलकचम्पू, युधिष्ठिरविजय आदि ग्रंथों में देखि जा सकती है। निबन्ध के संदर्भ में महाकवि कालिदास की शैली ही ग्रहण करनी चाहिये। न कि बाण भट्ट की। अतः निबन्ध की भाषा सरल, सुबोध, एवं हृदय स्पर्शी होनी चाहिये। इस प्रकार निबन्ध की भाषा एवं कतिपय संस्कृत निबंधों का आपने इस इकाई में भली-भांति अध्ययन किया।

3.11 पारिभाषिक शब्दावली

- जटिल - कठिन
- नियमा: - नियम
- च - और
- भवति - होती है
- कालिदासस्य - कालिदास की
- केचन - कुछ
- कीदृशी - किस प्रकार
- वर्णात्मके - वर्णात्मक में
- कितिविधा – कितने प्रकार की
- नित्यो - हमेशा

3.12 संदर्भ सूची ग्रंथ एवं अन्य सहायक पुस्तकें

1. बृहद अनुवाद चंद्रिका, चक्रधर नोटियाल 'हंस'

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. निबन्ध के महत्व के बारे में लिखिए।
2. "कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते" पर निबन्ध लिखिए।
3. भारतीय संस्कृति के स्वरूप पर निबन्ध लिखिए।

इकाई.4 आधुनिक विषयक निबन्ध

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 आधुनिक विषयक निबन्ध

- 4.3.1 अस्माकं प्रदेश:
- 4.3.2 उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय:
- 4.3.3 शिक्षण संस्थासु अनुशासनम्
- 4.3.4 भारतीय-शिक्षापद्धतौ अपेक्षिताः परिष्काराः
- 4.3.5 आधुनिकी शिक्षा-पद्धतिः
- 4.3.6 वर्तमान-शिक्षा-पद्धतौ अपेक्षिताः परिष्काराः
- 4.3.7 महिलानां सशक्तीकरणम् आरक्षणं च
- 4.3.8 स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च
- 4.3.9 अस्माकं राष्ट्रियाः समस्या:
- 4.3.10 भ्रष्टाचारः, समस्या समाधानं च
- 4.3.11 आतंकवादः, समस्या, तत्समाधानं च
- 4.3.12 भ्रष्टाचारस्य कारणानि निरोधोपायाश्च
- 4.3.13 आधुनिकयुगे संस्कृतशिक्षायाः स्थितिः
- 4.3.14 उत्तराखण्डे द्वितीय राजभाषा संस्कृतम्
- 4.3.15 संस्कृत सम्भाषणम्
- 4.3.16 संस्कृत भाषायाः प्राचारोपायाः
- 4.3.17 उत्तराखण्डे संस्कृत वैभवम्।
- 4.3.18 शारिरिक शिक्षायाः महत्त्वम्
- 4.3.19 आपदा

4.4 सारांश

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.6 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

संस्कृत व्याकरण-पत्रलेखन एवं निबन्ध नामक पाठ्यक्रम के तृतीय खण्ड से सम्बन्धित यह चतुर्थ इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों में हम निबन्ध लेखन विधि एवं प्रकार के विषय में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में हम (अस्माकं प्रदेशः, उत्तराखण्डमुक्तविश्वविद्यालयः,शिक्षण संस्थासु अनुशासनम्, भारतीय-शिक्षापद्धतौ अपेक्षिताः परिष्काराः, आधुनिकी शिक्षा-पद्धतिः, वर्तमान-शिक्षा-पद्धतौ अपेक्षिताः परिष्काराः, महिलानां सशक्तीकरणम् आरक्षणं च, स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च, अस्माकं राष्ट्रियाः समस्याः , भ्रष्टाचारः, समस्या समाधानं च,आतंकवादः, समस्या, तत्समाधानं च, भ्रष्टाचारस्य कारणानि निरोधोपायाश्च,आधुनिकयुगे संस्कृतशिक्षायाः स्थितिः, उत्तराखण्डे द्वितीय राजभाषा संस्कृतम् , संस्कृत सम्भाषणम्, संस्कृत भाषायाः प्राचारोपायाः, उत्तराखण्डे संस्कृत वैभवम्, शारिरिक शिक्षायाः महत्त्वम्, आपदा) आधुनिक विषयक निबन्धों के विषय में चर्चा करेंगे ।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- आधुनिक विषयक निबन्धों के विषय में जान सकेंगे।
- निबन्ध लेखन में सामर्थता प्राप्त कर सकेंगे।
- निबन्ध लेखन में स्वयं के चिन्तन को सकारात्मक दिशा दे सकेंगे।
- आधुनिक समस्या समाधान विषयक निबन्धों से अवगत हो सकेंगे।

4.3 आधुनिक विषयक निबन्ध

4.3.1 अस्माकं प्रदेशः —

अस्माकं प्रदेशस्य नाम उत्तराखण्ड प्रदेशः अस्ति। अस्य स्थापना ७ नवम्बर २०१० ईसवीयाब्दे जाताः। अस्य राजधानी देहरादूने अस्ति। अस्य निर्माणं कुमाऊं-गढ़वाल मण्डलयो सम्मेलनेन अभवत् । अस्मिन् प्रदेश त्रयोदश जनपदाः, पंचनवति विकास क्षेत्राणि, पंचशततं नगराणि, तीर्थक्षेत्राणि, पर्यटनस्थलानि च सन्ति। पर्यटन दृष्ट्या सम्पूर्ण भारतदेशे अस्य विशिष्टं स्थानं चास्ति। अत्रत्या उन्नत पर्वतशिखराणि विविधानिसरोवराणि, हिमाच्छन्न स्थलानि, हरितानि वनानि पर्यटका नां चेतासि वलात् आकर्षयति। अत्र कृत्रिम सरोवराणि अपि सन्ति। गंगा, यमुनयोः पवित्र नद्यौ उभन्नैव प्रवहतः। यद्यपि अत्र अनेक नद्यः सन्ति । परं द्वयोः विशिष्ट स्थानं। प्रदेशे- वद्रीनाथः, केदारनाथः, गंगोत्री यमुनोत्री नामधेयानि धामानि विराजन्ते। एतद्‌तिरिक्तं पंच वद्री, पंच प्रयागाः अपि दृष्टुं शक्यन्ते। हरिद्वार सदृशं पवित्र नगरं अत्रैव वर्तते। अत्र अनेकानि तीर्थस्थलानि धामानि, वनानि , शक्ति पीठाः, ज्योतिलिङ्ग अपि अत्र विराजन्ते । अस्मात् कारणात् अस्य प्रदेशस्य नाम देवभूमिः अपि कथ्यते।

4.3.2 उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालयः —

देवभूमेरुत्तरखण्डस्य हिमालयस्य गौरवभूतः गिरिशोभां संवर्धयन्नयमुत्तरखण्डमुक्तविश्वविद्यालयः गिरिराजतले सुशोभते । अस्य स्थापना

उत्तराखंडशासनस्य एक्ट 23/2005 द्वारा विधानसभायां पारितप्रस्तावेनाभवदिति । विश्वविद्यालयस्यास्य स्थापनाया: मुख्योद्देश्य: राज्ये दूरस्थशिक्षाप्रणालीमाध्यमेनोच्चशिक्षाप्रदानं शिक्षयार्थिकलाभं छात्रा: प्राप्नेयु:, सुलभतकनीक्या राज्यस्य दुर्गमक्षेत्रपर्यंतं जनेभ्यो शिक्षाव्यवस्था च । अस्य विश्वविद्यालयस्य स्थापनाया अद्य पर्यन्तमेकोनविंशति: वर्षाणि पूर्णानि। अद्य यावत् विश्वविद्यालय: नित्यं प्रगतिशिखरे स्वपताकामरोहयन्नस्ति। विश्वविद्यालयोयमद्योत्तराखंडस्य सर्वोत्कृष्टविश्वविद्यालय: । सम्प्रत्यस्य मुख्यालय: हल्द्वान्यामस्ति देहरादूने चास्त्येक: परिसर:। अस्याष्टौ क्षेत्रीयकेंद्रा: 126 अध्ययनकेंद्रस्थलाश्च विद्यन्ते । विश्वविद्यालयस्य संरचनायां क्षेत्रीयाध्ययनकेन्द्रस्थलौ तध्धमनीवत् वर्तेते, याभ्यां विश्वविद्यालयस्य गति: नित्यं संप्रवाहिता भवति । उत्तराखंडमुक्तविश्वविद्यालयद्वारा विभिन्नक्षेत्रीयाध्ययनकेंद्रेषु संचालिता: कार्यक्रमा अस्य लोकधर्मिता संजीवता व्यापकप्रतिध्वनिश्च विद्यन्ते। विश्वविद्यालयेस्मिन् शताधिका: पाठ्यक्रमा: संचालिता: सन्ति, यत्र प्राच्यविद्यया सहैवाधुनिकविषयाणामपि समावेशो विद्यते । यथा – मानविकी-विद्याशाखायां संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी-ज्योतिष-उर्दू-संगीतादया:, समाजविज्ञान-विद्याशाखायां इतिहास-समाजार्थशास्त्र-मनोविज्ञानादय:, विज्ञानविद्या-शाखायां भौतिक-रसायनशास्त्रादय:, भौमिकी-पर्यावरणविद्याशाखायां वानिकी-भूगोलादय:।

2022 तमे वर्षे NAAC द्वारा मूल्यांकने B++ इति ग्रेड: विश्वविद्यालयेन प्राप्त: तथा दिव्याङ्गेभ्य: विशेषकार्याय राष्ट्रपतिपुरस्कारोप्यवाप्त: ।

अस्योद्देश्यानि—

विश्वविद्यालय: राज्यस्य विकासे रचनात्मिकां भूमिकां निर्वाहयितुं "या राज्यस्य समृद्धपरम्परास्वाधारिता भवेत्" राज्यस्य जनानां संस्कृत्यै मानवीयसंसाधनानामुन्नत्यायभिवृद्ध्यै च शिक्षया शोधेन प्रशिक्षणेन च प्रयासरतो भविष्यति। एतदर्थं हि-

• राष्ट्रविकासाय निर्माणाय चावश्यकोपाधीनां डिप्लोमाप्रमाणपत्रपाठ्यक्रमानां प्रोत्साहनं करिष्यति तेषु च विविधतामानयिष्यति।

• राज्यस्य सुविधारहितसमूहेभ्य: यथा – ये दूरस्थक्षेत्रे निवसन्ति, श्रमजीविवर्गेभ्य:, गृहिणीभ्य: ज्ञानपिपासुवयेभ्यश्चोच्चत्तरशिक्षाया: सुगमोपबंधनं करिष्यति।

• नवाचारायानानुसंधानाय प्रशिक्षणाय कौशलविकासाय च नूतनावसरान् प्रस्तौष्यति।

• स्वछात्रेभ्य: परामर्शाय मार्गदर्शनाय चोपबंधनं करिष्यति।

• अध्ययनाय यथोचितस्नातकोत्तरपाठ्यक्रमानां समुपबंधनं करिष्यति , समनुसंधानस्य प्रोत्साहनं करिष्यति।

4.3.3 शिक्षण संस्थासु अनुशासनम्—

जीवने प्रतिक्षेत्रे यादृशं महत्त्वं शिक्षाया अस्ति ततोऽधिकं अनुशासनस्य यदि मानवे अनुशासन न स्यात् तदा मानव: पशो: निम्नतर: प्राणी मान्यते। शिक्षा तदेव शोभते यदा छात्र: अनुशासनप्रियः स्यात् जीवनस्य प्रत्येक क्षेत्रे अनुशासनस्य आवश्यकता वर्तते, कोपि जनः किमपि कार्यं कुर्यात् अनुशासनं आवश्यकीयम् अस्ति। एतद् अनुशासनं शिक्षा माध्यमेन एवं जनः प्राप्नोति, कोऽपि जनः पूर्वं प्राथमिकी, माध्यमिक स्तरीयां शिक्षा नूनं गृह्णाति, तदेव पुठनावसरे अध्ययनेन सह जानाति गृहेमाता पितादिभि: सह कथं व्यवहरेत, मित्रै सह कथं

व्यवहरेत ज्येष्ठै: कनिष्ठै: सह कथं व्यवहरेत, विद्यालये आगत्य, सहपाठिभिः, आचार्यै, प्राचार्यै:, आगन्तुकै: सह कथं व्यवहरणीयम्, एतदेव अनुशासनम् कथ्यते।

अनुशासन प्रियः छात्राः यदा गच्छति तदा सर्वं अनुशासितं दृष्यते यदा छात्राणां मध्ये गच्छति तत्र सर्वं अनुशासितं दृश्यते यदा छत्राणां मध्ये गच्छति तदा छात्रा: अनुशासिताः, क्रीड़ाक्षेत्रे गच्छति, क्रीड़ाऽपि अनुशासिता भवति समाजे यत्र कुत्रऽपि गच्छति तत्र सर्वं अनुशासितं दृश्यते अध्ययनं कृत्वा कार्यक्षेत्रे, व्यवसाये, व्यापारे, सेवायां राजनीतौ कार्य क्षेत्रं भवेत् सर्वत्र अनुशासनस्य कारणात् विशेषता दृश्यते। तस्य दैनिक जीवनं, आहार व्यवहारादिकं भोजनं शयनं भाषणं क्रीडनं अपूर्वं एव दृश्यते, जनाः तदीय व्यवहारस्य अनुसरणं कुर्वन्ति शिक्षां गृहीत्वा एव छात्रा: कार्यक्षेत्रे प्रविशन्ति। अतो प्राथमिक, माध्यमिक, महाविद्यालयाः विश्वविद्यालया: स्युः अथवा तकनीकी शिक्षण संस्थानाः भवेयुः सर्वत्र अनुशासनं आवश्यकीयम्॥

4.3.4 भारतीय-शिक्षापद्धतौ अपेक्षिता: परिष्कारा:

अज्ञानान्धतमः प्रणोदप्रवणा लोकोपकृत्येकदृक्।
पाषण्डादिनिवारणैकमतिदा मोदावहा मानिनाम्।
सद्वृत्तेन विवर्धिताखिलगुणा या शस्यते ज्ञानिषु
या देहात्ममनोविकासरुचिरा शिक्षाऽस्तु सा श्रेयसे॥ (कपिलस्य)

शिक्षाया: स्वरूपम्— शिक्षा कीदृशी स्यात् ? इति प्रश्नः प्राक्कालादेव विचार- चर्चा-विषयः। **'सा शिक्षा या विमुक्तये', 'या लोक-परलोकोभयसाधनी स विद्या'। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।** (अथर्व० ११.५.१७) **ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्। गर्भो भूत्वाऽमृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वाऽसुरांस्ततर्ह॥** (अथर्व० ११.५.७)

इत्यत्र जितेन्द्रियत्वं सर्वोत्कृष्ट-गुण-सम्पन्नत्वं दुश्चरित्रादिवारणं शिक्षाया उद्देश्यं निरूप्यते। एवं यया सर्वाङ्गीणा समुन्नतिः संजायते सा शिक्षा।

भारतीय-शिक्षा-पद्धत्या गुणा दोषाश्च - साम्प्रतिकी भारतीया शिक्षापद्धतिः वर्गादिभेदम् अनाश्रित्य सर्वजनसुलभेत्येव भारतीयशिक्षा-पद्धतेर्गुणः। अपरतो दोषाश्चेद् लक्ष्यन्ते तर्हि शिक्षा-पद्धतिरियं विविधासाध्यरोग-ग्रस्ता। तत्र प्रधानत्वेनोल्लेख्या दोषाः सन्ति - १. आस्तिक्य-धार्मिकता-चरित्र-जितेन्द्रियत्व-ब्रह्मचर्य-सत्यभाषणादि-गुणानाम् उपेक्षा। २. स्वार्थबुद्धेः, असंयमस्य, अनैतिकतायाश्चाप्रतिहतः प्रसारः। ३. शिक्षा- पद्धतेर्दोषात् परीक्षाणां दोषाकुलत्वम्। ४. परीक्षाविधेर्दूषिता प्रणाली। ५. उपाधीनाम् अवमूल्यनम्। ६. वृत्ति-प्राप्ति-समस्योत्पादनम्। ७. दूषित-राजनीतेः प्रवेशः। ८. श्रमे श्रमसाध्येकार्ये वाऽरुचिः। ९. शिक्षाया अर्थकरीत्वाभावः।

शैक्षिकदृष्ट्याऽपेक्षिता: परिष्कारा:— (१) शैक्षिक स्तरोन्नयनम् - शिक्षास्तरे सर्वतोऽवनतिरवलोक्यते। वैदेशिक शिक्षा-पद्धति-स्तर-दृष्ट्या भारतीय-शिक्षा-स्तरोऽवनततमो विज्ञायते। विशेषतश्च विज्ञान-इंजीनियरिंग-मेडिकल-टेक्निकल- विषयेषु। शिक्षा-स्तरोन्नयनं विना न शिक्षा श्रेयसे भविष्यति। **(२) शिक्षणपद्धतौ परिष्कार: -** वर्तमान-शिक्षापद्धतौ न तथा विषयबोधे बलम् आधीयते, यथा रटन-पद्धतौ। विषयबोधम् अन्तरेण न तत्त्वार्थावगमः। **(३) परीक्षापद्धतौ परिष्कार:-** परीक्षा-पद्धतौ आमूलचूलं परिवर्तनम् इष्यते। साम्प्रतिकी परीक्षा

पद्धतिर्योग्यता-निर्धारणं विहाय, येन केनापि प्रकारेण साधुना असाधुना वोपायेन परीक्षोत्तरणम्, तत्र च योग्य-श्रेणी-प्रापणं समर्थयते । **(४) शोध-प्रवृत्त्युद्भावनम्** – छात्रेषु विषयान् प्रति स्वाभाविकी अभिरुचिः उदियात्, येन जीवने तस्य तत्त्वावगाहित्वं गम्भीराध्ययनं च सम्पद्येत। पल्लवग्राहि-पाण्डित्यं न स्वकल्याणाय न च देशकल्याणाय सम्पत्स्यते । **(५) अनुपयोगि विषय-निःसारणम्-** शिक्षाक्रमे, प्रधानतो विद्यालयीय शिक्षाक्रमे, बहवोऽनुपयोगिनो विषयाः पाठ्यत्वेन निर्धार्यन्ते। तेषां पाठ्यक्रमाद् निःसारणम् आवश्यकम्। यथा-उर्दू-भाषाध्ययनम्, त्रिभाषाफार्मूलाप्रयोग-रूपेणानिवार्यत्वेन आंग्लभाषाध्ययनं दाक्षिणात्यभाषाध्ययनं वा। साम्प्रतं विद्यालयेषु शिल्पविषयाणां शिक्षणं केवलं मनोरञ्जनायैव भवति।

राष्ट्रिय-दृष्ट्याऽपेक्षिताः परिष्काराः (१) राजनीति-निष्कासनम् छात्रसंघ- माध्यमेन छात्रेषु राजनीतिरारोप्यते । अनिच्छन्तोऽपि छात्रा नेतृवर्गेण विश्वविद्यालयादिषु स्ववाद-प्रचारार्थं प्रेर्यन्ते, तदर्थं धनव्ययश्च विधीयते, एतत् सर्वथा गर्हणीयम् । (२) देशभक्ति-भावोदयः - छात्रेषु देशभक्ति भावोदयाय शिक्षा निदेशकैर्न किञ्चिद् निर्दिश्यते। फलस्वरूपम् अधीतिनो विद्यार्थिनो देशभक्तिभावना-शून्याः संलक्ष्यन्ते। (३) क्रीडादीनां सुव्यवस्था - छात्राणां क्रीडा-विषये नाभिरुचिर्जागर्यते। क्रीडायोग्यता- विरहितं जीवनं निष्फलं निरर्थकं च।

सामाजिकदृष्ट्याऽपेक्षिताः परिष्काराः- (१) श्रम-महत्त्व-शिक्षणम् आधुनिक-शिक्षायां शारीरिक श्रम-महत्वं न शिक्ष्यते, न च प्रशस्यते । अतएव स्वावलम्बनभावोऽपि न जागर्ति । शारीरिक परिश्रमे, क्षेत्रादिषु कार्यकरणे, स्वच्छता-कार्य- सम्पादने गौरवमेवावगन्तव्यम्। न च तत्र लज्जायाः किंचित् कारणम्। एवं महात्मनो गान्धेः सिद्धान्तम् अनुसृत्य श्रममहत्त्वं शिक्षणीयम्। (२) जातीय-दोष-निराकरणम्-केचन विद्यालया महाविद्यालयाश्च ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यादि-वर्ग-विशेषम् आश्रित्य संचाल्यन्ते । एतत् सर्वथा दोषानहम्। सम्प्रदाय-भावनयापि प्रवर्तिता आङ्ग्ल-यवनादि-विद्यालया देशोन्नतौ बाधकाः, सम्प्रदाय-विष-प्रवेशेन च दोषम् आतन्वते ।

आर्थिक दृष्ट्याऽपेक्षिताः परिष्काराः (१) शिक्षाया अर्थकरीत्वम्-शिक्षाया अर्थकरीत्वम् अनिवार्यम्। याऽधीतिनां जीविकानिर्वाहं वृत्तिव्यवस्थां च न साधयति, न सा शिक्षा श्रेयसे। (२) विश्वविद्यालयेषु छात्रप्रवेशनियन्त्रणम् - विश्वविद्यालयेषु येऽध्ययनरुचयः, व्युत्पन्नाः, विविधशास्त्रदक्षाः, त एव प्रवेश्याः । तत्र च विषयविशेषज्ञताम् अनुरुध्याध्यापनव्यवस्था स्यात् । केवलम् उपाधिप्राप्त्यर्थं छात्रप्रवेशो न स्यात् । (३) औद्योगिकं प्रशिक्षणम् - विद्यालयेषु तथा औद्योगिकं यान्त्रिकं हस्तकलाविषयकं विविधकला-विषयकं शिक्षणं स्यात्, यथा कुटीरोद्योगे लघुद्योगे च छात्राणां ज्ञानम् उपयुज्येत। एवं वृत्ति-समस्या कथंचिद् निराकर्तुं शक्यते । (४) न करणिकोत्पादनम् - करणिक (क्लर्क, बाबू) -वर्गस्योत्पादनं न शिक्षाया उद्देश्यम्। (५) शिक्षायाः स्वल्पव्ययसाध्यत्वम् - साम्प्रतिकी शिक्षा तथा व्ययसाध्या, यथा निर्धनानां सामान्यजनानां चोच्चशिक्षा-ग्रहणं सुदुष्करमेव । एतद्दोषनिराकरणं शिक्षाशास्त्रिभिश्चिन्तनीयम् ।

सांस्कृतिक दृष्ट्याऽपेक्षिताः परिष्काराः- (१) सांस्कृतिकदृष्टिः - छात्रे। सांस्कृतिकदृष्ट्या विकासः स्याद् येन धर्माभिरुचिः, चरित्रोन्नतौ अभिरुचिः, विविध-नृत्य गीत-वादत्रादि-कलासु प्रवृत्तिः, विनयादि-गुण-समन्वयश्च स्यात् । सांस्कृतिकोनाति- सम्पत्रैव शिक्षा श्रेयसे स्यात् । (२) यन्त्रीकरणत्यागः - छात्राणां यन्त्रवत् संचालनं स्नेह- सौहार्दादि-गुण-व्यपेतत्वात् तेषु प्रेम-करुणादिहीनत्वं जनयति । न तादृशी शिक्षा श्रेयसे, लोकहिताय च।

संस्कृतभाषा-दृष्ट्याऽपेक्षिताः परिष्काराः- (१) आर्षपद्धतेरुन्नयनम्- प्राचीना आर्षपद्धतिः सर्वथोपेक्ष्यते त्यज्यते चेति राष्ट्र-गौरव-प्रतिकूलम्। गुरुकुलानां शिक्षापद्धतौ यथा आचारस्य, ब्रह्मचर्यस्य, सात्त्विकतायाः, गुरुशिष्य-सद्व्यवहारस्य, चारित्रिकोन्नतेश्च समन्वयः, तथा न आधुनिकशिक्षा-पद्धतौ । (२) पाश्चात्त्य-प्रभाव- त्यागः- भारतीय-शिक्षा-पद्धतौ पाश्चात्त्यप्रभावो यथा यथा वर्धते तथैवेयं पद्धति- दर्दोषपूर्णत्वम् उपैति । पाश्चात्त्यप्रणाली, आंग्ल-भाषा-संरक्षणम्, बाह्याडम्बरश्च यथा पाश्चात्त्यदेशानुकूलं न तथा भारतदेशानुकूलं, भारतगौरवानुरूपं च। लॉर्ड-मैकाले-प्रभृतीनां शिक्षाविषयकं मतं भारतगौरवभ्रंशाय भारतीय-संस्कृति-ध्वंसाय च । (३) संस्कृत- पाठशालादीनाम् अनुपेक्षणम्-प्राचीन-पद्धतिम् अनुसृत्य प्रवर्तिताः संस्कृतपाठशालाः संस्कृतमहाविद्यालयादयः सपत्नीकसुता इवोपेक्ष्यन्ते, दारिद्र्यानल-संधुक्षिताश्च सम्प्रेक्ष्यन्ते। त्रिभाषा-फार्मूला तु संस्कृतभाषायाः समूलोन्मूलनायैव समजनि। एतदनुसारं संस्कृतस्य शिक्षाक्रमे स्थानमेव सुदुष्करम् (४) धार्मिक-ग्रन्थाध्ययनम् - धार्मिक-ग्रन्थानाम् अध्ययनं चारित्रोन्नतिसाधनं सांस्कृतिकसमुत्कर्षार्थं च। वेद-गीता-रामायण- महाभारतोपनिषदादीनां संकलिता महत्त्वपूर्णाः संदर्भा अनिवार्यत्वेन पाठ्याः स्युः । तादृशाः सन्दर्भाः सांस्कृतिकाभ्युदयाय लोकहिताय चारित्रिकोन्नत्यै च भविष्यन्ति ।

4.3.5 आधुनिकी शिक्षा-पद्धतिः

शिक्षाया उद्देश्यम् - शिक्षा मानव-विकासस्य परमं साधनम् । ज्ञानोदयेन नैतिकं चारित्रिकं च विकासं संपादयति । शिक्षा सांस्कृतिकी दृष्टिम् उद्बोधयति । शिक्षया स्वजीवनोन्नत्यै स्वजीवनयापनाय प्रशिक्षणं प्राप्यते । शिक्षा गुणाधानस्य मार्ग प्रशस्तं विदधाति । शिक्षा आधुनिक विषयाणां विज्ञानादीनां प्रशिक्षणं प्रशस्तं करोति । शिक्षा नैतिक-गुणाधानेन सममेव जीवनं सफलयति । शिक्षाया उद्देश्यम् अस्ति मानवस्य सर्वाङ्गीण विकाससाधनम्। तत्र स्वावलम्बन-भावना, लोकहितसाधनं, राष्ट्रीयभावनोद्भावनम्, समाजहितकरणम्, सर्वासु परिस्थितिषु स्व-कार्य-संपादन क्षमता, उत्तरदायित्वभावना, जात्यादि-भेद-निराकरणपूर्वकं मानवत्वस्य विकासनं मुख्यत्वेन उल्लेख्यानि सन्ति ।

एतत् तु सुविदितमेव यत् शिक्षा मानवस्य निर्मात्री शक्तिर्वर्तते । सा एव कर्तव्याकर्तव्यं बोधयति, उन्नतेः साधनं प्रस्तौति, सद्गुणान् आविर्भावयति, दुर्गुण-निराकरणस्य बुद्धिं जनयति, स्वजीवनयापनाय बुद्धिं प्रददाति, वृत्ति-समस्यां निराकरोति, स्वावलम्बन-भावनां प्रबोधयति, नैतिक-गुणानां महत्त्वं प्रस्तौति, जीवन-साफल्याय उच्च-गुणानाम् आधानं विदधाति ।

आधुनिकी शिक्षा-पद्धतिः- आधुनिक शिक्षा-पद्धतेः केचन विशेषाः विशेषत उल्लेखम् अर्हन्ति । ते सन्ति -

१. वर्तमान-शिक्षा—पद्धतौ बालकस्य सर्वाङ्गीण विकासस्य कल्पना । बालको न केवलं शास्त्रीय-विषयानेव जानीयात्, अपितु व्यावहारिक विषयानपि शिक्षेत, तद् यथा- भूगोलम्, इतिहासम्, अर्थशास्त्रम्, राजनीतिशास्त्रम्, विज्ञानम्, गणितम्, संगीतम्, संगणकयन्त्रम् (Computer) आदि विषयान् अपि सम्यग् अवबुध्येत ।

२. यान्त्रिकी शिक्षा (Engineering) — अद्यत्वे यान्त्रिकीशिक्षायां बहु बलम् आधीयते। एषा यन्त्राणां कार्यकलाप-बोधनेन उद्योग-क्षेत्रे, औद्योगिक प्रतिष्ठानेषु च नैपुण्यम् आवहति ।

३. कम्प्यूटर-शिक्षा (Computer) संगणन—शिक्षां प्रददाति । अद्यत्वे प्रतिक्षेत्र कम्प्यूटर शिक्षा अनिवार्यताम् आपद्यते । कम्प्यूटरेण सर्वमपि गणनाकार्य स्वल्पेनैव प्रयत्नेन साध्यते । सांप्रतं

कम्प्यूटरं विविधासु क्रियासु प्रभुज्यते। सर्वेषु कार्यालयेषु कम्प्यूटर विना नास्ति गतिः। सर्वोऽपि यान्त्रिकः क्रिया कलापः कम्प्यूटरेणैव साध्यते। अतएव कम्प्यूटर- शिक्षा सर्वेषु शिक्षणालयेषु प्रवर्त्यते।

४. प्राविधिकी शिक्षा (Technical) — साम्प्रतं सर्वत्र यन्त्राणां प्रवर्तनेन प्राविधिकी शिक्षाऽपि महत्त्वं भजते। अतएव वर्तमानशिक्षापद्धती प्राविधिकी-शिक्षाया विशेषतो व्यवस्था विधीयते।

५. चिकित्साशास्त्रम् (Medical Science) — अग्रत्वे शिक्षार्थिनां चिकित्साशास्त्रेऽपि बहु रुचिः दृश्यते। अतएव चिकित्सा शास्त्रमपि वर्तमान-शिक्षा-पद्धती वैशिष्ट्यं लभते। रोगाणां रोगिणां च संख्या प्रतिपदं वर्धते, अतः चिकित्साशास्त्रम् आधुनिकशिक्षापद्धती महत्त्वं वर्धते। चिकित्साशास्त्रे दक्षाणां वृत्तिसमस्या नास्त्येव।

६. सर्वविषयावगाहि ज्ञानम्— आधुनिक शिक्षायां प्रयत्यते यत् छात्रः सर्वविषयाणां सामान्यं ज्ञानं लभेत।

७. कन्या-शिक्षा-प्रोत्साहनम्— बालकानां शिक्षावद् बालिकानामपि शिक्षायां बलम् आधीयते। अतः कन्या अपि बालकवद् विविध-विद्या-निष्णाता विद्यन्ते।

वर्तमान-शिक्षा-पद्धतेः केचन दोषाः

वर्तमान-शिक्षा-पद्धतौ यथा गुणाः सन्ति, तथैव केचन दोषा अपि दृष्टिपथम् आरोहन्ति। तेषां विशेषत उल्लेख्याः सन्ति

१. पाश्चात्त्य-सभ्यता—प्रभावः वर्तमान-शिक्षा-पद्धतिः पाश्चात्त्य शिक्षा-प्रभावेण ग्रस्ता वर्तते। तत्र भोगवाद-प्रवृत्तिः, श्रम-वैमुख्यम्, श्रम-साध्य-कार्येषु अरुचिः, नैतिक- भावनाया अभावः।

२. उपाधिधारिणां बाहुल्यम्— सर्वेषु विश्वविद्यालयेषु शतशः स्नातकाः, परास्नातकाः, शोधोपाधि-धारिणः प्रतिवर्षम् उत्पाद्यन्ते। यथा तेषां संख्या वर्धते, तथा वृत्ति-समस्याऽपि वर्धते। न सर्वेषां कृते कार्यम् उपलभ्यते, अतः अवृत्ति-समस्या निरन्तरं वृद्धिम् उपयाति।

३. सुविधाऽभिलाषः — वर्तमान-शिक्षा पद्धतौ शिक्षिताः युवका युवत्यश्च सुविधां सौकर्य च वाञ्छन्ति। ते कठिनं श्रमं कर्तुं नाभिलषन्ति। अतएव ते कृषिकार्ये, अन्येषु च श्रमसाध्येषु कार्येषु न प्रवर्तन्ते। एष सुविधाऽभिलाषः तेषां मनोबलम् अपहरति।

4.3.6 वर्तमान-शिक्षा-पद्धतौ अपेक्षिताः परिष्काराः

वर्तमान-शिक्षा-पद्धतेः दोषाणां निराकरणाय केचन परिष्काराः सुतराम् अपेक्षिताः सन्ति। यदि एते परिष्काराः संगृह्यन्ते, तर्हि पूर्वोक्तानां दोषाणाम् अपाकरणं संभवति। ते परिष्काराः सन्ति-

१. आचारशिक्षा नैतिकशिक्षा चानिवार्यरूपेण शिक्ष्येत। संयमस्य महत्त्वम्, दान- दया-परोपकार-उद्यमादीनां महत्त्वं प्रतिपाद्येत।

२. श्रमस्य महत्त्वं शिक्ष्येत। यदि शारीरिक श्रम-महत्त्वं शिक्ष्यते तर्हि शिक्षिता युवका श्रमकार्य प्रसन्नतया ग्रहीष्यन्ति।

३. विश्वविद्यालयेषु छात्र-प्रवेश-नियन्त्रणं स्यात्। ये वस्तुतः अध्ययनरुचयो व्युत्पन्नाश्चत एव प्रवेशं लभेरन्।

४. शिक्षाया अर्थकरीत्वम्- शिक्षा अर्थकरी स्यात्। या शिक्षा जीवन-निर्वाहस्य व्यवस्थां न कुर्यात्, सा शिक्षा न श्रेयसे।

५. औद्योगिकं प्रशिक्षणम् - विद्यालयेषु औद्योगिकं यान्त्रिकं हस्तकला-संबद्धं किमपि कुटीरोद्योगादिकं शिक्ष्येत, यथा शिक्षिता युवका लघुद्योग स्थापने समर्धा भवेयुः।

६. शिक्षा स्वल्पव्यय-साध्या भवेत्- आधुनिकी शिक्षा बहु-व्यय-साध्या वर्तते। न निर्धनानाम् उच्चशिक्षा प्राविधिक शिक्षा च सुलभा ।शिक्षित-युवकानाम् अवृत्ति-समस्या-निराकरणम्

१. शिक्षित युवकानाम् अवृत्ति-समस्या निराकरणाय विद्यालयीय-पाठ्यक्रमेषु किंचित् परिवर्तनम् अपेक्ष्यते । छात्राः केवलं पाठ्य-पुस्तकान्येव न पठेयुः, अपितु जीवनोपयोगि किंचित् शिल्पम् उद्योगं चावश्यं शिक्षेरन् ।

२. कुटीरोद्योग-स्थापना- जापानदेशे कुटीरोद्योग स्थापनेन अवृत्ति-समस्या निराक्रियते । तथैव भारतेऽपि ग्रामेषु नगरेषु च लघुद्योगाः कुटीरोद्योगाश्च स्थापिता भवेयुः। हस्तशिल्पस्य व्यवसायीकरणेन सहस्रशो लक्षशो वा युवका जीविकोपार्जनं कर्तु प्रभवन्ति।

३. नवोद्योग स्थापनायां सर्वकारस्य सहयोगो भवेत् । यदि सर्वकारः तेभ्यो धनस्य व्यवस्थां कुर्यात्, तदा नवोद्योग स्थापना सुकरा भविष्यति ।

४. जनसंख्या-वृद्धि-नियन्त्रणम्। भारते जनसंख्या प्रतिदिनं वर्धते। यदि जनसंख्या- वृद्धिः न नियन्त्र्यते, तर्हि समस्या वर्धिष्यन्त एव ।

५. सामुदायिक-विकास-योजनानां प्रवर्तनम्। सामुदायिक-विकास-योजनासु सहस्रशः शिक्षिता युवका अपेक्ष्यन्ते । यदि सर्वकारः ता योजनाः बद्धपरिकरेण प्रवर्तयति, तर्हि शिक्षितानाम् अवृत्ति-समस्या बह्वंशं यावद् निराकर्तुं शक्यते ।

4.3.7 महिलानां सशक्तीकरणम् आरक्षणं च

महिलानां सशक्तीकरणम् - वैदिक-काले रामायणादि-काले च महिलानां गौरवास्पदं स्थानम् आसीत् । ताः पूज्यदृष्ट्याऽवलोक्यन्ते स्म। जायेदस्तम् (ऋग्० ३.५३.४) नायेंव गृहमस्ति। 'न गृहं गृहमित्याहुगृहिणी गृहमुच्यते' । 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।' (मनु० ३.५६) । 'स्त्री सावित्री' (जैमि० उप०ब्रा० ४.२७.१७) स्त्री गायत्रीवत् पूज्या वर्तते। किन्तु मध्ययुगे तासां स्थितिर्दयनीया संवृत्ता । ताः भोग्याः पुत्रोत्पादन हेतवे एव समभवत्। सैव स्थितिः प्रायो वर्तमानयुगेऽपि संलक्ष्यते । अतएव तासाम् अधिकार- रक्षणार्थं विविधाः प्रयोगाः प्रवर्त्यन्ते । कदाचित् समानाधिकारचर्चा, कदाचिद् आयोगादि- गठनं च क्रियते । केन्द्रीय-संसदि अपि प्रायशो दशवर्षाद् आरक्षण-विधेयकः प्रस्तूयते । परन्तु साम्प्रतं यावद् न काचित् सन्तोषप्रदा प्रगतिः । महिलानां गौरवस्य संरक्षणार्थ तासां सशक्तीकरणं परमावश्यकम्।

वास्तविकी स्थितिः साम्प्रतं वर्तते यद् यथा बाल श्रमिकाणां मुक्त्यै, दलितानां मुक्त्यै, शोषित-श्रमिकाणां कृते यथा आन्दोलनादिकं विधीयते, न तथा महिलानां कृते । तासां प्रति उपेक्षाभावः, हीनताभावो वा प्राबल्यम् आयाति । महिलावर्गोऽपि अज्ञानतावशाद, आत्मविश्वास-न्यूनता-वशात्, उपेक्षाभावाच्च न स्वाधिकारं प्रति तथा प्रबुद्धो जागरूको वा, यथाऽद्यत्वे आवश्यकम् अस्ति ।

स्त्रियो हि स्वाधिकारं प्रति न तथा जागरूकाः, यथा पुरुषाः । भारतीय संविधाने स्त्रीभ्यः केचन विशिष्टा अधिकाराः प्रदत्ताः सन्ति । तद् यथा- समानाधिकारः । पुरुषवत् स्त्रियोऽपि स्वेच्छानुसारं विवाहं कर्तुं प्रभवन्ति । पितुः पत्युश्च सम्पत्तौ तासां समानोऽधिकारः। शिक्षाक्षेत्रे व्यापार-वृत्ति-कार्यकलापे ताः समानाधिकारं भजन्ते । सामाजिक-राजनीतिक- गति-विध्यादिषु तासां समानोऽधिकारः । तत्र कश्चन भेदभावः संविधान-विरुद्धः । परन्तु संविधान-प्रदत्तम् अधिकारं शिक्षिता अपि युवतयो न जानन्ति, का कथा अशिक्षितानां स्त्रीणाम् ।

एवं संविधाने सत्यपि समानाधिकार-विधाने व्यावहारिके क्षेत्रे न तथा तस्य सदुपयोगो दृश्यते, यथाऽऽवश्यकोऽस्ति । एतस्य विशिष्टं कारणं वर्तते महिलानाम् असंगठितत्वम्, जागरूकताऽभावः, संगठित प्रयत्नस्याभावः, संगठनं प्रति तासाम् उपेक्षादृष्टिः, संवेदनशीलताया अभावः । यदि ताः संगठिता भवेयुः, तर्हि न किंचिद् दुर्लभम् ।

महिलानां सशक्तीकरणे काश्चन अन्या अपि बाधाः सन्ति । ताः सन्ति महिलानाम् अशिक्षा, महिलासु रूढिवादि-प्रवृत्तयो दृष्टिकोणं च, तासु गृहाद् बहिः कार्य-करणे अरुचिः। ततोऽपि विशिष्टं कारणं वर्तते वर्तमान-राजनीतेः दूषितत्वम्, तत्र अपराधि-तत्त्वस्य वृद्धिः। राजनीतिक-सत्तायाः कृते बहुमतम् आवश्यकम् । संसदादीनां निर्वाचने प्रायशः पुरुषा एव अधिकारिणो मन्यन्ते । तत्र स्त्रीणां स्थितिः दयनीया वर्तते । केन्द्रीय-मन्त्रि- परिषदि अद्यावधि प्रायशः ५० महिला एव स्थानम् अलभन्त । ता 'अकुशलाः' इति न स्थानं लभन्ते ।

महिलानाम् आरक्षणम् - उपर्युक्त दोष-निराकरणार्थं महिलानां सशक्तीकरणार्थम् आरक्षण-व्यवस्थाऽनिवार्या वर्तते । एतत् तु सर्वेषां विदितमेव यत् सुशिक्षिताः नार्यः सर्वमपि कार्यकलापं कर्तुं प्रभवन्ति । ताः दूर-संचार-कार्येषु, कम्प्यूटर-कार्येषु, चिकित्साक्षेत्रे, विज्ञान-क्षेत्रे, कार्यालय-कार्येषु महती दक्षतां दधति । शिल्प-कार्ये, संगीत-नृत्य-गीतादिषु, कथा-आख्यायिका-उपन्यासादि-रचनायां काव्यकृतौ च तासां पाटवम् अनुपमम् ।

महिलानां सशक्तीकरणार्थ शैक्षिकी योग्यता, आत्मनिर्भरता यथाऽभीष्टा तथैव राजनीती अपि तासां प्रवेश आवश्यकः । तदर्थम् आरक्षण-व्यवस्थाऽनिवार्या । यथा देशे अनुसूचित-जातीनाम्, अनुसूचित जनजातीनाम्, हीनावस्था-ग्रस्त जातीनां (O.B.C.) कृते आरक्षण-व्यवस्था वर्तते, तथैव विधानसभासु लोकसभायां च तासां कृते आरक्षणम् आवश्यकम् अस्ति । अधिकार प्राप्तौ एव ताः संसदादीनां कार्येषु निपुणा भविष्यन्ति

आश्चर्यविषयोऽयं वर्तते यत् संसदि 'महिला-आरक्षण-विधेयकः' १९९६ वर्षादारम्भ अद्यावधि लम्बितोऽस्ति । प्रतिवर्ष शिष्टाचारवद् एष विधेयकः प्रस्तूयते, तत्र च सर्व- संमतस्य कस्यापि निर्णयस्य अभावाद् एष विधेयको निलम्ब्यते । वस्तुतः केचन दलाः स्व- स्वार्थ-सिद्ध्यै तत्र बाधां प्रस्तुवन्ति, कार्यरोधं चाचरन्ति । परन्तु सर्वमेतद् गर्त्यमेव। तत्र सर्वेऽपि दोषिणः सन्ति- सर्वकारः इच्छाशक्तेरभावाद् दोषी, अन्ये दलाश्च सत्यामपि स्वेच्छायां प्रबल-शक्ति प्रदर्शनाभावाद् दोषिणः, केचन दलाश्च बाधाकरणेन सदोषाः । महिला अपि सदोषाः, यतो हि ताः एतस्य प्रस्तावस्य समर्थने घोरं प्रयत्नं न विदधति । यदि ताः कठोरं प्रयत्नं कुर्युस्तर्हि एष प्रस्तावोऽवश्यं पारितो भविष्यति। आशास्यते यत् शीघ्रमेव प्रस्तावोऽयं पारितो भविष्यति ।

4.3.8 स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च—

शिक्षायाःस्वरूपम्— शिक्षा नाम जीवने शुभाशुभावबोधनी पुण्यापुण्यविवेचनी हिताहितनिदर्शनी कृत्याकृत्यनिर्देशनी समुत्रतिसाधिकाऽवनतिनाशनी सद्भावाविभीवियित्री दुचाकीतरोधात्री आत्मसंस्कृतिहेतुर्मनसः प्रसादयित्री, धियः परिष्की, संयमस्य सावित्री, दमस्य दात्री, धैर्यस्य धात्री, शौलस्य शीलयित्री, सदाचारस्य संचारयित्री, पुण्यप्रवृतेः ऐरयित्री, दुष्प्रवृत्तेर्दमयित्री, समग्रसुखनिधाना, शान्तेः सरणिः, पौरुषस्य पावनी, काचिदपूर्वा शक्तिरिह निखिलेऽपि भुवने। समाश्रित्यैवैतां सुधियो विश्वहितं समाजहितं जातिहितं च चिकीर्षन्ति, लोकस्य दुःख-दावाग्नि संजिहीर्षन्ति, दीनानुपचिकीर्षनित, सद्भावनाधित्सन्ति, दुर्भावान् जिहासन्ति, सत्कर्म विधित्सन्ति, दुष्कर्म जिहीर्षन्ति, आत्मान मुमुक्षन्ते च। यथेयं नराणां

हितसाधयित्री सुखसाधनी च, तथैव स्त्रीणामपि कृतेऽनिवार्या सुखशान्तिसाधिका समुन्नतिमूला च। यथा च नान्तरेण शिक्षां पुरुषैरभ्युदयावाप्तिः सुलभा सुकरा च, तथैव स्त्रीणां कृतेऽपि समधिगन्तव्यम्। नरश्च नारी च द्वावेवैतौ सद्गृह- स्थसुरथस्य चक्रद्वयम्। यथा चक्रेणैकेन न रथस्य गतिर्भवित्री, एवं सर्वार्थसाधिनीं स्त्रियमन्तरेण न गृहस्थ-रथस्य प्रगतिः सुकरा। सति विदुषि नरे सहधर्मचारिणी चेत् सच्छिक्षापरिहीणा, न दाम्पत्यं सुखावहम्। द्वयोरेव गुणैर्धर्मेण ज्ञानेन विद्यया शीलेन सौजन्येन च गार्हस्थ्यं सुखमावहतीत्यगन्तव्यम्। यथा नरेण ज्ञानमन्तरा समुन्नतिदुर्लभा, तथैव स्त्रियाऽपि। एतर्हि पुरुषशिक्षावत् स्त्रीशिक्षाप्यनिवार्याऽऽवश्यको च।

स्त्रीशिक्षाया आवश्यकता— यदि विचारदृशा विमृश्यते परीक्ष्यते चेद् भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते स्त्रीशिक्षायाः। स्त्रिय एवैता मातृशक्तेः प्रतीकभूताः। निसर्गादेवैतासु पतत्युत्तरदायित्वं शिशोर्भरणस्य पोषणस्य च, गृहस्य संचालनस्य संस्थापनस्य च। गृहस्थजीवनस्य सुखस्य शान्तेश्च, परिवारप्रपुष्टेः कुटुम्बभरणस्य च, श्वशुरश्वश्वोः शुश्रूषायाः परिचर्यायाश्च, शिशोः शैशवे शिक्षणस्य प्रशिक्षणस्य च, शिशौ सत्संस्काराधानस्य सच्छीलनिधानस्य च, भर्तुः सहयोगस्य सद्भावोन्नयनस्य च, अभ्यागतसपर्याया लोकहितसम्पादनस्य च। अनासाद्य वैदुष्यं न सम्भाव्यते स्त्रीभिः स्वीयोत्तरदायित्वपरिपालनम्। वैदुष्यलाभाय च न केवलं विविधग्रन्थपरिशीलनमेव पर्याप्तम्, अपितु व्यावहारिकीणां विविधानां विद्यानां विज्ञानानां च परिज्ञानमपि तेषां कृतेऽनिवार्यम्। विविधकलाकलापकौशलमवाप्यैव पार्यते दाम्पत्यजीवनं मधुरं सुखावहम् आनन्दरसावसिक्तं च सम्पादयितुम्। विशदीभवत्येतस्माद् यन्मानवशिक्षणवत् नारी- शिक्षाऽपि नितरामावश्यकी। ज्ञानविज्ञानकौशलमधिगच्छति चेद् द्वय्यपि नरनार्योस्तर्हि न केवलं तेषामेव जीवनं सुखशान्तिसमन्वितं भविताऽपि तु समाजहितं राष्ट्रहितं विश्वहितं च सम्भाव्यते तैः सम्पादयितुम्।

स्त्रीशिक्षायाः स्वरूपम्— उरीक्रियते चेत् स्त्रीशिक्षाया आवश्यकता तर्हि बहवोऽनुयोगाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते। तद्यथा- किं स्यात् स्त्रीशिक्षायाः स्वरूपम् ? कीदृशी शिक्षा तासां हितकरी भवितुमर्हति ? कुमाराणां कुमारीणां च सहशिक्षा श्रेयस्करी न वेति ? विषयेष्वेषु नैकमत्यं मतिमताम्। कुमारीणां शिक्षा कुमाराणां शिक्षावदेव स्यात्। तत्र नोचितः कश्चन प्रतिबन्धः । जीवनसंग्रामे साम्यमूला स्यात् तासु व्यवहृतिरित्येके आतिष्ठन्ते। अन्ये तु नरनार्योः नैसर्गिको भेदोऽपौरुषेयः, तेषां कार्यशक्तिरसमा, तेषां व्यवहारक्षेत्रं विपरीतम्, तेषां वृत्तिभेद इत्यास्थाय शिक्षायामपि वैविध्यं हितकरमाकलयन्ति। उचितं चैतत् प्रतिभाति। नार्यो हि मातृशक्तेः प्रतीकभूता इत्युक्तपूर्वम्। तासां कृते सैव शिक्षा श्रेयो वितनितुं प्रभवति या मातृशक्तिमूलभूतान् गुणान् उन्नयेत । तासु शीलं सौकुमार्यं सद्भावं स्नेहं वात्सल्यं सच्चारित्र्यं द्वन्द्वसहिष्णुत्वं कर्तव्यनिष्ठताम् आस्तिक्यं चोत्पादयेत्। गुणानामेतेषामभावश्चेत् तासु, तर्हि सकलकलानिष्णातत्वमपि तासां निष्प्रयोजनम्। अतस्तादृशी शिक्षा हितकरी या सच्छीलादिगुणाधानपूर्वकं तासु गृहकलावैशारद्यं कर्मनिष्ठतां सदृहिणीत्वबुद्धिमुत्पादयेत्। **"स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्"** इत्यत्र न श्रद्दधति सुधियः साम्प्रतम्। लोकव्यवहारज्ञानविहीनानां केषामप्युक्तिरिति तेषां मतम्।

स्त्रीशिक्षायाः पृथग् व्यवस्था— कुमाराणां कुमारीणां च सहशिक्षाविषये वैमत्यमधुनाऽपि संलक्ष्यते विदुषाम्। शैशवे सहशिक्षा सम्भवति। न तत्र व्यावहारिकी क्लिष्टिता। यौवनेऽपि सहशिक्षा श्रेयस्करीति न वक्तुं सुकरम्। व्यवहारदृशा दृश्यते चेत् तर्हि समापतति यद् यौवने

सहशिक्षा न तथा हितसाधनी, यथाऽहितसाधनी। अतो यावच्छक्यं तावद् यौवने पृथक् शिक्षैव प्रशस्या।

स्त्रीशिक्षाया उपयोगिता— सुशिक्षितैव स्त्री सद्गृहिणी सती साध्वी सत्कर्मपरायणा वंशप्रतिष्ठास्वरूपा च भवितुमर्हति। सैव सद्वृत्तादिसद्गुणगणान्वितां सन्तति विधातुमीष्टे। स्त्रिय एव मातृभूताः सदवंशं सद्रराष्ट्रं च निर्मातुं प्रभवन्ति । आह्निकक्रियाकलापविकलो मानवो न तथाऽपत्येषु सत्संस्काराधाने प्रभवति, यथा मातरः। अतः मातृशक्तेः शास्त्रेषु महद् गौरवमनुश्रूयते। उक्तं च मनुना—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।। (मनु० ३.५६)

अन्यत्र चोच्यते-

मातृदेवो भव । (तैत्ति० उप० १.११.२)

सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते । (मनु० २.१४५)

पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते ।।

गृहाधिष्ठातृदेवतात्वात् सा गृहिणी, गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मीरित्यादिशब्दैः संस्तूयते । तत्सत्त्वादेव गृहं गृहमित्युच्यते। उच्यते च- **'न गृहं गृहमित्याहुगृहिणी गृहमुच्यते।'** ऋग्वेदेऽपि 'जायेदस्तम्' गृहिण्येव गृहमिति प्रतिपाद्यते। एवं मातरः स्त्रियश्च सर्वत्रैव समादरमर्हन्ति । देशस्य समाजस्य च समुन्नत्यै स्त्रीशिक्षा नितरामावश्यकीत्यवगन्तव्यम्।

4.3.9 अस्माकं राष्ट्रियाः समस्याः —

भारतम् अस्माकं राष्ट्रम्। अत्र हिन्दु-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई बौद्ध-जैनादि अनेके धर्मावलम्बिनः निवसन्ति। भारतराष्ट्र प्रति उत्कटभावनया अस्य सर्वविधविकासाय कार्य कुर्वन्ति। एतेषु धर्मावलम्बिषु केचन जनाः स्वार्थलिप्सया यथा तथा लाभप्राप्तये नीतिविरुद्धमपि आचरन्ति फलतः विषमतायाः स्थितिरुद्भवति। तेषामेवंविधेषु कार्येषु केचन राजनीतिज्ञकल्पाः अपि साहाय्यं कुर्वन्ति ।

साम्प्रतिके काले राष्ट्रे विविधाः विकरालाः समस्याः मुखमुन्नमय्य तिष्ठन्ति। ताः द्विविधाः बाह्यसमस्याः आन्तरिकसमस्याश्च। यदा शासका: अयोग्या अदूरदर्शिनः उचितानुचितविवेकशून्याः भवन्ति तदा बाह्यसमस्याः सम्भवन्ति । 'रञ्जयति असौ राजा' इति व्युत्पत्त्या देशनायकः प्रजारञ्जनाय लोकाराधनाय यदा रामवत् आचरति तदा प्रजा सुखी भवति- यथाहि, भवभूतिः उत्तररामचरिते—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।।

अत्र रामः प्रजायाः सुखशान्त्यै सर्वं त्यक्तुकामः दृश्यते । भारतराष्ट्रस्य सर्वासु दिक्षु चीन बङ्गलादेश, पाकिस्तान श्रीलङ्केत्यादयः देशाः सन्ति। ते सततं छद्मयुद्धं कर्तुं यतन्ते । तथा च ते यथा तथा भारतभूमौ आतङ्कमुत्पाद्य लोके अशान्तिवातावरणमुत्पादयन्ति। यावच्छासकः किंकर्तव्यविमूढः तावत् प्रजा किं कुर्यात्। अतः समये समये इदमावश्यकं यद्राष्ट्रनायकाः देशस्य सीमायाः संरक्षणाय, प्रजानां हृदये आत्मविश्वासोत्पादनाय तथा कुर्युः यथा प्रजायाः आत्मबलं वर्धेत ।

राष्ट्रस्य आन्तरिक्यः समस्याः सन्ति भ्रष्टाचारः, आरक्षणं, स्त्रीशिक्षाया अभावः, जनसंख्यावृद्धिः, पर्यावरणविनाशः, भौतिकतां प्रति सर्वथा अनुरक्तिः। सम्प्रति भ्रष्टाचार एव

शिष्टाचारः। उत्कोचं विना न भवति किमपि कार्यम्। आरक्षणं नाम आर्थिकदृशा सामाजिकदृशा च निर्बलानामसहायानां शिक्षया, तद् योग्यतया च पदेषु स्थापनम् येन तेषां समुचितरूपेण भरणं पोषणं भवेत् समाजे च उचिता प्रतिष्ठा भवेत्। किन्त्वत्रेदं दृश्यते यत् काश्चन एव जातयः दीर्घकालादेव आरक्षणलाभेन युताः, तेष्वन्ये च तद्विरहिताः तथैव जीवनं यापयन्ति यथा ते पूर्वकाले आसन्। सर्वकारः अपि 'बोट' राजनीति चिया तत्र हस्तक्षेपं न करोति, मौनमेव धारयति।

स्त्रियः शिक्षिताः सत्यः परिवारस्य समाजस्य राष्ट्रस्य च उन्नतौ सहायिकाः भवन्ति। तासां शिक्षाव्यवस्था विशेषतः ग्रामीणक्षेत्रे नगण्या एवारित। शिक्षया एवं उचितानुचिताविवेकेन जनसंख्या वृद्धौ नियन्त्रणं भवति। अतस्तासां शिक्षा व्यवस्थाऽपि तथा भवितव्या यथा ताः स्त्रियः वस्तुतः पुरुषस्य अर्थभागत्वेन स्थिताः स्युः। पर्यावरणविनाशः विकटा समस्या। भौतिकचाकचिक्यवशात् जनाः पर्यावरणं विनाश्य आत्मकोशं पूरयन्ति। तस्य परिणामः वृक्षाणां विनाशेन आवरणविहीना पृथ्वी। फलतः वर्षाया अभावः । वर्षाभावे खाद्यात्रसमस्या समुत्पन्ना। एवमेव पर्यावरणविनाशेन स्वाइन फ्ल्यू,कोविड सदृश नव नवाः रोगाः उद्भूताः दृश्यन्ते ।
अतः राष्ट्रनायकानां प्रजानां चेदं कर्तव्यं यत् अधिकां तृष्णां विहाय, यथा राष्ट्रनिर्माणं रक्षा च समुचित रूपेण भवेत्, शनैः शनैः समस्यानां निवारणं जनानां हृदि आत्मविश्वासः सुखं शान्तिश्च भवेत् तथा एकीभूय करणीयम्। एतेन एव भविष्यति।

4.3.10 भ्रष्टाचारः, समस्या समाधानं च

को भ्रष्टाचारः ? अनुचित-साधनावलम्बनेन, अनैतिकेन आचरणेन, स्वकर्तव्यस्य अपालनेन, कस्यचित् किमपि कार्य साधयितुं द्रव्यादानम् (Bribe) द्रव्योपार्जनं वा भ्रष्टाचार इत्यभिधीयते । भारतवर्षे भ्रष्टाचारः असाध्यरोगवत् प्रवर्तते प्रवर्धते च । अयं च केवलं केषुचिदेव जनेषु वर्तते, अपितु वटवृक्षवत् शतमूलः सन् सार्वत्रिको रोगः प्रतिदिनं वर्धत एव। सर्वेऽप्यस्य प्रसारेण चिन्तिताः सन्ति, परन्तु न कोऽपि सर्वकारः अस्य समूलोन्मूलनाय बद्धपरिकरः ।

भ्रष्टाचारो नैकविधः । अनेकेऽस्य प्रकाराः। यथा-उत्कोच (Bribe) प्रदानम्, खाद्य-वस्तुषु अखाद्यस्य मिश्रणम्, अनुचित-साधनेन धनोपार्जनम्, स्वकर्तव्यं प्रति विमुखता, सर्वकार-प्रदत्त-साधनानाम् अनुचितोपयोगः, स्वजातीयं स्वसंबन्धिनं वा प्रति पक्षपातपूर्णो व्यवहारः इत्यादयः । साम्प्रतं देशे तादृशी अवस्था प्रवर्तते यद् उत्कोच-प्रदानं विना स्वल्पमपि कार्य कार्यालयादिषु न सेत्स्यति । सर्वकारो निर्धनानां साहाय्यार्थम् उद्योग-कार्य- प्रवर्तनार्थं यदि किमपि ऋणं वितरति, परन्तु तद् ऋणं यस्य माध्यमेन प्राप्तुं शक्यते, सोऽधिकारी उत्कोचं विना न तद् ऋणं प्रददाति । भवनादि-निर्माणार्थं साहाय्यमपेक्षितं चेत् तदर्थ चित्रस्य स्वीकृतिरावश्यकी । चित्र-स्वीकृत्यर्थमपि उत्कोच-व्यवस्था करणीया भवति । उत्कोचेन विना न तच्चित्रं पारितं भविता । यदि कार्यालये रिक्तपदानां कृते नियुक्तिरभीष्टा, साऽपि उत्कोचाश्रयणं विना न संभवति । योग्यतानुसारं नियुक्तिः स्यादिति नियमः, परन्तु ये योग्याः दक्षाः कार्यनिपुणाः सन्तोऽपि उत्कोचं न ददति, तेषां नियुक्तिः प्रायः असंभवैव । राजकीय-सेवायामपि अद्यत्वे उत्कोच-प्रदानमन्तरेण नियुक्तिः प्रायः असंभवैव ।

उत्कोच-प्रवृत्तेः एतानि साधारणानि निदर्शनानि । ये उच्चपदस्थाः, अधिकारिणः, मन्त्रिणो वा, ते कोटा-पर्मिट-इत्यादि-प्रदाने व्यवसायिभिः सहस्त्रशो लक्षशो वा रूप्यकाणि उत्कोचरूपेण संगृह्णन्ति। पुलिस-विभागे, आयकर विभागे, रेलवे विभागे, न्यायालयेषु च तथा उत्कोच-प्रथा संप्रवर्तते, यथा तत्र उत्कोच-प्रदानम् अन्तरेण पदमेकमपि गन्तुं न शक्यते।

भ्रष्टाचारस्य अन्यद् रूपं वर्तते । राजकीय कार्यालयेषु यावद् उत्कोचो न दीयते, तावत् तस्य प्रार्थनापत्रम् अग्रसारितं न भविष्यति । यदैव उत्कोचस्य व्यवस्था क्रियते, तदैव तत् प्रार्थनापत्रम् अग्रसारितं क्रियते। एवमेव व्यापारेऽपि व्यवसायिनो महार्घ वस्तूनां मध्येऽशुद्ध-वस्तूनां मिश्रणं कुर्वन्ति । तद् यथा-तैले, घृते, खाद्यवस्तुषु, पेट्रोलअदिषु मिश्रणं प्रायः सर्वत्र संलक्ष्यते ।

सत्यमेतद् यद् भ्रष्टाचारोऽसाध्यो रोगः । परन्तु निपुणाः भिषजोऽसाध्यमपि रोगं साध्यं कुर्वन्ति । यत्ने कृते नहि किंचिदपि असाध्यं भवति । सर्वकारस्य दृढ निश्चय एवास्य प्रधानं कारणम् । यदि सर्वकारो दृढनिश्चयेन प्रयतेत तर्हि न किंचिद् असाध्यम् ।

4.3.11 आतंकवादः, समस्या, तत्समाधानं च—

साम्प्रतम् आतंकवादो न केवलं भारतवर्षस्य, अपितु विश्वस्य भीषण-समस्या-रूपेण उपतिष्ठति । अयम् अकाल-मेघवद् न जाने कुत्र विनाश-लीलां प्रसारयेद् इति न कस्यापि विदितम्। आतंकवादेन मानवजीवनं प्रतिपलं विनाशाभिमुखं वर्तते ।

आतंकवादस्य कारणानि

आतंकवादस्य कारणानां बाहुल्यं वर्तते । न किंचिदेकं कारणं निर्धारयितुं शक्यते । स्वार्थपरता स्वार्थ-निबद्धा संकुचिता दृष्टिः वा आतंकवादस्य मूलं कारणं वर्तते । स्वार्थपरताया अभिव्यक्तिः अनेकरूपेषु प्रकटीभवति । एषैव साधनरूपेण आतंकवादं पोषयति प्रसारयति च । यथा- क्षेत्रवादः, भाषावादः, धर्मान्धता, आर्थिकी विषमता, समन्वयस्य अभावः, न्यायपालिकाया दुर्बलत्वम्, नैतिकमूल्यानां ह्रासः, प्रशासनस्य निष्क्रियत्वम्, राजनीतिकं वा कारणम् ।

अद्यत्वे विश्वस्य राजनीतौ पारस्परिक व्यवहारे च क्षेत्रवादो विशेषरूपेण विभेदक- तत्त्व-रूपेण प्रवर्तते । देशस्य प्रत्येकं क्षेत्रं सामाजिकम् आर्थिकं भौगोलिकं राजनीतिकं वा कारणम् आश्रित्य स्वीयां स्वतन्त्रतां पृथग् आस्तित्वं च वाञ्छति । तदर्थ ते आतंकवादस्य सहयोगम् आश्रयन्ते । भारते कश्मीर-समस्या, मिजोरम-समस्या, नागालैण्ड-समस्या च क्षेत्रवादाश्रयणेन आतंकवादम् आश्रयन्ते ।

केचन देशाः स्वस्वार्थसिद्ध्यै शक्ति-प्रदर्शनार्थं च स्व-समीपस्थ-देशं स्वायत्तं कर्तुम् आतंकवादम् आश्रयन्ते । एतत्तु सर्वेषां विदितमेव यत् कश्मीरदेशे विद्यमानस्य आतंकवादस्य मूलकारणं पाकिस्तानदेशो वर्तते । अमेरिका-देशोऽपि अस्मिन् कार्ये पाकिस्तानस्य सहायभूतः।

भारते वर्ग-विशेषः स्वीयां संस्कृतिकी श्रेष्ठतां साधयितुं सांप्रदायिकं संघर्ष प्रेरयति। चौर्यादि-कार्येषु आतंकवादस्य मूलकारणम् आर्थिकं वर्तते । अद्यत्वे भौतिकवादी दृष्टिकोण: प्रायशः सर्वत्र संलक्ष्यते । सर्वोऽपि जनः स्वीयाम् आर्थिकी विपन्नतां द्योतयति । तदर्थ केचन साहसपरा युवकाः अपहरण-क्रियां, केचन सार्वजनिक-संस्थानादिकम्, केचन बैंक-आदीनां सर्वस्वादानम् आश्रित्य स्वीयाम् आर्थिकी स्थितिम् उद्धर्तुं कामयन्ते। शिक्षिता अवृत्ति-समस्याग्रस्ताः केचन युवानोऽपि एतादृशीं विध्वंसकरी वृत्तिम् आश्रयन्ते । तेषु कार्याकार्य-विचारणैक-प्रवणा विवेकबुद्धिर्नैव जागर्ति, अतस्ते स्वार्थान्धा अपराधात्मिकी वृत्तिम् आश्रयन्ते ।

आतंकवादस्य दुष्प्रभावः

आतंकवादस्य दुष्प्रभावः समाजस्य प्रत्येकं वर्ग, सामाजिकम् आर्थिकं राजनीतिकं सांस्कृतिकं धार्मिकं च पक्षं प्रभावयति । आतंकवादस्य कारणेन समाजे हिंसा, अनैतिकता,

अराजकता च वर्धते । जनताया मनोबलं क्षीयते, अपराधि-तत्त्वस्य समुत्साहो वर्धते च । आतंकवाद-प्रवृत्तयः समाजस्य आर्थिकं पक्षं भयावहरूपेण प्रभावयन्ति । आतंकवाद-प्रभावेण चौर्यादिकं वर्धते । अतो व्यापार-वाणिज्य-संलग्ना जना अधिकधननिवेशे भयम् आवहन्ति। आतंकवादस्य प्रभावेण राजनीतिकं जीवनं विषाक्तं वर्तते । राजनेतारः स्वस्वार्थसिद्ध्यै विपक्षस्य विनाशाय असामाजिक तत्त्वस्य साहाय्यं गृह्णन्ति । तेन प्रतिपक्ष-नेतृणां वधादिकम् उत्पातादिकं प्रत्यहं दृश्यते । आतंकवादो जीवनस्य नैतिकं पक्षं सर्वथा भ्रंशयति । नैतिक- मूल्यानां प्रति अनास्थावर्धते, फलस्वरूपम् असामाजिक तत्त्वेषु प्रवृत्तिर्भवति, सत्यभाषणे भयम् अनुभूयते । एवम् आतंकवादप्रभावेण जीवनस्य नैतिकपक्षस्य भ्रंशो राष्ट्र-समुत्रतौ बाधां जनयति । बालादीनाम् अपहरण-समस्या आतंकवादस्यैव प्रभावः । एवम् आतंकवादो राष्ट्रस्य समृद्ध्यै उन्नत्यै च सर्वथा शत्रुवद् व्यवहरति।

आतंकवाद-निरोधोपायाः

आतंकवादस्य निरोधाय समग्रे राष्ट्र नैतिक शिक्षा अनिवार्या स्यात् । नैतिक-शिक्षैव कर्तव्याकर्तव्य-भावनां जागरयति । नैतिकशिक्षैव मानवे सत्यभाषणस्य, सद्व्यवहारस्य, कर्तव्याकर्तव्यस्य च भावनां जागरयति । नैतिकशिक्षयैव नरः सत्यभाषणस्य, सद्व्यवहारस्य, कर्तव्याकर्तव्यस्य च विवेकं लभते। कुप्रवृत्ति-निराकरणं च नैतिकशिक्षयैव संभवति।

राष्ट्रीय-प्रशासनस्यापि एतद्विषये महती भूमिका वर्तते । प्रशासनम् असामाजिक-तत्त्वस्य समूलोन्मूलनाय बद्ध-परिकरः स्यात् । स्वीयां दण्डनीतिं कठोरां कुर्यात् । 'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः, दण्ड एवाभिरक्षति' इति महाभारत वचनम् । यदि दण्डव्यवस्था कठोरा स्यात् तर्हि अपराधि-तत्त्वस्य तथा दुष्प्रवृत्तिर्न भविष्यति। सर्वः कठोर दण्डाद् बिभेति।

शिक्षणालयेषु आतंकवादस्य विरुद्धं प्रशिक्षणं स्यात् । अत्र जनताया अपि सहयोगोऽपि अपेक्ष्यते । समाचार-पत्रादिकम् अपि आतंकवाद-विरुद्धं वातावरणं जनयेत् । आतंकवाद-निरोधाय आतंकवाद-कारणानाम् अपि सावधानतयाऽध्ययनं कार्यम् । तत्कारणानां समाधानेन एतस्याः समस्याया निराकरणं कर्तुं शक्यते।

4.3.12 भ्रष्टाचारस्य कारणानि निरोधोपायाश्च

अत्र समासतो भ्रष्टाचारस्य कारणानि निरोधोपायाश्च विविच्यन्ते।

१. कठोर दण्डव्यवस्था- भ्रष्टाचारस्य निरोधार्थं कठोरा दंड-व्यवस्था स्यात्। राजपुरुषाः तत्पालने सर्वात्मना प्रयत्नशीला भवेयुः। महाभारते उच्यते-

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः, दण्ड एवाभिरक्षति । महा० कठोरायां दण्डव्यवस्थायाम् अपराधिनां मनोबलं क्षीयते, ते दण्डाद् बिभ्यति।

२. धनलोलुपता- धनलोलुपता भ्रष्टाचारस्य मूलम्। अद्यत्वे सर्वोऽपि जनो धन- लोलुपो दृश्यते। उचितेन अनुचितेन वा साधनेन अधिकाधिकं धनं प्राप्येत, एषा प्रवृत्तिस्तिरस्करणीया । अन्यायोपार्जितं द्रव्यं न शान्तिं सुखं वा प्रापयति।

३. विलासि-जीवनम् साम्प्रतं मानवानां जीवनं तथा विलास-प्रियं लक्ष्यते, यथा ते सर्वामपि सुख-सामग्रीम् एकत्रीकर्तुं प्रयतन्ते । विलासिता दुःखाय न सुखाय। विलासि- जीवनं मानवं निष्क्रियं कलुषं पुरुषार्थहीनं च विधत्ते। विलासार्थं ते आयतोऽधिकं द्रव्यम् अर्जयितुं प्रयतन्ते, भ्रष्टाचारे च निमज्जन्ति।

४. श्रमविमुखता- मानवः स्वभावेन अल्पश्रमेण अधिकं लाभं प्राप्तुम् अभिलषति, एषा श्रमविमुखता तं भ्रष्टाचारार्थं प्रेरयति । यदि उत्कोचेन कार्यं सिध्येत् तर्हि का आवश्यकता कठोरश्रमस्य । परन्तु नहि कठोरं श्रमं विना कोऽपि उद्योगः सफलो भवति । उत्कोचो दुःखावहः, अनैतिकः, चरित्रनाशकः, अपमानकारकं चेति विज्ञेयम् ।

५. राजपुरुषाणां चल-अचल संपत्ति-घोषणा- राजकीय सेवायां नियुक्ता जनाः स्वीयां चलाम् अचलां च संपत्तिं प्रतिवर्ष घोषयेयुः । यदि राजपुरुषा भ्रष्टाचारविमुखा भवेयुस्तर्हि समस्याया निराकरणं सरलं भविष्यति। 'यथा राजा तथा प्रजा' राजा भ्रष्टश्चेत् तदा प्रजाऽपि भ्रष्टाचार-निमग्ना भविष्यति । राजपुरुषाणां चरित्रशुद्धौ प्रजाजनस्य चरित्रशुद्धिः सर्वथा सुकरा। न तदा भ्रष्टाचार-वर्धकः कोऽपि ।

६. मनोः शिक्षा, भ्रष्टाचारो विनाशाय- महाराजेन मनुना निर्दिश्यते यद् भ्रष्टाचारेण क्षणिकं सुखं लभ्यते, वृद्धिर्भवति, भद्रं पश्यति, शत्रुनाशं करोति, परन्तु अन्ते स मानवः समूलं विनश्यति ।

अधर्मेणैधते तावत्, ततो भद्राणि पश्यति ।

ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तु विनश्यति ।। मनु० ४.१७४

तेनान्यत्रोच्यते यद् भ्रष्टाचारो न सद्य एवं दुष्परिणामं जनयति, अपितु समये प्राप्ते परिणामाभिमुखः सन् मानवस्य सर्वं कुलं विनाशयति ।

नाधर्मश्चरितो लोके, सद्यः फलति गौरिव ।

शनैरावर्तमानस्तु, कर्तुर्मूलानि कृन्तति ।। मनु० ४.१७२

यदि भ्रष्टाचार निरोधाय सर्वात्मना प्रयत्यते तर्हि साफल्यं लब्धुं शक्यते ।

4.3.13 आधुनिकयुगे संस्कृतशिक्षायाः स्थितिः—

संस्कृतं यथा सर्वप्राचीना भाषा अस्ति तथा न अन्या काचित् भाषा। किन्तु साम्प्रतिके वैज्ञानिके युगे तत्रापि भौतिकतायाः चाकचिक्यप्रभावेण लोकः प्राचीनत्वं परिहाय आधुनिकविषयेषु आकृष्टः दृश्यते । तस्यैतत् कारणमस्ति यत् यत्र संस्कृतभाषा अध्ययनाध्यापनधिया एव महत्त्वपूर्ण वर्तते तत्र अन्या आङ्गलभाषा सर्वविधक्षेत्रेष्वात्मानं आधिपत्यं स्थापयित्वा मूर्धन्यात्त्वेन विराजते।

लोकः तस्यैव महत्त्वं स्वीकरोति यः तस्य वर्तमानजीवने उपयोगी भवेत्। भवतु नाम संस्कृतम् आचार व्यवहार शिक्षयन् जीवने एवं विधं वैशिष्ट्रयं आनयति येन जना सर्वथा सर्वक्षेत्रेषु समर्थाः भवन्ति । किन्तु जनाः अत्र विचारयन्ति यत् येन जीवनं चाकचिक्यपूर्णम् अन्यापेक्षगा वैभवयुतं सर्वविधौविध्यभरितं भवेत् तदेवास्माभिरङ्गीकरणीयम् भवेन्नाम तत् परिणामे विषोपमम् किन्तु ते भविष्यत्कालं पराकृत्य वर्तमाने एव जीवन्ति ।

संस्कृतं वस्तुतः तादृशी अर्थकरी भाषा नास्ति यथा अन्याः आङ्गल इत्यादयः भाषाः। एताः आङ्गल आदिभाषा अधीत्य जनाः सर्वेष्वपि क्षेत्रेन्येषु उच्चपदासीनाः भवन्ति समधिकं धनार्जनमपि कुर्वन्ति। संस्कृतं प्रति सर्वेषां भावन उत्कृष्टा भवति, तां प्रति समादरं प्रकटयन्ति ते, किन्तु अध्ययन- दृशा ते एनां उत्कृष्टां न स्वीकुर्वन्ति। लोकस्य एते व्यवहारेण इयं भाषा सम्प्रति जनैः मृताभाषा कथ्यते। फलतः स्वपुत्रपौत्रानपि ते जनाः संस्कृतभाषामध्यापयितुं नोत्साहं प्रकटयन्ति।

पूर्वकाले तु इयं राजाश्रिता आसीत् फलतः सर्वदिक्षु प्रतिष्ठिता आसीत्। अतः सम्प्रत्यपि यावत् इयं सर्वकारेण पोषिता न भविष्यति तावदस्याः स्थितिः सन्तोषावहा न भविष्यति।

सर्वकारस्य इदं कर्तव्यं यत आङ्ग्ल भाषावत् अस्ये भाषायै अपि सर्वविधक्षेत्रेषु महत्त्वं प्रदाय भारतदेशस्य गौरवभूतामेनां भाषां संवर्धयन्तु येन पूर्वादियं प्रतिष्ठिता भवेत्।

4.3.14 उत्तराखण्डे द्वितीय राजभाषा संस्कृतम्

अस्माकं देशे प्रदेशे च यद्यपि संस्कृतस्य गौरवपूर्ण स्थानमस्ति तथापि उत्तराखण्ड प्रान्ते अस्य महत्व अंगीकृत्य संस्कृत भाषा द्वितीय राजभाषा रूपेणांगीकृता। भाषेयं यद्यपि सुरभारती देवगिरा देववाणी रुपेण प्रसिद्धा अस्ति अतो स्वाभाविकमिदं देवभूमौ देवगिरा कथं महत्वपूर्ण स्थानं न प्राप्नुयात्।। इतिहासस्य अध्ययनेनज्ञायते अत्रत्या सर्वे व्यवहाराः संस्कृत निष्ठा आसन्। भाषेयं हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती, उडिया, तमिल, कन्नडादि भाषाणां जननी वर्तते अत्रत्या कुमाऊंनी गढ़वाली प्रकृति भाषाभिः सह अभेद सम्बन्धोऽस्ति। अस्मात् कारणात् संस्कृतानुरागी उत्तराखण्ड सर्वकारेण संस्कृत भाषायाः कृते "द्वितीय राजभाषा" इति महत्त्वपूर्ण स्थानं प्रदत्तम्। अस्माकं धर्मः साहित्यम् संस्कृति: सभ्यता इतिहास: संस्कृत ज्ञानं बिना ज्ञातुं न शक्यते। अत्रत्या: जनताया: कृते यादृशी शिक्षायाः आवश्यकता दृश्यते तादृशी शिक्षा संस्कृत ज्ञानं विना असम्भवा।

अस्माकं प्रदेशे चेत् द्वितीय राजभाषा संस्कृतं अस्ति। अस्माकं प्रदेशे सर्वेषु प्राथमिक, माध्यमिक, महाविद्यालयेषु, क्रन्द्रीय विद्यालयेषु, कार्यालयेषु, कोशागार, बैंकादिषु अस्य प्रयोगे अनिवार्य रूपेण भवेत् तदेव संस्कृत भाषा द्वितीय राजभाषा रुपेण प्रतिष्ठिता भविष्यति ।

ग्रामे ग्रामे संस्कृत भाषा
देहे गेहे संस्कृत भाषा।।
विद्यालये विद्यालये संस्कृत भाषा ॥
कार्ये सर्वे संस्कृत भाषा

4.3.15 संस्कृत सम्भाषणम्—

संस्कृत भाषा सर्वासा भाषाषां जननी अस्ति। अतो सर्वभाषा विद्भि: संस्कृतं अपि नूनं ज्ञेयं, पठनीयम,वक्तव्यम् संस्कृत भाषा सरसा- सरला अधुराचास्ति संस्कृत भाषिणन असाकं भाषण शक्तिं वर्द्धयति। छात्राणां परस्पर वार्तालापेन विषय निष्ठज्ञानं व्यावहारिकं ज्ञानमपि वर्धते। ते स्व व्यवहारे साहित्यिक शब्दानां प्रयोग: वैयाकरण शब्दानां प्रयोगं विधाय विषय ज्ञानं वृद्धिं कुर्तुं शक्नुवन्ति। प्राचीन ग्रन्थेषु उपलभ्यते हि संस्कृतं पूर्व लोक भाषा आसीत्, अस्थ अधिकाधिक ज्ञानाय आकाशवाण्यां समाचार:, दूरदर्शन समाचार:, समाचार पत्राणां मपि अवलोकनं स्यात् तदा नूनं संस्कृतसंभाषणं सुकरं भवेत्।

4.3.16 संस्कृत भाषायाः प्राचारोपायाः—

संस्कृत भाषा देव भाषा अस्ति । सर्वासां भाषाणां जननी चाप्यस्ति। सर्वे जानन्ति पूर्वं संस्कृत भाषा जनभाषा आसीत् । परं विदेशी जनानां आक्रमणात् शासनात् सा विलुप्ता। परं स्वतन्त्र भारते: सर्वे वांछन्ति संस्कृत भाषा जन भाषा स्यात् एतदर्थ महान् प्रचारस्य आवश्यकता अस्ति। केचन जनाः यत् प्रयासं कुर्वन्ति तत् न्यूनं अस्ति। अस्य प्रचार प्रसारार्थ पृथक रूपेण संस्कृत शिक्षणं स्यात् दसदिवसीय, मासिक, त्रैमासिक शिबिराणां आयोजनं स्यात् । तत्र व्यवहारोपयोगी वाक्यानां, लघु वाक्यानां सूक्तीनां माध्यमेन भाषणं - सम्भाषणं स्यात् जना: आधिकाधिक मात्राया संस्कृतं जानीयु।

सर्वेषु विद्यालयेषु संस्कृत विषयं अनिवार्यं स्यात् । भाषायां सरलता व्यावहारे उच्चारणे लेखने किंचित् सरलता भवेत्।

सर्वत्र चतुष्पथेषु पीथिषु क्रीडने, भोजने, आपणेषु संस्कृत शब्दानां मुद्रणं कृत्वा संस्कृत शब्दा: स्थापनीया: व्यवहारार्थं लघुवाक्यानि लेखनीयानि तण्डुलं, दालं, लवणं ददातु, शाकं ददातु, फल-सेब, कदली ददातु अधिकाधिक जनाः चेत् संस्कृतं जानीयुः अस्य सरलतां, माधुर्यं विषये जानीयुः नूनं संस्कृतस्य अधिकाधिक प्रचारः प्रचारश्च स्यात् ॥

4.3.17 उत्तराखण्डे संस्कृत वैभवम्—

पूर्वं यद्यपि उत्तराखण्डे शिक्षायाः व्यापकं प्रचार प्रसारं नासीत् परं तदपि अत्रत्या जनाः संस्कृतानुरागिणः आसन्। पूर्वं अल्मोड़ा जनपदे राजधानी आसीत्। तदा तत्रत्या जनाः अत्र स्वल्प संस्कृताध्ययनार्थं अयोध्या, वाराणसी, हरिद्वार प्रभृति क्षेत्रेषु संस्कृतं अधीत्य, स्व मातृभूमेः सेवां अकुर्वन्। अत्र कुमाऊं क्षेत्रे, गढ़वाल क्षेत्रयो वहवः विद्वत् मूर्धन्याः अभवन्। ये संस्कृत सेवया स्व ग्रामस्य, नगरस्य, जनपदस्य एव न सम्पूर्ण भारत देशस्य गौरवं वर्धयन् वहव: मूर्धन्य: अन्तर्राष्ट्रीय स्तरेऽपि ख्याति लब्धवन्त: पं. नित्यानन्द पन्त महोदया: "महामहोपाध्याय'' इत्युपाधि विभूषिता: काशिस्थ पंडितेषु मूर्धन्या: आसन् आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय:, गोपाल दत्त पाण्डेय:, प्रेम बल्लभ त्रिपाठी, डॉ. हरि नारायण दीक्षितः, डॉ. डी० डी० शर्मा प्रभृतयः विद्वांसः स्व प्रतिभया उत्तराखण्डस्य गौरवं सर्वोच्च शिखरे प्रापयन्। अन्येऽपि बहवः विद्वांस, विदुष्यश्च देवभूमौ सुरभारत्याः सेवायां वर्तमाने तत्पराः सन्ति अतो उत्तराखण्डे संस्कृत वैभवं सुदृडं परिष्कृतं चास्ति।

4.3.18 शारिरिक शिक्षायाः महत्त्वम्—

शिक्षायाः बहव: विधाः प्रचलिताः यथा पाठ्योपयोगी, चिकित्सा शिक्षा, वाणिज्य शिक्षा, तकनीकि शिक्षा, कम्प्यूटर शिक्षा, शारिरिक शिक्षा च । तत्र शारिरिक शिक्षा अन्येषु विशिष्टा, तस्य बहवःलाभा: सन्ति। शारिरिक शिक्षा सर्वेषां कृते अनिवार्या अपि। अस्य अपर नाम व्यायामः। व्यामेन वयं सुदृड़ा, समुन्नता, उद्यमशीलाः नीरोगाः भवितुं शक्नुमः । कस्या अपि विषम परिस्थितौ व्यायामशीलः जन:स्व काठिन्यं तु दूरी करोति। अन्येषां कष्टादि काठिन्यं विषमता वा निवारयितुं शक्नोति। व्यायामशील जनस्य शरीरेण सह कर्मेन्द्रियाणिज्ञानेन्द्रियाणि अपि बलिष्ठानि भवन्ति । येन सुदीर्घ कालं यावत् आयाति । शरीरे विकृतं न आयाति। शारिरिक शिक्षाया: सह प्रणायाम: विभिन्न आसनानि सूर्य नमस्कारादयः क्रियाः शरीरे रोग प्रतिरोधक शक्ति वद्धयन्ति शसीर: स्वस्थो भवति वुद्धिनिर्मला भवति जन: मानसिक रूपेणापि स्वस्थो भवति शोभनाः कार्यसाधकादि विचाराः आयान्ति। अतो अस्माकं जीवने "शारिरिक शिक्षाया: " महत्वपूर्ण स्थानं अस्ति।

4.3.19 आपदा—

अस्माकं पुराणेषु बहुत्र प्राकृतिकापादानां वर्णनं प्राप्यते। वृहत्स्तरे बहूनां जनानां संसाधनानां च हानिरेव 'आपदा' शब्देन व्यवह्रीयते। यहीलाहभी घटना प्राकृतिक भक्त्या कंपे। जायेत, यथा. प्रकम्पनम्, नदीषु, जलाधिग्येन, जलाप्नावनम्, अतिवृष्टि, अनावृष्टिः, चक्रवात, महामारी सुनामी, प्रचण्डवातप्रवाहाद: । एताभिः प्राकृतिका पादाभि: प्रकृति: स्वकीय परिस्थितिक तन्त्रस्य सामञ्जस्यं निर्माति । भारतीय दर्शनानुसोरण त्रिविध दुःखषु आधिभौतिक, आधिदैविदुख: रूपेण प्राकृतिका पदानां गणना भवति।

शास्त्रेषु वेदविहित कर्मविरूद्ध यो स: पापाचारी भवति । यथा वृक्षा जन्तवश्च पूज्या भवन्ति, तेषां स्वकीय स्वार्थ पूर्त्तयथं दुरूपयोग एव पापाचार: । यदा मानवो वनानाम् अत्यधिकं दोहनं करोति तेन प्राकृतिकम् असन्तुलनमुत्पन्नं भवति। वाहनेभ्यो यन्त्र निर्माण आलयेभ्यश्च निसृत धूम्रेण वायुमण्डलं प्रदूषितं भवति। अनेनैव ओजोन इत्यावरणस्य क्षतिर्भवाती। तेन सूर्यस्यशुभ रश्मीनां प्रभाव: प्रथिव्याम् अधिकताङ्गच्छति, येन प्रथिव्या वातावरणेन ग्रीष्मवृद्धिर्भवति। तदैव (Global warming) इत्यभिधान रूप प्राकृतिक समस्या सम्पूर्ण विश्वे प्रमुखरूपेण वर्तते।

मानवै: प्रतिदिनं नदीनां माध्यमेन समुद्रे दीर्घमात्राया बहवोऽवशिष्ट पदार्थ निक्षिप्यन्ते तथैव वनानां कर्तनं, जन्तूनां हनन मित्यनया क्रियया मानवः पर्यावरणास्य नाशं करोति। तैनेव कर्मणा आपदानाम् उत्पत्ति भर्वन्ति।

मुख्य रूपेण आपदानां त्रयोविभाग: प्राप्यते, दिव्यान्तरिक्ष भौमरूपा: तत्र सूर्यादि ग्रहाणां नक्षत्राञ्च विकारादुत्पन्न दिव्यापदा भवति । उत्कापात:, दिग्दाह:, परिवेषः गन्धर्वनगर:, वृष्टि विकारादिभिरुत्पन्ना अन्तरिक्षापदा भवति,

स्थिरस्य वस्तुनश्चालनत्वात्, चलायमानस्य वस्तुन: स्थिरत्वात भूकम्पादि रूपेणोत्पन्ना भौमापदा भवति।

यदि सर्वे पूर्वोक्त कारणेषु चिन्तनं विधाय तदनुकूलं व्यवहारं आचरिष्यन्ति, पर्यावरणस्य संरक्षणं प्रकृत्या सन्तुलनं समीचीनं भविष्यति तदा नूनमेव सम्पूर्ण विश्वे आपदाया: समूलोन्मूलनं भविष्यति । वयं सुरक्षिताश्चभवेम्।

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने अस्माकं प्रदेश:, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय:, शिक्षण संस्थासु अनुशासनम्, भारतीय-शिक्षापद्धतौ अपेक्षिताः परिष्काराः, आधुनिकी शिक्षा-पद्धतिः,वर्तमान-शिक्षा-पद्धतौ अपेक्षिताः परिष्काराः, महिलानां सशक्तीकरणम् आरक्षणं च, स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च, अस्माकं राष्ट्रियाः समस्याः, भ्रष्टाचारः, समस्या समाधानं च, आतंकवादः, समस्या, तत्समाधानं च, भ्रष्टाचारस्य कारणानि निरोधोपायाश्च, आधुनिकयुगे संस्कृतशिक्षायाः स्थितिः, उत्तराखण्डे द्वितीय राजभाषा संस्कृतम् , संस्कृत सम्भाषणम्, संस्कृत भाषायाः प्राचारोपायाः, उत्तराखण्डे संस्कृत वैभवम्, शारिरिक शिक्षायाः महत्त्वम्, आपदा जैसे आधुनिक विषयों पर आधारित निबन्ध के विषय में सम्यक रूप से अध्ययन किया।

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत व्याकरण : डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ
2. संस्कृतव्याकरण-प्रवेशिका डॉ. बाबूराम सक्सेना, रामनारायणलाल, इलाहाबाद
3. Higher Sanskrit Grammar (हिन्दी संस्करण): M.R. Kale
4. प्रौढरचनानुवाद कौमुदी : कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
5. संस्कृतनिबन्धशतकम् : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
6. आन्वीक्षिकी, उ0सं0अ0 हरिद्वारम्।

4.6 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. संस्कृतनिबन्धशतकम् : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिकी शिक्षा-पद्धतिः,वर्तमान-शिक्षा-पद्धतौ अपेक्षिताः परिष्काराः विषय पर निबन्ध लिखे।

2. 'भ्रष्टाचारस्य कारणानि निरोधोपायाश्च' उक्त समस्याओं का समाधान किस प्रकार सम्भव है ? स्पष्ट रूप से चिन्तन प्रस्तुत कीजिये।

3. 'महिलानां सशक्तीकरणम् आरक्षणं च ' विषयक पर सप्रमाण विस्तृत विवेचन कीजिये।

इकाई.5 अन्य आधुनिक विषयक निबन्ध

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 अन्य आधुनिक विषयक निबन्ध

5.3.1 संस्कृते उद्योगावसरा:

5.3.2 उत्तराखण्डे संस्कृतस्य स्थिति

5.3.3 संस्कृतस्य रक्षार्थ के उपायाः कर्त्तव्याः

5.3.4 संस्कृत सप्ताह:

5.3.5 संस्कृत दिवस

5.3.6 वर्तमान-युगे संगणकस्य (कम्प्यूटरस्य) उपयोगित्वम्

5.3.7 विज्ञानं वैज्ञानिका आविष्काराश्च

5.3.8 उत्तराखण्डे वनोषधि:

5.3.9 भारतस्य चत्वारि धामानि

5.3.10 उत्तराखण्डस्य चत्वारि धामानि

5.3.11 पंच प्रयागा:

5.3.12 कुटीरोद्योगः

5.3.13 उत्तराखण्डे औषधोद्योगः

5.3.14 आपदा निवारणोपायाः

5.3.15 विश्वशान्तिः

5.3.16 विश्वशान्तेरुपायाः

5.4 सारांश

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.6 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

5.7 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

संस्कृत व्याकरण-पत्रलेखन एवं निबन्ध नामक पाठ्यक्रम के तृतीय खण्ड से सम्बन्धित यह पंचम इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों में हमने आधुनिक विषयक निबन्ध के विषय में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में हम अन्य आधुनिक विषयक निबन्धों के विषय में चर्चा करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- आधुनिक विषयक निबन्धों के विषय में जान सकेंगे।
- निबन्ध लेखन में सामर्थता प्राप्त कर सकेंगे।
- निबन्ध लेखन में स्वयं के चिन्तन को सकारात्मक दिशा दे सकेंगे।
- आधुनिक समस्या समाधान विषयक निबन्धों से अवगत हो सकेंगे।

5.3 अन्य आधुनिक विषयक निबन्ध

5.3.1 संस्कृते उद्योगावसरा: —

लोके जनश्रुतिः अस्ति, संस्कृत क्लिष्टं दुरूहं दुर्बोधं तस्य संवनेन न कुत्राऽपि सेवावसरः (राजकीयनौकरी) नाऽपि कुत्रापि उद्योगस्य नाच व्यापारावसर: तत् तु नोचितम्। अत्र सावधानतया श्रूयताम् यदा संस्कृत भाषा लोकव्यवहारोपयोगी आसीत् तदा काऽपि जनः निरुद्योग ना सन्ति।

संस्कृत भाषा आर्यभाषायाः प्राणभूता, सर्वेषां उन्नतिकारिका: आचारस्य शिक्षिका पुरुषार्थस्थ प्रयोजिका विकृतीनां शमनकत्री, देश प्रेमस्य उद्बोधिका:, आध्यात्मिक उन्नत्या सह भौतिक क्षेत्रे सामाधानस्य साधनम्।

प्राचीनभारतीयसमाजे आजीविकायाः यानि साधनान्युपलभ्यन्ते तानि सर्वाणि वार्णाश्रमव्यवस्थाश्रितानि आसन्। श्रीमद्भगवद्गीतायां भगवता श्रीकृष्णोन चातुर्वण्यमुच्यते—

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमति मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।

अध्ययनम्, अध्यापनम्, यजनम्, याजनम्, दानम्, प्रतिग्रहः, शम-दम-शौच-क्षान्ति-क्षमा-आर्जवादिगुणसम्पादनम्, ज्ञान-विज्ञानयोः समुत्कृष्टत्वं च ब्राह्मणस्य कर्तव्यम्। यथा मनुस्मृतेरुक्तम्-

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।

प्रजानां संरक्षणम्, दानम्, यजनम्, अध्ययनम् विषयेष्वनासक्तिः शौर्यम्, धैर्यम्, दाक्ष्यम्, युद्धेऽपलायनम्, प्रभुत्वं च क्षत्रियाणां कर्तव्यम्। यथोक्तं मनुना-

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽऽध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समादिशत्।।

पशूनां रक्षणम्, दानम्, यजनम्, अध्ययनम्, व्यापारः, वाणिज्यम्, कुसीदवृत्तिः, कृषिश्चेति वैश्यानां कर्तव्यम्। यथोक्तं मनुना मनुस्मृतौ-

पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।

तथैव शिल्पकार्यम्, सर्वेषां वर्णानां च शुश्रूषणं शूद्रस्य कर्तव्यम्। यथा मनुस्मृतौ उक्तम्-

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। सर्वेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।।

गुरुकुले संस्कृतमाध्यमेन संस्कृतशास्वाध्ययनानन्तरं ब्राह्मणाः शिक्षाक्षेत्रे संबद्धाः. क्षत्रियाः संबद्धाः, वैश्याः कृषिव्यापारादिकार्येषु सम्बद्धाः, शुद्राश्च शुश्रूषादिकार्येषु सम्यदाः सन्तः स्वजीवनं निर्वहन्ति स्म। प्राचीनकाले संस्कृतभाषैव राजभाषा जनभाषा व आसीत । सर्वाणि कार्याणि संस्कृतभाषायामेव जनाः व्यवहरन्ति स्म। तस्मात संस्कृतज्ञानां कृते आजीविकायाः साधनानि सर्वेषु क्षेत्रेषु आसीत्। यद्यप्याधुनिकै काले संस्कृतस्य तथा स्थितिः नास्ति। संस्कृतराष्ट्रभाषा जनभाषा च नास्ति। संस्कृताध्ययनार्थिनां कृते सौमितजीविकायाः साधनान्युपलभ्यन्ते, तथापि केषाञ्चन संस्कृतसमुपासकानां सत्प्रयासेन संस्कृतस्य प्रचुरः प्रसारः भवति। आधुनिकपरिस्थिती संस्कृतस्यौचित्यमभिनवविज्ञानेन सह सामञ्जस्यं च स्थापयितुमहर्निशमनुसन्धानकार्य कुर्वन्ति ते, तेन शनैः शनैः उत्तरोत्तरं संस्कृतज्ञानां कृते आजीविकायाः साधनानि वर्धयन्ति। यान्याजीविकासाधनानि विश्वस्मिन् दृश्यन्ते तान्यिहोच्यन्ते—

शिक्षाक्षेत्रे उद्योगावसराः —

आधुनिक काले संस्कृतशिक्षाक्षेत्रे व्यापक परिवर्तनं परिलक्ष्यते। माध्यमिकशिक्षायां विद्यालयेषु संस्कृतविषयोऽनिवार्यः वर्तते। अतः तत्र संस्कृताध्यापकरूपेण आजीवकायाः साधनानि सन्ति। विभिन्नेषु प्रदेशेषु संस्कृतमाध्यमिकशिक्षापरिषदस्ति। तया संस्कृतविद्यालयानां सञ्चालनं भवति। तत्र संस्कृतविद्यालयेषु अध्यापकरूपेण कर्मचारिरूपेण च आजीविकायाः साधनानि सन्ति। विगतवर्षे केन्द्रसर्वकारेण केन्द्रियमाध्यमिकसंस्कृतशिक्षापरिषदः स्थापनाय उद्घोषितम्। केन्द्रियमाध्यमिक संस्कृतशिक्षापरिषदः स्थापनानन्तरं सम्पूर्ण भारतवर्षे संस्कृताध्येत्णां कृते प्रचुरमात्रेण आजीविकायाः साधनानि भविष्यन्ति। उच्चशिक्षाक्षेत्रे सम्पूर्ण भारतवर्षे विश्वविद्यालयेषु महाविद्यालयेषु संस्थानेषु च संस्कृतस्याध्ययनाध्यापनं प्रचलति। भारते शताधिकविश्वविद्यालयाः सन्ति। विभिन्नेषु प्रदेशेषु संस्कृताकादम्यः सन्ति। यत्र संस्कृताध्येतृणां कृते अवसरः समुपलभ्यते। एतदतिरिच्यानेकानि स्वायत्तसंस्कृतशोधसंस्थानानि प्रचारसंस्थानानि चाहर्निशं संस्कृताय सन्नद्धानि सन्ति। संस्कृतविश्वविद्यालयेषु, महाविद्यालयेषु संस्कृतसंस्थानेषु च अध्यापकरूपेण, प्रधानाचार्य- रूपेणावसरः विद्यते। तत्र न केवलम् अध्यापने एव अपितु उच्चपदेषु, कार्यालयीयकार्येषु च संस्कृतज्ञानमपेक्षते। चिकित्साविज्ञाने, भाषाविज्ञाने, संगणकविज्ञाने च संस्कृतसाहित्याधारितं संस्कृतभाषाधारितं च शोधकार्यं देशे विदेशे च तीव्रगत्या प्रचलति, तत्र आधुनिकज्ञानविज्ञानसम्पन्नानां संस्कृतज्ञानां महत्यावश्यकता विद्यते। आई.ए.एन.एस. इत्यनुसारेण यूरोप-अमेरिका-आस्ट्रेलिया- जापान-थायिलैंडप्रभृतिषु देशेषु शिक्षासंस्थानेषु संस्कृतस्याध्ययनाध्यापनं प्रचलति। एतादृशानि संस्थानानी सर्वाधिकम् उत्तरीयामेरीकायां समुपलभ्यनते। केषाञ्चन् विश्वविद्यालयानां नामानि उपस्थाप्यन्ते यत्र संस्कृताध्ययनमध्यापनं शोधकार्यञ्च प्रचलति— आस्ट्रेलियन नेशनल विश्वविद्यालयः, यूनिवर्सिटी आफ सिडनी, वियेना यूनिवर्सिटी, गेन्ट यूनिवर्सिटी, बर्लिन यूनिवर्सिटी, हाले यूनिवर्सिटी, क्योटो यूनिवर्सिटी, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, इन्डियाना यूनिवर्सिटी, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया एवमनेके विश्वविद्यालयाः सन्ति यत्र न केवलं

संस्कृतस्यैव अपितु भारतीयसंस्कृतिं दर्शनं चावलम्ब्य उच्चशिक्षायामपि अध्ययनाध्यापनं शोधकार्यञ्च भवति। अतः विदेशेष्वपि संस्कृताध्येतृणां कृते प्रचुराणि आजीविकायाः साधनानि समुपलभ्यन्ते।

प्रशासनक्षेत्रे उद्योगावसराः —

साम्प्रतं विभिन्नप्रतियोगिपरीक्षायां संस्कृतविषयः स्वीकृतः। अतः संस्कृतज्ञाः आई.ए. एस. सदृशम् उच्चपदं प्राप्तुं शक्नुवन्ति। अनेके संस्कृतविद्यार्थिनः संस्कृतविषयमवलम्ब्य तादृशमुच्चपदं प्राप्य कार्यमपि कुर्वन्ति। विभिन्नेषु विश्वविद्यालयेषु, संस्कृतसंस्थानेषु, महाविद्यालयेषु च कुलपतिपदे, कुलसचिवपदे, परीक्षानियन्त्रकपदे, प्रधानाचार्यप्रभृतिषु च प्रशासनिकपदेषु महत्त्वाकाक्षिणां संस्कृताध्येतृणां कृते आजीविकाया अवसरः वर्तते। एतदतिरिच्य रेलसैन्यप्रभृतिषु विभिन्नविभागेषु च आजीविकाया अवसर उपलभ्यते। तत्र साक्षात् संस्कृतभाषायां कार्य न भवति किन्तु संस्कृतज्ञाः संस्कृतभावनया संस्कृतं कार्यं कर्तुं प्रभवाः भवन्ति। संस्कृतवाङ्मये एव आप्तपुरुषस्यावधारणा विद्यते। अतः संस्कृतज्ञाः यदि आप्तपुरुष इव प्रशासनिके पदे कार्याणि कुर्वन्ति तर्हि देशकल्याणमेव भवति।

पत्रकारिताक्षेत्रे उद्योगावसराः —

सम्पूर्ण भारतवर्षे शताधिकाः संस्कृतपत्रिकाः, समाचारपत्राणि, संस्कृतनिष्ठधार्मिक-पत्रिकाश्च प्रकाशिताः भवन्ति। तेषां लक्षाधिका: पाठकाः सन्ति। तत्र संपादकरूपेण, लेखकरूपेण, संस्कृतटङ्कणकर्तुरूपेण, संशोधकरूपेण, संवाददातृरूपेण च कार्याणि कर्तुं शक्नुवन्ति। दूरदर्शन विभिन्नेषु कार्यक्रमेषु संस्कृतसमाचारवाचकरूपेण, संस्कृतकार्यक्रमसंचालकरूपेण, भक्तिचैनलमध्ये कार्यक्रमसंपादकरूपेण, संस्कृतकार्यक्रमेषु अभिनेतारूपेण, अभिनेत्रीरूपेण च कार्य कर्तुम् नैकविधानि कार्याणि सन्ति। अद्यत्वे ज्योतिषसम्बन्धिकार्यक्रमाः अपि बहुलतया सञ्चाल्यन्ते।

चिकित्साक्षेत्रे उद्योगावसराः —

प्राचीनकालादारभ्य पतञ्जलिचरकप्रभृति ऋषयः आरोग्यविषये जागरूका आसन्। आधुनिकचिकित्साक्षेत्रे चिकित्सकैरायुर्वेदविज्ञानस्य योगविज्ञानस्य च महत्त्वं दृष्ट्वा ताः समाद्रियन्ते। ते योगविषयमायुर्वेदविषयं चावलम्ब्य शोधकार्याणि कुर्वन्ति। आयुर्वेदे नाडीविज्ञानस्य महत्त्वं सर्वविदितं वर्तते। हानिरहितौषध्या रोगनिवारणमायुर्वेदमतिरिच्य कस्यामपि चिकित्सापद्धतौ न दृश्यते। साम्प्रतं चिकित्साक्षेत्रे आयुर्वेदपद्धतिम् आयुर्वेद औषधिं च प्रति जनानां विशेषाकर्षणं दृश्यते। आपणेष्वपि आयुर्वेदिकौषधीनां बाहुल्यं दृश्यते। अतः चिकित्साक्षेत्रे संस्कृतज्ञानां कृते योगगुरुरूपेण, वैद्यरूपेण, मनोचिकित्सकरूपेण, व्यक्तित्वपरामर्शकरूपेण च प्रचुरावसरः विद्यते। आयुर्वेदिक औषधिनिर्माणक्षेत्रे संस्कृतज्ञानस्यापेक्षा वर्तते। अतः तत्रापि संस्कृताध्ययनेन वृत्तिलाभः भवति।

भवननिर्माणक्षेत्रे उद्योगावसराः —

प्राचीन भारतीयस्थापत्यकलायाः वैशिष्ट्यं सम्पूर्ण विश्वस्मिन् आमनन्ति । अथर्ववेदे स्थापत्यकलाविषये प्रचुरं वर्णनं समुपलभ्यते। आधुनिक काले पाश्चात्त्यशैली बहावासीय भवननिर्माणं प्रचलति तथापि तत्र जनाः वास्तुशास्त्रदृष्ट्या विचार्यभवननिर्माणं क्रयणं च कुर्वन्ति। भवननिर्माणे भवनमानचित्रं ज्योतिर्विद एव वास्तुदृष्ट्या परिष्करोति । विभिन्नेषु शिक्षणसंस्थानेषु वास्तुशास्त्राधारितभवननिर्माणविषये पाठ्यक्रमः प्रचलति। यथा- वास्तुविशारदः, वास्तुप्रवीण

इत्यादयः। तत्र ज्योतिषशास्त्रस्य, वास्तुशास्त्रस्य, आवासीयनिर्माणस्य, औद्योगिक भवननिर्माणस्य, ऐतिहासिकभवननिर्माणस्य, बह्वावासीयभवननिर्माणस्य मन्दिरनिर्माणस्य जौविकोपार्जयन्ति च। संस्कृतेन सह भवननिर्माणस्याप्यध्ययनं क्रियते चेत् विशेषवृत्तिलाभः भवति।

कर्मकाण्डक्षेत्रे उद्योगावसरा: —

सम्पूर्ण विश्वस्मिन् सर्वेषां धर्माणां स्वकीया पूजापद्धतिः वर्तते। भारते वैदिककालादेव पूजापद्धतिः प्रचलति। आधुनिके कालेऽपि भारतीयसमाजे परम्पराप्राप्तपूजापद्धतीनां महत्त्वं बर्तते। वर्षपर्यन्तमवच्छिन्नरूपेण पूजापर्वणां क्रमो दृश्यते। तत्र पूजायाः यज्ञस्य च कृते पूजकानां याजकानां चावश्यकता भवति। अतः कर्मकाण्डक्षेत्रे गृहेषु पूजायां पूजकरूपेण समाजे यज्ञादौ याजकरूपेण वा जीविकामुपार्जयितुं शक्नुवन्ति ।

राजनीतिक्षेत्रे उद्योगावसरा: —

राजनीतिः वस्तुतः समाजसेवा अस्ति किन्तु अद्यत्वे राजनीतेः विकटा भ्रष्टा स्थितिः दृश्यते। अतः तत्र सुरभारतीसमुपासकानां विद्याविनयदेशभक्तिसम्पन्नानां संस्कृतज्ञानां देशहिताय्यम आवश्यकता वर्तते। तत्रापि देशसेवया सह जीविकामुपार्जयितुं शक्नुवन्ति। स्वकीये क्षेत्रे जनानां मध्ये उदात्तचरित्रं प्रस्तुत्य तत्र विधायकरूपेण, सांसदरूपेण, नगरनिगमअध्यक्षरूपेणापि कार्याणि कर्तुं शक्नुवन्ति। अन्येषां सामान्यजनप्रतिनिधीनाम् अपेक्षया संस्कृतज्ञजनप्रतिनिधीनां लोके विशेषसम्मानमादरं लोकप्रियता श्रद्धा च भवति। अतः ते सरलतया जनविश्वासं प्राप्य जनप्रतिनिधि- रूपेण जाति-धर्म-वर्गादि-भेदभावरहिततया सर्वधर्म-जात्यादि हितसंरक्षणाय कार्याणि कर्तुं शक्नुवन्ति। योगीआदित्यनाथजी, श्रीसतपालमहाराजः, श्रीरामविलासवेदान्ती, श्रीकर्णसिंहः सुश्री उमाभारती, श्रीमुरलीमनोहरजोशी,डॉ रमेश पोखरियाल 'निशंक' प्रभृतयः अनेक संस्कृतविद्वांसः राजनीतिक्षेत्रेऽपि सफलतया कार्याणि कुर्वन्ति।

लोककल्याणक्षेत्रे उद्योगावसरा: —

संस्कृतज्ञाः स्वज्ञाननिधिभिः सर्वदा लोककल्याणमेव चिन्तयन्ति। लोकेषु धर्मप्रवचन-कर्तृरूपेण समाजकल्याणसंस्थाद्वारा समाजसेवया सह जीविकोपार्जनं कर्तुं शक्नुवन्ति एवम् आधुनिके समाजे संस्कृतज्ञानां सर्वत्रापेक्षास्ति । सर्वेषु क्षेत्रेषु जीवोकोपार्जनं प्राप्तुं शक्नुवन्ति । संस्कृतमधीत्य जना: अनुवादका:, मुद्रणालयः, पुस्तकालय:, चिकित्सालयः ज्योतिषकार्यालय: पौरोहित्यम् कथावाचकः, पौराणिक अनुसन्धान कर्ता प्रभृति कार्याणि कर्तुं शक्नोति।

अस्माकं उत्तराखण्ड सर्वकारेण यदा प्रभृति द्वितीय राजभाषा (संस्कृतभाषा) स्वीकृता तदा प्रभृति संस्कृत क्षेत्रे अनेकेऽवसरा: वर्तन्ते। एतदतिरिक्तं इदमपिध्यातव्यं, संस्कृत अधीयाना: जना: कुत्रापि धरना प्रदर्शनादिकं न कुर्वन्ति। अतः स्वयमेव सिद्धयति- संस्कृत अध्येतारः निरुद्योगा: न सन्ति।

उद्योगिनो जनाः सर्वे संस्कृतज्ञाः निरन्तरम्।
लब्धोद्योगा: वयं सर्वे, समृद्धं कुर्म भारतम् ॥

5.3.2 उत्तराखण्ड संस्कृतस्य स्थिति—

उत्तराखण्ड राज्यस्य अपर पर्याय: देवभूमिः पूर्वकालादेव प्रसिद्धा अस्ति। अतो देवभूमौ देवभाषायाः स्थिति सुदृढ़ा भवेत्। यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्त पूर्व अपि उत्तराखण्डे संस्कृत शिक्षायाः

स्थिति समीचीना नासीत् परं संस्कृतस्य स्थित सामान्या आसीत्, जना: ये ग्रामेषु विद्वांसः आसन् तेषां गृहे एवं संस्कृत अधीयन्ते स्म। स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् संस्कृतस्य अनेके विद्यालयाः महाविद्यालयाश्च संचालिता आसन्। उत्तराखण्ड निर्माणान्तरं अनेके संस्कृत विद्यालयाः महाविद्यालयाश्च संचालिता: सन्ति। तत्पश्चात् उत्तराखण्ड संस्कृतस्थ कृते "द्वितीया राजभाषाया" "स्थान प्रदत्तम् प्राथमिक कृक्षात्: एव संस्कृत शिक्षण आरब्ध । हरिद्वार नगर्या "उत्तराखण्ड विश्वविद्यालयस्य, गुरूकुल कागड़ी विश्विद्यालयस्य स्थापना कृता, उत्तराखण्ड मुक्त विश्विद्यालयोऽपि संस्कृतस्य प्रचार प्रसारे अग्रणी वर्तते। अत्र अनेके नवोदित विद्यालया अपि सन्ति। तेष्वपि संस्कृतस्य पठनं पाठनं च प्रचलति। अतो पूर्वापेक्षा संस्कृतस्य स्थितिः समीचीना वर्तते। संस्कृतस्य प्रचार प्रसारार्थ उत्तराखण्ड संस्कृत अकादमी प्रयासरता अस्ति। समये समये संस्कृत शिविराणि आयोज्यन्ते परं यादृशं विकास: अपेक्षते तादृशं संस्कृतस्थ विकासः न अपेक्षितः। अन्ये उपाया अपि चिन्तनीयाः।।

संस्कृतस्य रक्षार्थ के उपायाः कर्त्तव्याः—

ब्रिटिशशासनात्प्राक् भारते संस्कृतस्य प्रसार सार्वत्रिक आसीत् । पञ्चत्रिंशदुत्तराष्टादेशशततमे [= १८३५] ख्रिष्टाब्दे वंगेष्वेव केवलं लक्षमिताः पाठशाला आसन् । सर टॉमसमहोदयानुसारं द्वाविशत्युत्तराष्टादशशततमे [१८८२] ख्रिष्टाब्दे मद्रासप्रदेशे सार्धद्वादशसहस्रमिताः पाठशाला आसन् । यासु पञ्चाशदधिकषट्शतोत्तराष्टाशीतिसहस्राधिकैकलक्ष [= १८८६५०] संख्याश्छात्राः शिक्षां लभन्ते स्म ।

परं ब्रिटिशशासकैः सा प्राचीनशिक्षापद्धतिविनाशिता । लार्ड मैकॉले- महोदयेन आङ्गलभाषायाः प्रसारः कृतः । फलतश्च संस्कृतस्य ह्रासयुगमाविरभवत् ।

संस्कृतस्य रक्षार्थ के उपायाः कर्त्तव्या इति प्रश्नोऽद्यास्माकं मनःसु समुत्पद्यते । संस्कृतस्य रक्षार्थ निम्ननिर्दिष्टाः खलु उपाया कल्प्स्यन्ते -

लोकानां हृदयेषु संस्कृतभाषां प्रति अनुरागस्तु विद्यते एव । सर्व- प्रथमं तावत्संस्कृतं प्रति लोकेषु अनुरागजागरणार्थम्, संस्कृतशिक्षाञ्च प्रजाभ्योऽर्थंकरी कत्तूमस्माभिः प्रयतितव्यम् । संस्कृताध्यापकानां वेतनवृद्धिरपि कर्त्तव्या । आर्थिकदशायाः परिवत्तंनेन तेषां सामाजिकी स्थिति रपि समुन्नता भविष्याति। ततो जनानां संस्कृताध्ययने प्रवृत्तिरनायासे नैव भविष्याति।

पाठशालाषु विद्यालयेषु च संस्कृतस्यशिक्षणमनिवार्य कर्तव्यम् । महाविद्यालयेषु प्रतियोगितापरीक्षासु चापि यथाशक्ति अस्य शिक्षणेन प्राधान्येन भवितव्यम् ।

संस्कृतभाषा सरलीकर्तव्या, येन सामान्याश्छात्रा अपि सौकर्येणास्या रसास्वादनं कुर्वन्तु, एनाञ्च प्रति छात्रलोकस्य अधिकाधिका प्रवृत्तिः स्यात् । सरला भाषा एव लोकप्रिया भवितुमंहति । व्याकरणस्य ताभिस्ताभिर्ज टिलाभिदु बर्बोधवृत्तिभिः संस्कृतभाषाया यथा विमोक्षणं स्यात्तथव प्रयतितव्यम् ।

शिक्षोपयुक्तानि प्राथमिकपाठ्यपुस्तकानि, बालोपयोगिनो गद्यपद्यसंग्रहान् अन्यच्चोपकारि साहित्यं निर्मेयम् । आकाशवाणीद्वाराऽपि संस्कृतं प्रति जनताया रुचिरुत्पादनीया । संस्कृतपरिषदः स्थायापयितव्याः। दैनिकपत्रेषु साप्ताहिकपत्रिकासु च संस्कृताय स्तम्भ एकः प्रदातव्यः । संस् तनाटकानामभिनयैः साधारणजनताया रुचिः संस्कृतं प्रत्युत्पादनीया प्रवर्द्धनीया च । पारितोषिकादिभिश्च प्रोत्साहयितव्याः संस्कृतवक्तारः संस्कृतलेखकाश्च ।

एभिरुपायैः संस्कृतस्य प्रसारे एव रक्षाया भागो निहितः । परमत्र विषये यावान्सहयोगः केन्द्रीयसर्वकारस्यप्रान्तीयराज्यानाञ्चापेक्ष्यते नावानेव खलूदारजनत या अपीति सुनिश्चितम् ।

5.3.3 संस्कृत सप्ताह: —

सम्पूर्ण भारतीयवाङ्मयं संस्कृतं आश्रित्य तिष्ठति। पूर्वं सर्वे भारतीयाः संस्कृतानुरागिणः संस्कृतं मातृभाषावोऽपि अधिकं सम्मानं कुर्वन्ति स्म। परं पाश्चात्य संस्कृति प्रभावेण ऑग्लभाषाया बर्चस्वेन जनानां संस्कृतानुराग : तिरोहित: अस्माकं उत्तराखण्ड सर्वकारेण संस्कृतस्य प्रचार प्रसाराय संस्कृतसप्ताह, संस्कृतमासः प्रभृति कालं निर्धारितम। सर्वकारेण २०१४ तमे वर्षे प्रचार-प्रसाराय संस्कृत सप्ताहस्य घोषणाकृता। घोषणानुसारं सप्ताह पर्यन्तं नगर भ्रमणम्, निबन्ध प्रतियोगिता, चित्रकला प्रतियोगिता, संस्कृतनाटकानां मंचनम्, नृत्यगीतानां आयोजनं सप्ताह पर्यन्तं सम्पन्नं अभवत्। अनेन सर्वत्र ग्रामे-ग्रमे, नगरे-नगरे, जनपदे-प्रदेशे च संस्कृतमय वातावरणम् संजातः। ये जनाः संस्कृतं विस्मृतवन्त: संस्कृत मृत भाषा वदन्ति स्म। ते आश्चर्यान्विताः संजाताः। कार्यतेतद् विद्यालये एव न नगर कार्यालयेषु, प्रादेशिक कार्यालयेषु, शासकीय, अर्द्धशासकीय अन्येष्वपि स्थलषु उत्साहेन सम्पन्नः। कार्यक्रमेऽस्मिन् बालवृद्ध-युवान:- युवानो- युवत्यश्च कर्मचारी जना: अधिकारिणश्च उत्साहेन सहभागिता अकुर्वन्।चेत अस्माकम् ग्रामे-ग्रमे, नगरे-नगरे, जनपदे-प्रदेशे-देशे एतादृशा: कार्यक्रमा: भवेयु नूनमेव संस्कृत भाषा उन्नतीपथेऽग्रेसरति।

संस्कृत विश्वपथ प्रदर्शकम्। संस्कृतं अस्माकं जीवनदर्शनम्।।
संस्कृतं विश्वगुरूप्रदायकम्। संस्कृतंहिअहर्निशं प्रचारणीयम्।।

5.3.4 संस्कृत दिवस—

संस्कृत भाषा भारतीयानां प्राणभूता भाषा प्राति श्रावणी पुण्यवेलायां संस्कृत दिवस: सर्वै: जनैः उत्साहेन मन्यते। दिवसेऽस्मिन् ऋषीणां पूजन-स्मरण-तर्पण कारणात ऋषि पर्वोऽपि कथ्यते। ऋषय अस्माकं संस्कृतस्य स्रोतांसि दिवसेऽस्मिन् वयं संस्कृत कवि सम्मेलनं लेखन-भाषण-श्लोकोच्चारण प्रतियोगितां च आयोजयाम:। संस्कृत दिवस:1969 ईसबीयाब्दे भारतदेशस्य क्रेन्दीयसर्वकारेण राज्यसर्वकारेश्च आरब्ध: श्रूयते च। पुरा जना: पौषमासस्य पूर्णिमात: श्रावणशुक्ल पूर्णिमा यावत् स्वाध्यायं न कुर्वन्ति।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमायां अध्ययनं पुनः प्रारभ्यते अतो अस्य दिवसस्य नाम संस्कृत दिवस: अस्ति । भारत सर्वकारेण प्राचीन भाषायाः संरक्षणार्थं संवर्द्धनार्थं च संपूर्ण विश्वे अस्य प्रचार: प्रसारश्च कृत:। अतोऽयं विश्व संस्कृत दिवस अपि कथ्यते। गुरुकुलेषु अस्मिन् दिवसे एव शैक्षिक सत्र प्रारभ्यते स्म तदा वेद मन्त्रै: एव सत्रारंम्भे भवति स्म। छात्राः शास्त्राणां अध्ययनं प्रारंभन्ते स्म, संस्कृत भाषा सर्वासां भाषाणां जननी अस्ति जननां संस्करोति मर्यादां बोधयति, छात्रेषु विनयातां ओदधाति। ज्ञानं प्रदाय अन्येभ्य पृथक् करोति। धृति आदिनां धर्मोक्त लक्षणानां चपालनं कारयति।

संस्कृते यादृशं तर्कं अस्ति अन्यत्र तादृशं दुर्लभम् अस्य नाम कस्यापि क्षेत्रं राज्यं देशं लक्षीकृत्य न कृत: यथा यथा अंग्रेजी, चायनीज, जर्मनी, फारसी, हिन्दी प्रभृतयः भाषा जन देशं वा लक्ष्यीकृत्य वा सन्ति। अस्माकं चारणं लक्ष्य संस्कृत संभाषणं भवेत्। एतत् प्रथम सोपानम्।

अस्माकं अध्ययन मार्ग: संभाषणतः शास्त्र पर्यन्तं भवेत् , तत्र प्रवेशद्वारं सम्भाषणमार्ग: चेत संस्कृत संभाषणं एकं जनान्दोलनं भवेत। सम्भाषण माध्यमेन जनजागरणं कर्तुं शक्यते। अनेन संस्कृतस्यपुनरूज्जीवनं भवितुं शक्नोति। यथा भारत स्वातन्त्र आन्दोलने चरखा आन्दोलनं आरब्ध अस्माकं नेतृ वर्ग: चिन्तितवान् प्रतिदिनं सर्वेजना: अर्धघण्टां यावत् तन्तु निर्माणं करिष्यन्ति चेत नुनं देश: स्वतन्त्रो भविष्यति। तथैव इदानीं अपि चतुर्विंशति वादने एक वादनं संस्कृत सम्भाषणं कुर्यु: नूनं सर्वेजना: संस्कृत सम्भाषणे पारंगता: भवेयु। संस्कृतस्य विकासार्थं संस्कृत एका होमियोपेथि गुलिका इव अस्ति। दर्शनेन लघु प्रभवेण महान् रोगस्य मूलमेव नाशयति सम्भाषण माध्यमेन दूरगामी परिणाम प्राप्तु शक्यते । यद्यपि प्रश्ना: अनेके उत्तरम् एकम् 'संभाषण संभाषणकार्य संस्कृतस्य संजीवनी। अतो सर्वासां समस्यानां समाधानं संस्कृतेन संभाषणम्।

अतो संस्कृतेन वदतु न तु संस्कृत विषये वदतु। संभाषण द्वारा संस्कृत संदेशं, प्रतिनगरं, प्रतिग्रामं प्रतिव्यक्ति हृदयं च प्रापयाम। आधुनिक युवाभ्यं प्रेरणामंत्र: आधोष इव अस्ति—

संस्कृतेन संभाषणं कुरू।
जीवनस्य परिवर्तनं कुरू।
भवद्भि: यन्मुखेनैव, आओ जाओ निगद्यते ।
आगच्छ गच्छेति कथं तन्मुखेन च नोच्यते ॥

5.3.5 वर्तमान-युगे संगणकस्य (कम्प्यूटरस्य) उपयोगित्वम्—

कम्प्यूटर (Computer) शब्द: आंग्लभाषायाः गणनार्थकात् कम्प्यूट (Compute) शब्दाद निष्यच्चते । अतः कम्प्यूटरस्य कृते संगणक-शब्दः प्रयुज्यते । आधुनिकेषु आविष्कार कम्प्यूटरस्य विशिष्टं महत्त्वं वर्तते । वर्तमान-युगः संगणक-युगः (Computer-age) इति निगद्यते। संगणकेन मानव-जीवने नवीना क्रान्तिः विहिता । संगणकस्य वादृशी तीव प्रगतिः संलक्ष्यते, न तादृशी प्रगतिः अन्यस्याः कस्या अपि क्रान्तेः संलक्ष्यते । प्रारम्भ-काले अस्य उपयोगः केवलं गणनाकार्ये समभवत्, परन्तु साम्प्रतम् अस्योपयोगः प्रायः सर्वेषु कार्येषु अनिवार्यतां धत्ते । साम्प्रतं कम्प्यूटरस्य उपयोगो यन्त्राणाम् आकार-प्रकार-निर्धारणे, भवनानां निर्माण-प्रक्रियायाम्, ऋतुनिर्देशने, भवनानां निर्माण-प्रक्रियायाम्, विमानादीनां दिशा-निर्देशने, रेल-विमानादिषु आरक्षणकार्ये, रोगाणां सूक्ष्म-परीक्षणे विश्लेषणे च, वैज्ञानिके शोधकार्ये, वाणिज्य-व्यवसाये, वेतन-गणनायाम्, कार्यालय-प्रबन्धने, भण्डागार-व्यवस्थापने, कार्मिकानां वेतनादि-निर्धारणे विधीयते । एवमेव बीमा-शेयर-प्रभृतिषु उद्योगेषु, शिक्षाक्षेत्रे, मनोरञ्जन-विधौ, ललित-कला-कार्य-कलापे महत्त्वपूर्ण भूमिका वर्तते कम्प्यूटरस्य ।

सर्वप्रथमं सांख्यिकी-कम्प्यूटरस्य निर्माणं पेनसिलवानिया-विश्वविद्यालये १९४६ ईसवीये अभवन्। तदा एतस्य भारः त्रिंशत्-टन-परिमितम् आसीत् । साम्प्रतं कम्प्यूटर: अतिद्रुतगत्या विकासं कुर्वन् लोकस्य उपयोगितां साधयति । आकार-प्रकार-दृष्ट्या कार्यक्षमतां चाश्रित्य कम्प्यूटरः चतुर्वर्गेषु विभाज्यते ।

१. मेन फ्रेम-कम्प्यूटरः,
३. माइक्रो-कम्प्यूटरः,
२. मिनि-कम्प्यूटर:

४. सुपर कम्प्यूटर:

१. मेन फ्रेम-कम्प्यूटरः एष संगणको महतीं क्षमतां धत्ते। अत्र अनेके जनाः कार्य कर्तुं शक्नुवन्ति। एते संगणकाः उपकेन्द्रः सह संयोजनेन-माइक्रोवेव-माध्यमेन भू- उपग्रह-संचार-व्यवस्थायाम्, वायुयान-आरक्षणे, रेलयान-आरक्षणे च प्रयुज्यन्ते। एते बहुमूल्याः भवन्ति।

२. मिनि-कम्प्यूटरः- एष मध्यमश्रेण्याः भवति । एते संगणकाः बीमा-बैंक-होटलादि-उद्योगेषु उपयुज्यन्ते।

३. माइक्रो कम्प्यूटर: - एष साम्प्रतं सर्वाधिकं प्रयुज्यते। अत्रैको जनः कार्य कर्तुं प्रभवति। एते संगणकाः लघवोऽल्पमूल्यकाश्च भवन्ति। व्यक्तिगत-कार्येषु उपयोगाद् एते संगणका: (Personal Computer, P.C.) नाम्ना निर्दिश्यन्ते । एते लघ्वाकारा अपि उपलभ्यन्ते । आकार-दृष्ट्या लघवोऽप्येते कार्यदृष्ट्या महती क्षमतां दधति।

वर्तमान-युगे संगणकस्य (कम्प्यूटरस्य) उपयोगित्वम्

४. सुपर कम्प्यूटरः- एते आकारदृष्ट्या विशाला भवन्ति। कार्य-दृष्ट्या एते अन्यसंगणकापेक्षया तीव्रतमा भवन्ति । एतेषु गणना-कार्यम् एकत्रैव सर्व संपाद्यते । एतादृशानां संगणकानाम् ऋतुविज्ञानकार्ये, अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी-कार्ये, उपग्रह-प्रक्षेपणे, प्रक्षेपास्त्र-निर्माणे, प्रक्षेपास्त्र-प्रक्षेपणे, परमाणु-बम-निर्माणे, तस्य विस्फोटादि-कार्ये च विधीयते।

शिक्षा-क्षेत्रे संगणकानां बहुविधा उपयोगिता। संगणकानां साहाय्येन जटिल समस्यानां निराकरणं सरलतया संभवति। प्रशिक्षण कार्येऽपि संगणकानाम् उपयोगो भवति। शोधकार्येऽपि संगणकानाम् उपयोगिता महत्त्वपूर्णा वर्तते। विविधविषयाणां स्वयं शिक्षणेऽपि संगणकानाम् उपयोगो विधीयते। सर्वमपि पाठ्यं विभज्य संगणके स्थाप्यते, तच्च सर्वं पाठ्यं क्रमशः उपतिष्ठति। एवम् अनेका विद्याः संगणक-माध्यमेन शिक्षितुं शक्यन्ते। एता विधा: CAL (Computer Assisted Learning), CAI (Computer Aided Instruction) इति च नाम्ना निर्दिश्यन्ते।

परीक्षाकार्येषु अपि संगणकाः बहुधा प्रयुज्यन्ते। परीक्षा तिथि-निर्धारणे, परीक्षाया आयोजने, परीक्षा-परिणाम-संगणने, परीक्षा-परिणाम-प्रकाशने च संगणकानां महती भूमिका। पुस्तकालय-विषयिका सर्वाऽपि सूचना संगणक-माध्यमेन सरलतया प्राप्तुं शक्यते। पुस्तक-प्रकाशने पुस्तकानां व्यवसाये च संगणकानाम् उपयोगो महत् सौविध्यं विदधाति। इलेक्ट्रिक-पुस्तक-प्रकाशनेन पुस्तकानाम् उपलब्धौ सौविध्यं भविष्यति। वेव साइट-माध्यमेन इलेक्ट्रानिक-रूपेण पुस्तकं प्राप्तुं शक्यते।

वैज्ञानिक-शोध-कार्येषु संगणकानां महत्त्वपूर्ण योगदानं वर्तते। वैज्ञानिकं शोर्घ- कार्य निरन्तरं प्रसरति। तत्र गणनायां जटिलतायाः संगणक-माध्यमेन समाधानं भवति। भौतिक-विज्ञाने, रसायन-विज्ञाने, खगोल-विज्ञाने, भूगर्भ विज्ञाने, गणितशास्त्रे, कृषि-विज्ञानादिषु च संगणकस्य प्रयोगेण महती प्रगतिः संलक्ष्यते । भैषज्य-विज्ञाने, सामाजिक-विज्ञाने, मानवशास्त्रादीनां शोधकार्येषु संगणकस्य उपयोगः प्रतिदिनं वर्धते। कम्प्यूटर-माध्यमेन विशाल-भवनानां, सेतूनां, वायुयानानाम् आदर्श-चित्रं सारल्येन प्रस्तूयन्ते।

ललितकला-क्षेत्रेऽपि संगणको नूतनां संभावनां जागरयति। संगणकः संगीत- प्रक्रियायां, मूर्ति-निर्माणेऽपि विविधं साहाय्यम् आचरति। क्रीडाक्षेत्रे संगणको नूतनां संभावनां प्रस्तौति।

कम्प्यूटर-माध्यमेन विविधाः क्रीडाः- हाकी-फुटबाल-क्रिकेट-प्रभृतयः दूरदर्शन- चित्रपटे द्रष्टुं शक्यन्ते। विविध-क्रीडानां सजीवं प्रसारणं संगणक-माध्यमेन संभाव्यते।

चिकित्साक्षेत्रे संगणकानाम् उपयोगो महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहति। आतुराणां परीक्षणम् उपचारक्रिययैव सह शल्यक्रियाऽपि संगणकान। प्रयोगेण अनुष्ठीयते। मस्तिष्कस्य चित्रनिर्माणे कैट स्केन (Computerised Axial Tomography) पद्धतिः प्रयुज्यते।

व्यापार-क्षेत्रेऽपि संगणकानाम् उपयोगः प्रतिपलं वर्धते। कार्मिक वेतन-गणना, कार्मिक-प्रबन्धनम्, भाण्डागार-नियन्त्रणं संगणक-माध्यमेन संपाद्यते। व्यापारिक संस्थानाम् आय-व्ययादि-संकलनम्, दैनिक वेतन-गणनादिकम्, वार्षिक-वेतन-निर्धारणादिके च संगणक-माध्यमेन सारल्यं भजते। संगणकस्य प्रयोगेन प्रबन्धन-व्यवस्था अतीव सरला संजाता।

साम्प्रतं संगणकस्य प्रयोगो वित्तीय-संस्थानां कृते, बीमा-शेयर-प्रभृति-कार्येषु अनिवार्यल भजते। बैंक-प्रभृतिषु उपभोक्तृणां संख्या प्रतिदिनं वर्धते, अतः वित्त-प्रबन्धने काठिन्यय अनुभूयते। तस्य निराकरणार्थं संगणकस्य उपयोगः आवश्यको भवति। औद्योगिकर प्रतिष्ठानेषु संगणकानां प्रयोगेण उत्पादन-वृत्तम्, यन्त्र-संचालनम्, वस्तूनां गुणवत्ता-निर्धारणं सरलं भवति। संगणकानाम् उपयोगेन एकस्मिन् एवं स्थाने स्थित्वा सर्वस्य यन्त्रजातस्य संचालनं नियन्त्रणं च संभवति।

अन्तरिक्ष-प्रौद्योगिकी-क्षेत्रे यादृशी प्रगतिः संलक्ष्यते सा संगणक प्रयोगेण असंभवाऽपि संभवा संजाता। अन्तरिक्ष-यानानां प्रक्षेपणं, नियन्त्रणं, सूचना-संकलनम्, तद्विश्लेषणं च संगणकस्य प्रयोगेणैव संभवोऽभूत्। भूगर्भ विज्ञाने, खनिज-विज्ञाने, ऋतुविज्ञाने च प्राप्तसामग्री-विश्लेषणेन बहुविधा नूतनाः सूचनाः प्राप्यन्ते।

यातायात-क्षेत्रेऽपि संगणकानाम् उपयोगो बहुमूल्यं सिध्यति। रेल-यानेषु आरक्षण-व्यवस्था, यानानां संचालनादिकं च भवति। एकस्थानत एव सर्वोऽपि यात्रा-कार्यक्रमः आरक्षण-पद्धत्या संभाव्यते।

दूरसंचारक्षेत्रे संगणकानां प्रयोगेण महत् परिवर्तनं संलक्ष्यते। साम्प्रतं सर्वाऽपि टेलीफोन एक्सचेंज-व्यवस्था संगणकानां माध्यमेनैव विधीयते। इन्टरनेट, ई-मेल, ई- कामर्स-प्रभृतयः संगणकस्य प्रयोगेण नूतनां क्रान्तिं विदधति।

कम्प्यूटर-संबद्धा इन्टरनेट-प्रणाली महासागरवद् वर्तते। सर्वस्मिन् जगति यत् किंचिद् ज्ञानं विज्ञानं, शोध-संबद्धं कार्यजातं च वर्तते, तत् सर्वम् एकत्रैव प्राप्तुं शक्यते। एवं सुकरम् एतद् वक्तुं यत् सांप्रतं संगणकस्य उपयोगिता बहुविधा वर्तते। उन्नत्यै, प्रगत्यै, विकासाय च संगणकानाम् उपयोग आवश्यकः।

5.3.6 विज्ञानं वैज्ञानिका आविष्काराश्च—

आवश्यकता आविष्कारणां जननी भवति। इदं युगं विधान प्रधानं नास्त्यत्र कोऽपि सन्देहः। वैज्ञानिकैः आविष्कारैः जगतो महानुपकारो जातः। वैज्ञानिकेन मानवेन लोकहितार्थं प्राकृतिकशक्तीनां वशीकरणे यत्साफलं प्राप्तं तत् न विस्मर्तुं शक्यते।

प्राचीनकाले वाहनानि अश्वरथः, गजः, घोटकाश्च आसन्। श्रेष्ठिनो महाजना धनिकाश्च पुष्परथैः, शकटैः, शकटीभिश्च चलन्ति स्म। सामान्यजनास्तु पद्भ्यामेव जग्मुः। साम्प्रतं तु नानाविधान्यद्भुतयानानि वैज्ञानिकैः निर्मितानि सन्ति। धूम्रयानेन स्थळे वयं वेगेन गच्छामः।

धूम्रयानेन अस्माकं दूरयात्रायां जायमान- मसौख्यमपि दूरीकृतम् । वयं पोतेन समुद्राँश्च तरामः, वायुयानेन च आकाशेऽपि स्वच्छदं विचरामः । परं विमानानां, समुद्रपोतानां जलान्तर्गामिनीनां नौकानाम् चाविष्कारेण युक्तं नितरां भीषणं जातम् ।

अद्य चित्रपटस्य समाजे यादृशः प्रभावः न तादृशोऽन्यस्य कस्यापि वस्तुनः । सम्प्रति चित्रपटस्य महान् प्रचारोऽस्ति । एवं किमपि नगरं नास्ति यत्र चित्रपट- भवनं न भवेत् । अद्य मुद्रणयन्त्र-प्रभावेण अतिदुर्लभमपि ग्रन्थरत्नमल्पमूल्येन लब्धुं शक्यते । समाचारपत्राणि अधुना गेहे गेहे पठ्यन्ते । समाचारपत्रेण संसारस्य महान् उपकारः भवति । अनेनैव सर्वं स्थानं निकटे स्थितमिव वर्तते । 'रेडियो' इत्याख्येन ध्वनिप्रसारकयन्त्रेण पर्वतानां सागराणां गहनानां वनानां च व्यवधानम् अविगणय्य जन उच्चारणसमकालमेव सहस्त्रकोशेभ्योऽपि वृत्तं गीतादिकं च शृणोति । 'टेलीविजन' इति नाम्ना प्रसिद्धेन यन्त्रेण दविष्ठस्यापि जनस्य आकृतिरपि दृष्टिपथमायाति । अहो विज्ञानस्य विस्मयावहः महिमा । कृषियन्त्राणामाविष्कारेण इह विज्ञानप्रधाने युगे उत्पादनकर्मणि महती प्रगतिः दृश्यते । अधुना प्रत्येक कार्य विद्युच्छक्तिप्रयोगेण सरलतया सुष्ठुतया च सम्पादयितु शक्यते । दूरवीक्षणयन्त्राणाम् आविष्कारेण सूक्ष्मतरा अपि कीटाणवः द्रष्टुं शक्यन्ते । प्रचण्डेऽपि निदाधे ग्रीष्मभयमथवा कठिनेऽपि शीते शीतभयम् इदानीं नास्ति । वयम् उभयोः अपि कालयोः विद्युद्व्यजनसाहाय्येन विद्युच्चुल्लिप्रयोगेण वा सुव पूर्वकं शेमहे । सर्वमेतद् अन्यच्च वा सुखं वैज्ञानिकानां महतः श्रमस्य परिणामः । परमतीव खेदस्यायं विषयो यदियं विज्ञानस्योन्नतिः जनानां विध्वंसात्मकप्रवृत्त्या । अतः विध्वंसात्मकं विज्ञानं परित्यज्य रचनात्मकविज्ञानमङ्गीकृत्य जनाः सुख लभेत् ।

5.3.7 उत्तराखण्डे वनोषधि:

उत्तराखण्ड: बनाच्छन्न प्रदेशः अत्रत्य भूभाग: आधिकाधिक पर्वताच्छनः वनांच्छन्नश्च। वनेषु विविधाः लता औषधयः प्राप्यन्ते शास्त्रेषु उक्तम्— **"धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूल मूत्तम्"** अतो आरोग्यार्य औषधीनां प्रवल आवश्यकता वर्तते। यद्यपि उत्तराखण्डस्य जलं वायुश्च ओषधि कार्यं करोति परं वर्तमाने वनानां अनावश्यक दोहनात् अनेकाः औषधयः लुप्ता: तथा औषधीनां संरक्षण संबर्द्धनाऽभावात् अनेका: औषधया: विलुप्त प्रायाः।

यशस्तेजो विवृद्धयर्थं विद्या बुद्धि बलं तथा।
औषधीपुष्ट देहस्य करस्था सर्व सिद्धयः।।

ये जना: शिक्षाहीना:, घनहीना: साधनहीना सन्ति निर्बला अशक्ताश्च सन्ति ते औषधीनां संरक्षण संबर्द्धनं च कृत्वा वनानां वनस्पतीनां औषधीनां सरंक्षणेन समाजस्य हितं सम्पादयन्ति। येन प्रकृते संरक्षणं तु भवत्येव औषधीनां रोपनेन वयं स्वस्था भवाम तथा वनानां सरक्षणेन च अस्माकं पर्यावरणं अपि शुद्धोभविष्यति। तथाऽपि स्वास्थलाभाय औषधि: अवश्येव संरक्षणीयं ।

अस्माकं स्वास्थ लाभाय, औषधि परमावश्यकी । संरक्षणाय एतेषां प्रयतेम वयं सदा ॥

5.3.8 भारतस्य चत्वारि धामानि—

भारत: धर्म प्रधान देश: बहवः सम्प्रदायाः, बहुनि धामानि, बहवो धर्माः स्थाने स्थाने दृश्यन्ते। अनेका: जातयश्च देशस्य विविधता वर्तते। एतदर्थं संपूर्णदेशे, विविध धर्माश्च एक सूत्रे

स्थापनाय एक: युग पुरुषः प्रयत्नमकरोत्। सः युगपुरुषः आसीत् शंकराचार्य वर्यः। आचार्य वर्येण भारतदेशं पूर्वत: पश्चिम यावत् उत्तरत: दक्षिण यावतः सवर्वान् धर्मान् संप्रदायाश्च एकत्री कर्तु एक: सूत्रे वद्ध: महान् प्रयत्न: अकरोत, आचार्य वर्येण चतुर्षु स्थानेषु चतुर्ण्णां धामानां स्थापनां स्थापना कृता। उत्तरे वद्रिकाश्रमः, दक्षिणे श्रृंगेरी, पूर्वे जगन्नाथः, पश्चिमे द्वारकापीठ:। पूर्वं आचार्यवर्यः एषु स्थानेषु मठानां स्थापनां कृतवान्। धर्मस्थापनाय तेषु स्वशिष्यान् स्थापितवान् । आचार्य शकरद्वारा स्थापितानि मठानि वर्तमाने धाम नाम्ना प्रसिद्धानि। समये समये तत्र गत्वा जनाः मार्गदर्शन प्राप्नुवन्ति। भारतीया एव न वैदेशिका: अपि चतुर्णां धाम्नां परिचयार्थं अत्र आगच्छन्ति। तेषां च जानन्ति स्वदेशेऽपि तस्य प्रसारं कुर्वन्ति।

आर्यावर्त क्षेत्रेऽस्मिन् धर्मरक्षण तत्परा।
सन्ति चत्वारी धामानि आराध्या सर्वदेवहि।।

5.3.9 उत्तराखण्डस्य चत्वारि धामानि—

उत्तराखण्ड देवभूमि: अस्ति। अत्र यद्यपि पदे-पदे देवत्वं वर्तते, तात्राऽपि चत्वारि स्थानानी महत्वपूणीनि सन्ति। अतो ते एव धाम नाम्ना अंगीकृतानि पूर्वं तु गंगायमुनयो उदगमस्थलं गंगोत्री यमुनोत्री नाम्ना प्रसिद्धानि।

एकस्तभागवदिण्णो निवास भूमि: सा बद्रीनाथ नाम्ना प्रसिद्ध:। गढक्षेत्रेस्य पंचवद्री,पंचकेदार,पंचप्रयागा: प्रासिद्धा: सन्ति।

आदिबद्री- वृद्धबद्री-भविष्यबद्री-योगबद्री-बद्रीनारायणः प्रभृतयः पंचबद्री सन्ति। तथाऽपि धाम नाम्ना बद्रीनारायण: प्रसिद्धाऽस्ति। तीर्थोऽयं चमोली जनपदे वर्तते। अत्र लक्ष्मी बद्रीरूपेण विराजते। आदिगुरु शंकराचार्येण धामोऽयं स्थापित:।

सम्पूर्ण भारतदेशस्य वैदेशिकाश्च अस्यदर्शनार्थं आयान्ति। अत्र लक्ष्मी नारायणो निवासः अस्त्येव । अधोगति यात्रा पितरोऽपि अत्र पिण्डदानेन बैकुण्ठं प्राप्नुवन्ति। अतो धामोऽयं आनन्ददायकः मदमहेश्वर तुंगनाथ-रूद्रनाथ-कल्पेश्वर-केदारनाथ नामन: पंचकेदारा: प्रसिद्धा: सिन्त । धामरूपेण केदारनाथ: विशिष्ट अस्ति। धमोऽयं शिवस्य निवास भूमि: यत्र गंगा उद्गमस्थानात् निर्गत्य सततं नदी रुपेण प्रवाहमानाऽस्ति तत्र विरुद्ध गंगा एव प्रवहति तत्रस्थ धामस्य नाम गंगोत्री इति कथ्यते। यमुना नदी यत्र सततं प्रवाहमाना विशुद्ध यमुना रूपेण प्रवहति तत्र यमुनोत्री धाम प्रसिद्धोऽस्ति।

तीर्थानि सन्त्यनेकानि, चत्वार: प्रमुखस्तथा।
बद्री-केदार-गंगोत्री, यमुनोत्रीभिधास्तथा।।

5.3.10 पंच प्रयागा: —

उत्तराखण्डे पदे-पदे वहूनि तीर्थानि सन्ति। तेष्वपि केचन तीर्थानि नदी संगमेषु विराजन्ति। शास्त्रेषु वेदेषु च नदीनां संगमः पवित्रतमं मन्यते। तीर्थ श्रृंखलाषु पंचप्रयागानां विशिष्ट स्थानं वर्तते एषां नामानि देवप्रयागः, रूद्रप्रयागः, कर्णप्रयागः, नन्दप्रयागः, विष्णुप्रयाग: ।

देवरूद्रकर्णस्तथा नन्दविष्णु: तथापरे।
उत्तराखण्ड क्षेत्रेऽस्मिन् प्रयागा: पंचनामका: ।।।

देवप्रयाग:—

अलकनंदा भागीरथ्यो: सगमे देवप्रयागो वर्तते। अनन्तरं गंगा नाम्ना प्रसिद्धि: जाता देवप्रयागः सुर्दशन क्षेत्रोऽपि कथ्यते। स्कन्दपुराणस्य केदारखणानुसारेण - पुरा सत्य युगे देवशर्मा ब्राह्मण: अत्र तपश्चकार सः एकपादेन स्थित: स: सहस्रवर्षावधि: तपो विधाय: भगवद् विष्णो: दर्शनं कृतवान मनोभिलषितं च प्राप्तवान। अत्रत्य: शिवालय रघुनाथ मंदिरश्च दर्शकानां आकर्षयति। द्रविड शैल्या निर्मितं मंदिरम् ऋषीकेशतः सप्तति की.मी. अग्रे दैवप्रयाग तीर्थ: विराजते।

रूद्रप्रयाग: —

रूद्रेश्वरस्य अत्र विद्यमानत्वात रूद्रप्रयाग नाम्ना तीर्थं प्रसिद्ध अस्ति। तीर्थोऽयं ऋषीकेशतः चत्वारिंयात् उत्तर एकशत की.मी. परिमितं दूरे अस्ति। बद्रीनाथ मोटर मार्गे तीर्थ वयोऽयं विराजते श्रुयते पूर्व प्राह्मणो आदेशेन नारद: सहस्राधिक वर्षायावत् तपसा शिवस्य दर्शनं कृतवान् नारद:गांधर्व विधां महती नाम वीणां च लब्धवान्। मन्दाकिनी अलकनन्दा नद्योस्तटे विराजमान: दर्याकानां चेतासि आकर्षयति अत्र चामुण्डा रूद्रनाथश्च दर्शनीयः।

कर्णप्रयाग:—

दानवीर कर्णस्य तपः कारणात् तीर्थमिदं कर्णप्रयाग: नाम्ना प्रसिद्धं तीर्थमिदं अलकनंदा पिण्डरनद्यो: संगमे वर्तते। पिण्डरस्य अपर नाम कर्ण:। तपसा कर्ण: सूर्यं आराध्य अभेध कवचकुंडलौ प्राप्तवान्। उमा कर्णयो: देवालयौ दर्शनीयौ।

नन्दप्रयाग:—

अति पवित्र तीर्थेऽयम् नंदाकिनी- अलकनंदा नद्यो: संगमे वर्तते। पुरा नंददेव: नारायणं पुत्र रूपेण प्राप्तुं तपः अकरोत। तपसा नारायणं प्राप्तवान् च नंदा मन्दिरः नंदस्य तपस्थली नन्दाकिनी संगम कारणै: तीर्थोऽयं नंदप्रयाग नाम्ना प्रसिद्ध।

विष्णुप्रयाग:—

भगवद्विष्णो: प्राचीन मन्दिरस्य कारणेन अस्य तीर्थस्य नाम विष्णु प्रयाग वर्तते। अलकनंदा-विष्णूगंगा नद्यो: पवित्र संगमश्चास्ति। स्कन्द पुराणे अस्मिन् स्थाने पंचविष्णु गंगानदीनां पंच विष्णु कुंडानां वर्णनं चोपलभ्यते। वद्रीनाथ धामः अस्मात् स्थानात् प्रारभ्यते तीर्थ उभयत: पर्वतौस्तः यौ जय-विजय नाम्ना प्रसिद्धौ स्त:। तीर्थेऽयं जोशीमठ - बदरिकाश्रम मार्गे सन् पर्यटकानां चेतांसि आकर्षयति।

5.3.11 कुटीरोद्योग:

कुटीरोद्योगस्य प्रारम्भः— यद्यपि प्राचीनकालादेव कुटीरोद्योगानाम् उल्लेख उपलभ्यते। पुरा तेषां व्यवस्थितरूपेण नियन्त्रणं संचालनं प्रवर्तनं चासीन्नवेति वक्तुं दुष्करम्। ऋग्वेदे तक्षा, हिरण्यकारः, चर्मकारः, वासोवायः, इत्यादीनामुल्लेखो लभ्यते। यजुर्वेदे (अ० ३०.५-२२) बहवः कुटीरोद्योगाः सनामोल्लेखं प्राप्यन्ते। तत्र केचन कुटीरोद्योगाः प्राधान्येन निर्दिश्यन्ते। यथा- रथकारः, तक्षा, मणिकारः, इषुकारः, धनुष्कारः, ज्याकारः, रज्जुसर्जः, हिरण्यकारः, कुलालः, अयस्तापः, कर्मारः, सुराकारः, इत्यादयः। कुटीरोद्योगेषु संलग्नानां नारीणामपि वर्णनम् आप्यते। यथा-रजयित्री, पेशस्कारी, विदलकारी, कोशकारी, अञ्जनीकारी, वासः पल्पूली, स्मरकारी प्रभृतयः।

१९ तम-शताब्दीं यावद् भारतवर्षं स्वोद्योगार्थं जगति ख्याति लेभे। भारतीयं वस्तु शोभनं सुदृढमिति दूरदेशं यावत् प्रसिद्धिमवाप । ऐतिह्यमेतत् प्रमाणयति यद् रोमदेशं यावत् भारतीयवस्त्राणां ख्यातिरासीत्। ऊर्णावस्त्राणि, क्षौमवस्त्राणि, कश्मीरदेशीयानि वस्तूनि शाल-दुशाला-कम्बल-प्रभृतीनि अद्यावधि लोके ख्यातिमुपयान्ति । ढाका-नगरस्य मलमल-वस्त्रं विदेशेष्वपि प्रसिद्धि लेभे। हस्ति-दन्त-कर्माणि, काष्ठकृतयः, लौहवस्तूनि च भारतस्य गौरवम् अद्यावधि प्रथयन्ति। भारतीयवस्तूनि अरब-फारस-सीरिया- प्रभृतिदेशेषु ख्याति ययुः। एतच्च १९१९ ईसवीये प्रकाशितेन औद्योगिकायोग-विवरणेन प्रमाणीक्रियते ।

कुटीरोद्योगस्य महत्त्वम् - भारतस्य स्वातन्त्र्यलाभे क्रान्तदर्शिना महात्मना गान्धिना कुटीरोद्योगस्य महत्त्वं बहुधा प्रतिपादितम्। यान्त्रिकसभ्यता विनाशावहेति विचारं-विचारं स तद्विरोधरूपेण कुटीरोद्योगं प्रावर्तयत्। तस्याभिमतं यत् कुटीरोद्योगानां लघूद्योगानां च माध्यमेन भारते आर्थिकी समानता सम्भाव्यते। नगरस्थेषु विद्युत्संचालितेषु फैक्टरी-मिल-प्रभृतिषु अशिक्षितानां सामान्यानां ग्राम्यजनानां प्रवेशो न सम्भाव्यते। अतस्तेषां हितसम्पादनार्थम्, तेषाम् आर्थिकीं दुःसाध्यां समस्यां समाधातुं च कुटीरोद्योगं वरदान- रूपेण प्रत्यष्ठापयत्। एतेन तस्याभिमतं यद् अवकाशकाले ग्रामीणा नागरिका वा लोकाः स्वल्पव्ययसाध्येनोद्योगेनातिरिक्तधनोपार्जने क्षमाः स्युः। एवंविधया रीत्या समयस्य सदुपयोगेन सहैवातिरिक्तवित्तलाभोऽपि स्यात् । पारिवारिका जना बाला वृद्धाः स्त्रियश्च औद्योगिककर्मणि साहाय्यप्रदानेन स्वसमयं सफलयन्तु, अतिरिक्तं धनम् अर्जयेयुः, स्वीयाम् आर्थिकीं समस्यां च निराकुर्युः ।

एतदत्रावधेयं यत् कृषिप्रधानोऽयं भारतो देशः । अस्य नवतिप्रतिशतं जनाः कृषिकर्मनिरताः। संवत्सरे प्रायशः षड्मासं यावत् कृषिकर्माभावात् समयापव्यय एक दरीदृश्यते। यदि समयं बहुमूल्यम् अवगच्छन्तो ग्राम्या जना लघुद्योगेषु कुटीरोद्योगेषु च सामाजिको राष्ट्रिया च रिक्तं समयं विनियोजयेरन, तर्हि आर्थिकस्थितिसमुद्धारसमकालमेव तेषां पारिवारिकी स्थितिः समुद्धरेत्।

कुटीरोद्योगस्य जीवनोपयोगित्वम्— कुटीरोद्योगा लघुद्योगाश्च स्वीयावश्य कतापूत्यैव समं समाजस्य राष्ट्रस्य चार्थिकस्थितिसमुन्नयने क्षमाः । तत्र केचन तथाविधा अपि लघुद्योगाः सन्ति, ये स्वल्पव्ययसाध्याः, विद्यदभावेऽपि च प्रक्रमन्ते। लघुद्योगेषु वस्त्र-दरी-गलीचा रज्जु खद्दर-कम्बल-मीजा- सुवर्ण रजत ताम्र-पित्तल-प्रभृतिधातूनां पात्राणा कलात्मककृतीनां च निर्माणम्। एवमेव तैलोद्योगः, चर्मोद्योग:, फेनिल (SOAP)- उद्योगो दुग्धशालोद्योगश्च आर्थिकदृष्ट्याऽतीव लाभप्रदाः। मैसूर मद्रास बंगाल-असम-कश्मीर-प्रभृतिप्रदेशेषु अपरिष्कृतरेशमोद्योगोऽतीव प्रथते । बंगादिषु च जूट-वस्तु-निर्माण प्रतिवर्ष प्रवर्धत एव। विशेषत उल्लेख्या उद्योगाः स्वेटर-शाल-प्रभृतीनां निर्माणम्, ।

कुटीरोद्योगोऽयं दैन्यनाशकः, पतितोद्धारकः, दुर्गतिदमकः, समुन्नतिसाधकः, वृत्तिसमस्यानिवारकः, आर्थिकस्तरोन्नायकः, श्रममहत्त्वप्रतिपादकः, सर्वलोकहितसाधकः, क्षुत्-पिपासा-वस्त्राभाव-अन्नाभाव-धनाभावादि-दोषरोधकश्च। एवं कुटीरोद्योगो जनस्य राष्ट्रस्य च श्रेयसेऽभिवृद्धये च प्रथते।

5.3.12 उत्तराखण्डे औषधोद्योगः—

इतिहासस्य अध्ययनेन ज्ञायते प्राचीन कालादेव अस्माकं प्रदेशेदेशे उद्योगाः प्रचलिताः। उद्योगिनां नामानि - स्वर्णकारः, चर्मकारः, मणिकार: रथकार: उद्योगे संलग्न स्त्रीणामपि विवरणम् अस्ति— यथा- रजकारी, कोशकारी, अंजनीकारी इत्यादयः, परं अस्माकं प्रदेशे उद्योगानां न्यूनत्वात् एषां आधकं महत्त्व, अत्र बनेषु दुर्लभा औषधय: बर्तन्ते, पनचक्की प्रभृति, लौहकारादि प्रभृति लघुउद्योगा: सन्ति। ते अन्यत्र दुर्लभा सन्ति। अत्र वनेषु, ग्रामेषु, नदीतटेषु, हिमालयस्य दुर्गम स्थलेषु संजीवनी प्रभृतयः ओषधयः विद्यमानाः सन्ति। तेषां संरक्षण संवर्धन भविष्यति। ओषधीय वृक्षाणां रक्षणेन पर्यावरणस्य अपि सुरक्षा भविष्यति। ये शिक्षिताः साधन सम्पन्नाः ते महान उद्योगेषु कार्यं कर्तुं समर्था, परं ये साधन हीनाः, धन हीनाः, शिक्षा हीना, दुर्गमक्षेत्र वासिन: ते औषधि उद्योगेन धनं तु प्राप्नुवन्ति एव औषधीनां हितसंबर्धनं अपि कुर्वन्ति। एनं उद्योगं आबाल वृद्धाः, वनिताः, धनहीनः, निबलाः, सबलाः, कर्तुं समर्थाः एते उद्योगाः अल्प व्ययसाध्याः, विद्युद् अभावेऽपि चलन्ति यथा कश्मीरादिषु रेशमोद्योगः, वंगादिषु जूयेद्योग: तथा अस्माकं प्रदेश ओषधोद्योग: भवितुं शक्नोति । लघुउद्योगे: स्व आवश्यकता पूर्ति तु भत्येव सहैब समाजस्य, प्रदेशस्य, देशस्थापि आर्थिक स्थितेः उन्नति भवाति।

5.3.13 आपदा निवारणोपायाः—

आपातति सहसा या घटना सा एवं आपदा उच्यते। एताः घटना: मानव जानिता प्रकति जानितापि भवितुं शक्नोति अथवा अथवा पर्यावरणीयकारणै: अथवा सामाजिक कारणै अपि भवितुं शक्नोति। अस्माकं देशस्य प्रमुखापदा एते सन्ति जलसम्बन्धी, जलवायु सम्बन्धी आपदाः, ओलावृष्टि, मेघस्फोट, हिमस्खलनम्, शीतलहर: मेघगर्जना प्रभृतयः। एततिरिक्तं भूस्खलने, भूकम्पः, अग्निकाण्ड, बमविस्फोट वसदुर्घटना, रेल दुर्घटना, वायुयानदुर्घटना, जैवीयआपदा, महामारी द्वारा जनक्षति रसायनिक पदार्थानां क्षरणेन नागरिकं संघर्षेन साम्प्रदायिक अथवा जतीय संघर्षेण आपदा आयाति।

यद्यपि आपदा प्रशमनाय बहवोपाया सन्ति परं जनसहभागिता विना ते अपुर्णा। आपदा प्रशमनस्य मात्र एक विभागस्य उत्तरदायित्वं नास्ति। सर्वेषां विभागान् समन्वयेन जनसहभगिताऽपि एतदर्थं अपेक्षते। आपदा निवारणाय राज्यस्तरीय, जनपदस्तरीय, पंचायतस्तरीय, ग्रामस्तरीय जनसमूहा: भवेयुः। सामान्य रूपेण आपदा प्रबंधार्थं त्रयो चरणा चिन्तनीयाः

1. आपदा प्रशमनं विधाय आपदा क्षेत्रं आपदा शून्यताया: उपाया:।
2. आपदा शमनोपाया:।
3. आपदां नियंत्रणं विहाय पुनर्वासं कार्य निवारणोपायाः वादग्रस्त जनपदेषु विभास्तरे, राज्यस्तरीया, राष्ट्रस्तरीय, अधिकारिणो तत्र आकारणीया।

अन्ते एतदेव वक्तुं शक्यते प्रर्वोक्त योजनातिरिक्तं जनसाहाय्यं अपेक्षते। अस्माकं प्रत्येकं भवनं आपदा दृष्ट्या निर्मितानि भवेयुः प्रत्येकं परिवारं, प्रतिसदस्यं आपदाया सम्बद्ध विषया जानीयु: अर्थात् आपदानिवारणोपाया अस्माकं जीवनचर्यायां सम्मिलिता भवेयु:।

5.3.14 विश्वशान्तिः—

विश्वेऽमिन् यदा शान्तेरभावः संजायते तदा मानवानां चित्तेषु औदासीन्यस्य साम्राज्यमातङ्कस्य च भावः समुत्पद्यते । शान्तिः सन्तोषश्च द्वाविमौ सुखमूलं स्तः । सर्वोऽपि जनः सुखं कामयते, तत्तु

शान्ति विना न लभ्यतेऽतः प्रथमं शान्तिः स्यात् ततो सुखं लब्धु शक्यते । शान्त्यै मनुष्येषु सोजन्यमौदार्य स्नेहः दयोत्साहः कारुण्यं, शौर्य सद्भावना, सहयोगभावना च स्यात् । तदैव देशे, समाजे च शान्तिः स्थापयितु शक्यते ।

यस्मिन् देशे जनाः परस्परं विद्विषन्तः दिवानिशं कलहायन्ते, परस्परं वार्थसिद्धयै हानि ददति, तिरस्कुर्वन्ति, अल्पवस्तुनेऽपि प्राणिहिंसां कुर्वन्ति, स्वल्पलाभायाऽपि देशस्य, समाजस्य, अन्येषामपि जनानां भूयसा क्षतिकरणे न किमप्याशङ्कते तस्मिन् देशे शान्तेः नामापि जनानां हृदि प्राप्यतेऽपि तु भाषणेष्वेव शान्तिशब्दः श्रूयते पुस्तकेषु च पठ्यते । देशभक्तैः, समाजसेविभिः, राष्ट्रनेतृभिः देशोद्धारकैः तथा प्रयतितव्यं या दे, समाजे, विश्वे च शान्तेः स्थापना स्यात् ।

वास्तविकः पूर्णदेशभक्तः देशस्य, समाजस्य चान्यायं, दुर्व्यहारं भ्रष्टाचारमसन्तोषमन्ति च दृष्टुं न शक्नोति । स तथा प्रयतते यथा देशस्य समाजस्य च विषमता, संघर्षः, स्वार्थान्धता, अशान्तिश्च दूरी भवेत् । पूर्णदेशभक्तस्तु नेता सुभाषचन्द्र आसीत् येन स्वदेशे शान्तिस्थापनाय अन्यायिन आंग्लशासनस्य समाप्त्यै प्राणानपि प्रत्यर्पयत् । वस्तुतः नेता सुभाषचन्द्रः त्यागी, कृती, कुलीनः न्यायप्रियः, स्वार्थरहितः, शौर्यरसाभिभूतः, परमोत्साही, सदाचारवान्, गुणग्राही अन्यायस्याशान्लेर सन्तोषस्य चापहर्ता आसीत् । तस्येदं वक्तव्यमस्ति यत् देशवासिनामस्माकं देशं प्रति किमपि कर्तव्यमस्ति । यदि वयं स्वदेशमादर्शदेणं कतु मभिलषामस्तदा वयं देशं प्रति कर्तव्यनिष्ठास्तथा निःस्वार्थाः शान्ति- प्रियाः न्यायप्रियाश्च भवेम । त्यागस्य, देशानुरागस्य, शान्तेश्च महत्या- वश्यकताऽस्ति । अस्माकमन्तःकरणेषु स्वार्थान्धता अहंकारश्च कथमपि नागच्छेत् । अनेन आचरणेन देशे शान्तेः स्थापनाऽशान्तेश्च निरसनं भवितुमर्हति ।

अस्माकं देशे शान्तिस्थापकानां देशभक्तानां भूयसी संख्या वर्तते । तेषु कानिचिदिमानि नामानि सम्प्रत्युद्धियते पाञ्चालदेशकेसरी लालालाजपतरायः, लोकमान्यस्तिलकः, महात्मागान्धी, राष्ट्रपतिपदस्यलङ्कर्ता राजेन्द्रप्रसादः, मदनमोहनमालवीयः, लालबहादुरशास्त्री चेति सन्ति । एते महानुभावाः सदा विश्वे शान्तिथापनाय प्रयतमाना स्व- प्राणान् प्रत्यर्ण्य यशः शरीरेणाऽमरतामवापुः ।

पुरुषाणामिव शान्तिस्थापकानां देशभक्तानां स्त्रीणामपि भूयसी संख्या वर्तते । तथा हि लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, कस्तूरबा, सरोजनी नायडू, विजयलक्ष्मी, भारतस्य प्रधानमन्त्रिपदमलङ्कुर्वन्तीन्दिरा गान्धीचेति सन्ति ।

प्रथममन्यायेन, अत्याचारेण, स्वार्थान्धभावेनऽज्ञानेनाऽहङ्कारेण, परस्परसंघर्षेण च युद्ध्वा न्यायस्थापनमत्याचारापनयनं स्वार्थान्धतादूरी करणमज्ञाननिरसनमहङ्कारापनयनं तथा पारस्परिकं संघर्षमपनीय शान्तिः स्थापयितु शक्यते ।

यदा लोके सद्भावस्य प्राचुर्यमसद्भावस्य चाभावः, क्रूरहिंसकवञ्च कभावानामभावः, कारुण्यौदार्याहिंसकसरलभावानां बाहुल्यं भवति तदा विश्वे शान्तिः स्वयमेव स्थाप्यते । अतो वयं तथा व्यवहरेम यथा देशस्य, समाजस्य, विश्वस्य च शान्तिर्न नश्येत् । रामकृष्णबुद्धा शोकशिववीर राणाप्रतापव्यासवाल्मीकिगान्धिजवाहरलालबहादुरशास्त्रिसमाः व्यवहरेम। तेषामाचरणेभ्यः सदाचारस्य, शान्तेः, कारुण्यस्य, शौर्यस्यौदार्यस्याऽहिंसायाः, त्यागस्य, सहयोगस्य, शौर्यस्य, सत्यतायाश्च शिक्षा शिक्षणीया । तदनुकूलं च व्यवहणेनैव विश्वे देशे, समाजे च शान्तिः स्थापयितु शक्यते । शान्तिरेव सुखस्य मूलमस्ति । अतएव वेदेऽपि शान्त्रि- मन्त्रोऽयं सर्वत्र गीयते । तथा चाह-

ओइम्-द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयश्शान्तिः वनस्पतयश्शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

अत, सर्वत्रापि शान्तिर्यथा स्यात् तथा वयं प्रयतेमहि-शान्तिस्थापनाय च सहयोगकरणमस्माकं परमो धर्मः इति।

5.3.15 विश्वशान्तेरुपायाः

विश्वशान्तेरावश्यकता— जगदिदम् आधिव्याधिपीडितम्, दुःखदावाग्निदग्धम्, अभावग्रस्तम्, चिन्तासहस्रनिचितम् अविश्वास-पिशाच क्षुब्धम्, नृशंसकर्म-संत्रस्तम्, अन्नाद्यभाव-विशीर्ण-चित्तम्, क्षुत्-पिपासाशीविष-सन्दष्टं च संलक्ष्यते। देशे, विदेशे, सर्वस्मिश्च भूमण्डले क्रान्तेर्विद्रोहस्य नरसंहारस्य च कारुणिकं दृश्यं प्रेक्ष्यते। शान्तेर्नामापि न श्रुतिपथमुपयाति। सर्वोऽपि लोकस्त्रासादीनां संहाराय, भयानां विध्वंसाय, अविश्वासस्य चापगमाय जीवने सुखशान्तेर्मूलं किमपि तत्त्वं कामयते। परं तत् तत्त्वं शान्तिश्च कथमिव लभ्या विश्वशान्तिमन्तरेण। कृतेऽपि प्रयत्ने शान्तिः सौख्यं समृद्धिश्च दुरवापान्येव। यत्र शान्तेर्निवासस्तत्रैव सुखं, वैभवं, शिक्षा, उन्नतिः, कला-विकासः, धर्मचर्चा, संस्कृतिसमुदयः, सभ्यतोत्कर्षः, जीविकोपलब्धिः, सौकर्यं च।

विश्वशान्तिः कथं सम्भवति ?— विश्वशान्तेः सद्भावार्थं लोकेषु समाजेषु राष्ट्रेषु च सद्भावोदयस्य समवेदनायाः सहानुभूतेश्च परमावश्यकता। सद्भावाद् ऋते न परार्थचिन्तनम्, परदुःखानुभूतिः, परशोषण-विरतिश्च। तथैव पारस्परिक विश्वासस्य चानिवार्यत्वम्। पारस्परिक विश्वास एव सद्भावनां प्रेरयति, परार्थसाधनायोद्बोधयति, परदुःखापहारायोत्तेजयति, स्वार्थपरित्यागपूर्वकं परार्तिवारणाय च मानसम् उद्वेलयति। संकीर्णा राष्ट्रियताऽपि विश्वशान्तेः प्रत्य वायरूपेणोपतिष्ठते। तुच्छ राष्ट्रिय-भावनयैव प्रेरिता देशा हीनबलानि परराष्ट्राण्यात्मसात् कर्तुं प्रयतन्ते। साम्प्रतिक्यां स्थितौ न कश्चन हीनतमोऽपि, दुर्भिक्षादिग्रस्तोऽपि, देशः परतन्त्रतापाशं गले पादयोर्वा बन्धुं कामयते। स्वल्पबलाः स्वल्पाश्चापि देशाः पराधीनतापाशं समूलम् उन्मूल्य स्वातन्त्र्य-सुधां लेभिरे।

केचन वादा अपि विश्वशान्ति संदूषयन्ति। तत्र पूँजीवादः परशोषणैकवृत्तिः, स्वार्थसाधनैकप्रवृत्तिश्च। सति जीवति पूँजीवादे विश्वशान्तिः सुदुर्लभैव। साम्यवादो धर्म- आचार-नीति-विरहितत्वाद् लोकोपकार करणे क्षमोऽपि अनाचार-विद्रोहादि-प्राबल्याद् न जनमानसं तोषयति, अपितु वर्गसंघर्षं पोषयति, ईश्वर-धर्मादि-मर्यादां दूषयति च। अतो द्वयोरप्येतयोर्वादयोः सत्त्वे न विश्वशान्तिः संभाव्यते।

युद्ध-ज्वाला-ज्वलितान्तरात्मानः, पर-संहारैकदक्षाः, अणुबम-प्रभृतीनि प्रलया- वहानि शस्त्राण्यस्त्राणि च निष्पादयन्तो बर्बरा एव केचन देशा विश्वशान्तिम् अहिताम् अशुभां चाकलयन्ति। अत आवश्यकमिदं यद् घातकास्त्राणां निर्माणे पूर्णावरोधः स्यात्। विश्वशान्ति-स्थापनायां यद्यपि वर्तते राष्ट्रसंघस्य महद् योगदानम्, तथापि राष्ट्रसंघो न समस्या-समाधाने विश्वशान्ति स्थापने च प्रभवति। राष्ट्र-संघस्य बहवो निर्णया न पाल्यन्ते शक्तिमद्भिः प्रमुखैरर्राष्ट्रैः। तदर्थं राष्ट्रसंघस्य गौरवाभिवृद्धिरपेक्ष्यते, यथा तन्निर्णयोऽस्खलितरूपेण संपाल्येत।

अशान्तेमूलं स्वार्थलिप्सा, स्वार्थपरता च। एवम् अभावग्रस्तानां देशानां साहाय्य-व्यपदेशे पारतन्त्रयं विधीयते। एतदोषवारणार्थं राक्षणां कृते स्वावलम्बनम् एक व्यपदेशेन

विज्ञानस्य दुरुपयोगोऽपि अशानेर्मूलम् । यदि वियत सहाध्यात्वं न सम्बद्ध स्यात् तर्हि विज्ञानं दोषायैव। ईसु-महोदय आजीवनं शान्त्यर्थं प्रायतत । परं तदनुयायिनः स्वप्नेऽपि न शान्ति कामयन्ते। विश्वासस्य प्राधान्यम् अपास्य तैः साम्प्रतं तर्कस्यैव प्राधान्यम् उररीक्रियते। परम् आवश्यकता वर्तते तर्क-निरोधस्य, च। सर्वविधाऽपि हिंसा अशान्तेर्जननी। हिंसायाः परित्यागेनैव विश्वशान्तिः सम्भवति । निरस्त्रीकरणमपि विश्वशान्तिसंस्थापनार्थम् उपयोगि। सर्वोदय-भावना, 'वसुधैव विश्वास-संस्थापनस्य छद्म-प्रपञ्च-कूटनीत्यादीनां कुटुम्बकम्' इति भावना, परहित-निरतत्व-कामना च निःसारणपूर्वकं विश्वशान्ति बद्धमूलां सुदृढां च विधातुं प्रभवन्ति।

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने संस्कृते उद्योगावसराः, उत्तराखण्डे संस्कृतस्य स्थिति, संस्कृतस्य रक्षार्थ के उपायाः कर्त्तव्याः, संस्कृत सप्ताहः, संस्कृत दिवस, वर्तमान-युगे संगणकस्य (कम्प्यूटरस्य) उपयोगित्वम्, विज्ञानं वैज्ञानिका आविष्काराश्च, उत्तराखण्डे वनोषधिः , भारतस्य चत्वारि धामानि, उत्तराखण्डस्य चत्वारि धामानि, पंच प्रयागाः , कुटीरोद्योगः , उत्तराखण्डे औषधोद्योगः, आपदा निवारणोपायाः, विश्वशान्तिः, विश्वशान्तेरुपायाःजैसे विषयों का अध्ययन इस इकाई में किया।

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत व्याकरण : डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ
2. संस्कृतव्याकरण-प्रवेशिका डॉ. बाबूराम सक्सेना, रामनारायणलाल, इलाहाबाद
3. Higher Sanskrit Grammar (हिन्दी संस्करण): M.R. Kale
4. प्रौढरचनानुवाद कौमुदी : कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
5. संस्कृतनिबन्धशतकम् : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
6. आन्वीक्षिकी, उ0सं0अ0 हरिद्वारम्।

4.6 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. संस्कृतनिबन्धशतकम् : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत इकाई के किन्ही चार निबन्धों पर लेख लिखें।